गोपीगीत

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

गोपीगीत

(श्रीमद्भागवतान्तर्गत गोपीगीत प्रसंग)

प्रवचनकर्ता :

स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

संकलन :

डॉ० प्रमिला मलिक

प्रकाशक व पुस्तक प्राप्ति स्थान :

सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट

'विपुल' 28/16 बी. जी. खेरमार्ग
मालाबार हिल
मुम्बई - 400 006
फोन : (022) 23682055
मो.: 09619858361

स्वामीश्री अखण्डानन्द पुस्तकालय
आनन्द कुटीर, मोतीझील
वृन्दावन - 281 121
फोन : (0565) 2913043, 2540487
मो. : 09837219460

●

छठवाँ संस्करण 1100
29 जुलाई 2003
सप्तम संस्करण : 1100
संन्यास जयन्ती, 17 फरवरी 2008
आठवाँ संस्करण : 1100
विजयादशमी 2010
नवम संस्करण : 1100
14 जनवरी 2013

दशम संस्करण : 1100
जनवरी 2016

●

मूल्य : रु. 100/-

●

मुद्रक :
आनन्दकानन प्रेस
डी. 14/65, टेढ़ीनीम
वाराणसी - 221001
फोन : (0542) 2392337

प्रथम संस्करण : अक्षयतृतीया 2024

प्रकाशकीय

श्रीमद्भागवतमहापुराणमें 'गोपीगीत' आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए अत्यन्त हर्ष है। अनेक बार यह अवसर आया है जब भक्त और सुविज्ञ श्रोताओंने पचीससे पचास सहस्रकी संख्यामें एक साथ शान्तचित्त बैठकर श्रीमहाराजश्री द्वारा कथा-प्रवचनका लाभ उठाया है; किन्तु श्रीमद्भागवतमहापुराणके प्रवचनका कोई भाग प्रकाशित नहीं किया जा सका है।[1] हाँ, गीता प्रेससे श्रीमहाराजश्री द्वारा अनूदित श्रीमद्भागवत प्रकाशित अवश्य है; किन्तु उसमें कथा-प्रवचन-विस्तार नहीं है। अतः रसिक-भावुक श्रोताओंकी प्रबल इच्छा थी कि 'सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट' इस दिशामें कुछ सत्प्रयास करे। तदनुसार श्रीमद्भागवत-महापुराणान्तर्गत 'गोपीगीत' प्रसंग पर हुए श्रीमहाराजश्रीके प्रवचनोंको संकलित किया गया। प्रवचनके टेपरिकार्ड लिये गये और उन्हें श्रीसुदर्शनसिंह 'चक्र'ने बड़े श्रम और मनोयोगसे यह रूप दिया है। आशा है इस ग्रन्थसे पाठकोंको मधुर-गम्भीर-प्रेमानन्ददायी स्वाध्याय मिलेगा।

इस पुस्तकके प्रकाशन, संशोधन, सम्पादनमें पण्डित श्रीविश्वम्भरनाथ द्विवेदीका सर्वाधिक श्रम उल्लेख है।

-प्रकाशक

---

1. यह प्रथम संस्करण सम्वत् 2024 (लगभग 1967-68) लिखा गया उसके बाद पूज्य महाराजश्रीके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं विज्ञ पाठक पुस्तकमें संलग्न सूचीसे लाभ उठावें। -प्रकाशक

निवेदन

(छठा संस्करण : 29 जुलाई 2003)

गोपीगीतका यह भाग श्रीमद्‌भागवतसे संग्रहीत है। गोपियोंके प्राणप्यारे श्रीकृष्णने जब रात्रिमें वंशी बजाकर गोपियोंसे उनका घर-द्वार छुड़वा कर उन्हें जंगलमें बुला लिया, और खुद अन्तर्धान हो गये, उस समय उन्होंने जो हृदयके उद्‌गार प्रकट किये, उन्हीं उन्नीस गीतोंका संग्रह गोपीगीतके नामसे प्रसिद्ध हुआ है। जब गोपियोंके मनमें अभिमान जागा— कि हम बड़ी सुन्दरी, हम बड़ी गुणवती हैं, तब अपने प्रेमास्पद श्रीकृष्णकी ओरसे उनका ध्यान हट गया। तब उनके प्रेमास्पद उनकी निगाहसे ओझल हो गये। जब उनका मान टूटा, चारों ओरसे बेसहारा होकर उन्होंने कृष्णको पुकारा, तो कृष्ण उनके सामने पुनः प्रकट हो गये। जबतक सारे सांसारिक सहारे छोड़कर ईश्वरकी शरणमें न आ जावें, सर्व प्रकारसे प्रयत्न कर लें— तब वह दर्शन देता है। अपना उदाहरण देकर स्वामीजी ने इसे अत्यन्त सहज, सरल रूपमें समझाया है।

गोपीगीतका प्रकाशन तो बहुत पहले हो चुका है। उसके पिछले संस्करणकी प्रतियाँ समाप्त हो जानेपर जब इसके दूसरे संस्करणकी आवश्यकता महसूस की गयी, तब यह सोचा गया, कि क्यों न इस बार स्वामीजीके प्रवचनोंको ज्यों-का-त्यों छाप दिया जाए! प्रवचन शैलीकी विशेषता यही होती है कि पहले दिनके प्रवचनको जहाँ समाप्त किया जाता है, दूसरे दिनके प्रवचनके समय उस पहले दिन कहे गये विषयको भी संक्षेपमें फिरसे दुहरा दिया जाता है। इस प्रकार एक ही गीत एक ही प्रवचनमें लिया जाय— ऐसा नहीं होता। निबन्धमें जिस पूर्वापर क्रमका निर्वाह होता है, प्रवचनमें वह वैसा नहीं होता है। इसीलिए अनुक्रमणिकामें विषयका उल्लेख नहीं किया गया है। केवल पृष्ठ संख्या भर दी गयी है।

प्रवचनोंको सुनना और उन्हें कागजपर पढ़ना दो अलग-अलग वस्तुएँ हैं। यदि इन्हें पढ़ते हुए पूज्यश्री स्वामीजीकी आशीर्वाद भरी मुद्रा सामने आजाय, तो यह प्रयास सार्थक होगा।

श्रीचरणोंमें प्रणाम।

—प्रमिला

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीमद्भागवतमहापुराणमें

गोपीगीत

उपक्रम (पृष्ठ-१)

(श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध अध्याय इकतीस)

गोप्य ऊचुः

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥ १॥
(पृष्ठ-३१)

शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः॥ २॥
(पृष्ठ-७४)

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद् वैद्युतानलात्।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभभयात् ऋषभः ते वयं रक्षिता मुहुः॥ ३॥
(पृष्ठ-८३)

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले॥ ४॥
(पृष्ठ-९२)

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात्।
करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्॥ ५॥
(पृष्ठ-१०९)

व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित।
भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय॥ ६॥
(पृष्ठ-१२०)

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम्।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम्॥ ७॥
(पृष्ठ-१३२)

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः॥ ८॥
(पृष्ठ-१५७)

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥ ९॥
(पृष्ठ-१६७)

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम्।
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि॥ १०॥
(पृष्ठ-१९०)

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम्।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति॥ ११॥
(पृष्ठ-२०९)

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम्।
घनरजस्वलं दर्शयन् मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि॥ १२॥
(पृष्ठ-२२२)

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि।
चरणपङ्कजं शन्तमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन्॥ १३॥
(पृष्ठ-१४०)

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्॥ १४॥
(पृष्ठ-२४५)

अटति यद् भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्॥ १५॥
(पृष्ठ-२८६)

पतिसुतान्वयभ्रातृ-बान्धवानतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि॥ १६॥
(पृष्ठ-३११)

रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम्।
बृहदुरःश्रियो वीक्ष्य धाम ते मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः॥ १७॥
(पृष्ठ-३२०)

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम्।
त्यज मनाक् च नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम्॥ १८॥
(पृष्ठ-३२४)

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीता शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः॥ १९॥
(पृष्ठ-३३३)

[अध्याय बत्तीसके तीन श्लोक]

उपसंहार (पृष्ठ-३४८)

श्रीशुक उवाच

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा।
रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः॥ १॥
(पृष्ठ-३४८)

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥ २॥
(पृष्ठ-३५४)

तं विलोक्यागतं प्रेष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशोऽबला:।
उत्तस्थुर्युगपत् सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम्॥ ३॥
(पृष्ठ-३६७)

❋

अनुक्रमणिका

अध्याय	पृ० संख्या
एक	१
दो	१६
तीन	३१
चार	४९
पाँच	६६
छह	८०
सात	९४
आठ	१०९
नौ	११४
दस	१२९
ग्यारह	१४४
बारह	१६३
तेरह	१७७
चौदह	१९३
पन्द्रह	२०९
सोलह	२२४
सत्रह	२४०
अट्ठारह	२५५
उन्नीस	२७३
बीस	२८७
इक्कीस	३०३
बाईस	३१७
तेईस	३३७
चौबीस	३५५

★
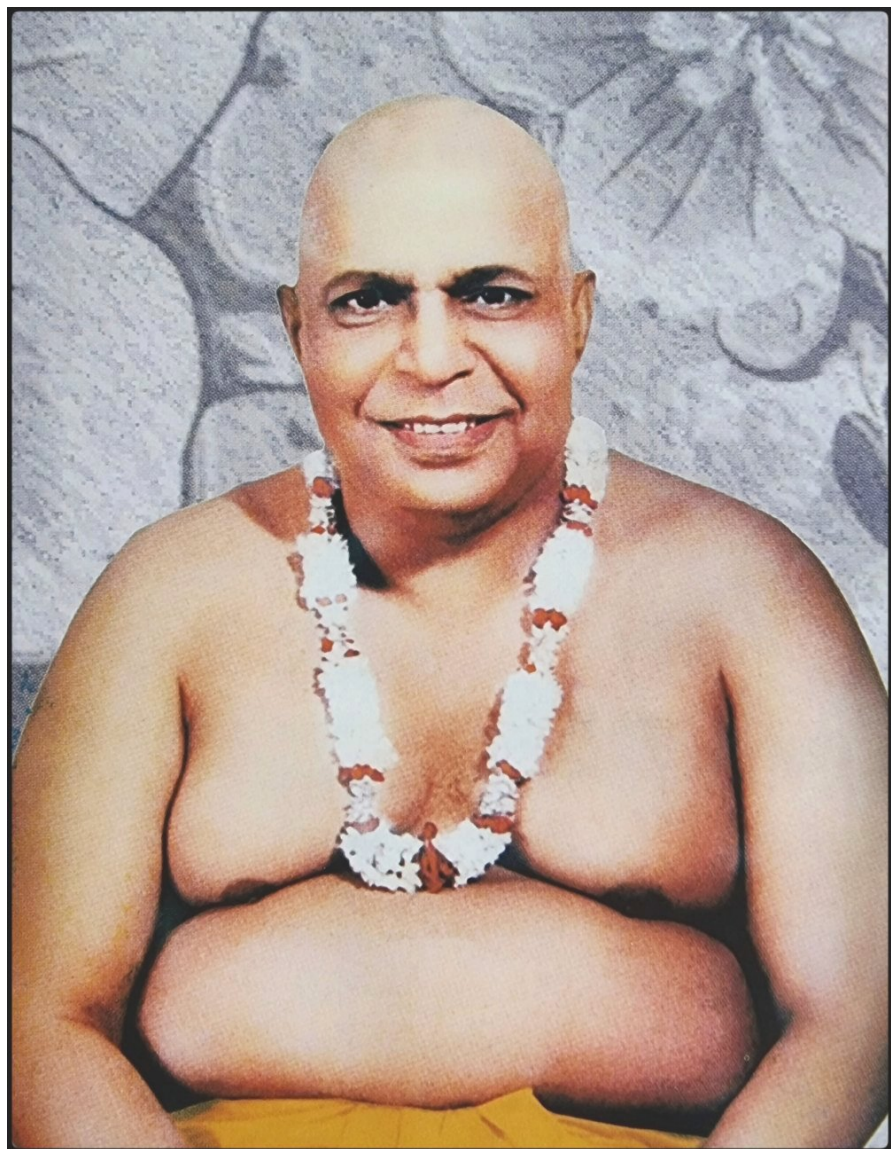
स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

गोपीगीत

: १ :

विश्वेषामनुरञ्जनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवर-
श्रेणी श्यामल-कोमलै-रुपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम्।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः
शृङ्गारः सखि मूर्तिमानिव मधौ मुग्धौ हरिः क्रीडति॥

ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

अब प्रेमकी चर्चा करते हैं। जिसके हृदयमें प्रेमका उदय होता है, उसकी महिमाका वर्णन करते हुए नारद जीने कहा है कि वह अतीर्थको भी तीर्थ बना देता है, अपवित्रको भी पवित्र बना देता है। वह अपने कुलको तार देता है। भगवान् केवल रूखा-सूखा नहीं है; वह सत् है, चित् है, आनन्द है। तो जब मनुष्य आनन्दकी प्राप्तिके लिए चलता है, तो आनन्दका स्मरण होने मात्रसे ही उसके हृदयमें आनन्द आने लगता है।

प्रेमके दो रूप हैं; एक तो प्यास और एक तृप्ति। प्यासका यह मतलब है कि ईश्वर की प्राप्तिके लिए हमारे हृदयमें व्याकुलता हो।

मैं बौरी ढूँढन चली रही किनारे पैठ।

भगवान्को ढूँढ़नेके लिए निकले और घुसे नहीं, पानीके किनारे बैठे रहे! इसका नाम प्यास नहीं है।

देखो, ज्ञानकी प्यासका नाम जिज्ञासा है। जिसके मनमें ज्ञानकी प्यास नहीं है, उसको क्या ज्ञान मिलेगा? मोक्षकी प्यासका नाम मुमुक्षा है और भगवत्प्राप्तिकी इच्छाका नाम प्रेक्षा है। अपने हृदयमें परमात्माको पानेके लिए, ईश्वरकी प्राप्तिके लिए प्यास है? व्रजमें इन शब्दोंको ज्यादा पसन्द नहीं करते। नन्दनन्दन, श्यामसुन्दर, मुरलीमनोहर, पीताम्बरधारी—जिनके मुखारविन्दपर मन्द-मन्द मुसकान है, सिरपर मयूर-पिच्छका मुकुट, गलेमें पीताम्बर, ठुमुक-ठुमुककर चलनेवाला, बाँसुरी बजानेवाला जो मनमोहन प्राणप्यारा है, उसको प्राप्त करनेकी इच्छा, उत्कण्ठा, व्याकुलता, तड़प जब अपने हृदयमें आवे तब कहते हैं—कि अब प्रेमका एक अंश जाग्रत हुआ। और जब उसकी बात सुनकर, उसकी याद आनेसे, उसके लिए कोई काम करनेसे अपने हृदयमें रसका अनुभव होता है, तब उसको तृप्ति कहते हैं।

तो प्यास और तृप्ति! आनन्दके लिए प्यास और आनन्दकी प्राप्ति होनेपर तृप्ति! संयोग और वियोग—इन दोनोंको लेकरके प्रेम चलता है। आपसे हम पूछते हैं—कि क्या कभी आपको ईश्वरसे वियोगका अनुभव हुआ है? बाबू मेरे! दिन-दिन बीत गये, जनम-जनम बीत गये। औरतके लिए रोया, मरदके लिए रोया, धन, इज्जतके लिए रोया, बच्चेके लिए रोया, शरीरके लिए रोया! रोनेका दुःख आपने बहुत देखा है, लेकिन रोनेका मजा आपने नहीं देखा। रोनेका मजा तो तब आता है, जब ईश्वरकी प्राप्तिके लिए हमारी आँखोंसे आँसूके कुछ कतरे लुढ़कते हैं। इसके बिना ज्ञान भी नहीं होता है। भगवत्-तत्त्वको प्राप्त करनेके लिए जिसके दिलमें वेदना नहीं हुई, दर्द नहीं हुआ, दुःख नहीं हुआ उसे ज्ञान नहीं होता है। ज्ञान कोई सस्ती चीज नहीं है।

मनुष्यके जीवनमें ईश्वरको मानना दूसरी चीज है और उससे प्रेम करना दूसरी चीज है! रास्तेमें चल रहा हो और दरिया दिखे, तो कौन नहीं हाथ जोड़ देता! अरे, यह भगवान्‌की कैसी महिमा है! कैसा फैला हुआ

समुद्र है! सूर्योदयके समय हाथ जोड़ देना, समुद्रकी ओर हाथ जोड़ देना, ईश्वरको नमस्कार कर देना—इसका नाम प्रेम नहीं है। इसका नाम आस्तिकता है। तुम ईश्वरको मानते हो; बड़ी मेहरबानी है तुम्हारी, जो इतने काम-धन्धेमें रहते हुए कभी-कभी ईश्वरकी याद कर लेते हो। पर ईश्वरकी याद करना दूसरी चीज है और ईश्वरकी प्राप्तिके लिए व्याकुल होना दूसरी चीज है। भक्ति वहाँसे प्रारम्भ होती है, जहाँसे ईश्वरकी प्राप्तिके लिए व्याकुलता होती है, जहाँसे ईश्वरके स्मरणमें, ईश्वरके भजनमें, ईश्वरके श्रवणमें, ईश्वरके सेवनमें रसकी उत्पत्ति होती है, आनन्दकी उत्पत्ति होती है।

तो जो सूखे ताल हैं, उनकी बात छोड़ दो। जो सहृदय हैं, दिल वाले हैं—उनकी बात करो। प्यास और रस-दोनोंमें-से कौन-सी चीज साधारण मनुष्यके लिए, उसके जीवनमें बढ़िया है? तो बोले—प्यास! क्योंकि जब ईश्वर मिलेगा तब रस आवेगा। जबतक वह नहीं मिला है, तबतक उसके लिए प्यास आनी चाहिए। राजनीतिका मामला दूसरा है और समाज-सेवा, लोकोपकार दूसरी चीज होती है। योगाभ्यास करके समाधि लगाना—वह एक दूसरी चीज है, झंडा ही दूसरा है। घटाकाश-मठाकाश—दोनोंमें-से घट-मठका अपवाद करके आकाशकी एकताको समझना; ऐसे ही जीवनकी उपाधि, अन्तःकरण और ईश्वरकी उपाधि, माया और दोनोंका तिरस्कार करके जो दोनोंमें एक चिदाकाश है—उसको समझना—ब्रह्मात्मैक्य-बोध, यह दूसरी चीज है। और अपने हृदयमें श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिए व्याकुल होना—**अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि प्रभोस्त्वदालोकनमन्तरेण।** श्यामसुन्दर! तुम्हारे दर्शनके बिना ये मेरे दिन बड़े दुःखपूर्वक बीत रहे हैं।

अनाथबन्धो करुणैकसिन्धो हा हन्त! हा हन्त! कथं नयामि॥

हे अनाथबन्धु! हे करुणाके एकमात्र समुद्र! तुम्हारे बिना मैं यह अपना समय कैसे व्यतीत करूँ?

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम्।
शून्यायितं जगत्सर्वं गोविन्द विरहेण मे॥

एक-एक पल कल्पकी तरह बीत रहा है। आँखें वर्षा ऋतु बन रही हैं, बरस रही हैं। सारी दुनिया सूनी-सूनी लग रही है। श्यामसुन्दर! तुम्हारे विरहमें सारा जगत् शून्य हो गया। वह दिन हमारे जीवनमें कब आवेगा जब प्रभु! तुम हमारी आँखोंके सामने खड़े होओगे।

तो यह विभाग दूसरा है। यह ज्ञानका भाग नहीं, कर्मका भी भाग नहीं। यह राजनीतिक चुनाव नहीं है, समाज सुधार नहीं है। यह हृदयकी वह तड़प है, जो जीवको ईश्वरसे मिलाकर ही शान्त होती है।

अब नास्तिक होना दूसरी बात है और आस्तिक होना दूसरी। प्रेमी भक्त न आस्तिक है, न नास्तिक है। नास्तिक लोग तो बड़े समझदार होते हैं, अपनी समझसे ईश्वरको भी पा सकते हैं। आस्तिक लोग बड़े श्रद्धालु होते हैं, वे किसी अचिन्त्य शक्तिके सामने अपना सिर झुकाते हैं, हाथ जोड़ते हैं—ईश्वर निराकार है, ऐसा है, ऐसा है! बड़े श्रद्धालु हैं भाई, बिना देखे ही इतना मानते हैं। हम तो उनके लिए वाह! वाह! कहते हैं। बाबा! जो चीज कभी देखी नहीं गयी, कभी सुनी नहीं गयी, कभी चखी नहीं गयी, जो किसीके अनुभवके सामने आकर खड़ी नहीं हुई—उस चीजको मान करके श्रद्धासे हाथ जोड़ना और सिर झुकाना! बहुत बड़े लोग हैं ये तो। हम तो उसकी चर्चा कर रहे हैं, जो जमुनाजीके बालुकामय पुलिनपर साँवरा-साँवरा, पीताम्बर पहने ग्वाल-बालोंके साथ मन्द-मन्द मुस्कुराकर नृत्य करता है। हमारी आँखोंमें, हमारे दिलमें तो वह बसा हुआ है। तो आओ, गोपियोंके चरित्रपर एक दृष्टि डालें।

दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन् समेताः।

बिना विरहका अनुभव किये संयोगका सुख मालूम पड़ता नहीं। तुम्हें एक बार मालूम तो पड़े कि भगवान्के बिना कैसे तुम दूर-दूर पड़ गये हो, सूखे-सूखे पड़ गये हो। गोपियोंके दिल में चैन नहीं था। कानसे

तुमने सुना कृष्णका नाम, आँखसे देखा कृष्णका रूप, मनमें स्मरण किया। और मन अपने हाथसे बाहर निकल गया। आगे-आगे धेनु, पाँवमें रेणु और मुखमें वेणु; बस, गोपियोंको वही-वही दिखता है।

अच्छा, तो फिर इसके लिए कोई प्रयत्न करना चाहिए। अभी आज ही श्रीवल्लभाचार्यजी महाराजका कोई ग्रन्थ मैं देख रहा था। उसमें प्रसंग आया कि ईश्वर हमारी ओर देखते हैं। श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज ने कहा कि ईश्वर हमारी ओर देखें-इसमें हमारा क्या पुरुषार्थ सिद्ध हुआ? उसके देखनेसे हमें क्या मिलेगा? अरे, मिलेगा तो तब, जब हम उसको देखेंगे। वह हमको देख रहा है—यह कम-से-कम हमको मालूम तो पड़े!

एक भद्दी बात आपको सुनाते हैं। वृन्दावनमें एक बार एक स्त्रीने आकर श्रीउड़िया बाबाजीसे शिकायत की, कि अमुक व्यक्ति जो रासलीलामें बैठता है, वह सिर्फ मेरी ओर देखता है। बाबाने पूछा—यह बात तुमको कैसे मालूम पड़ती है? वह बोली—मैं जब आँख उठाकर देखती हूँ तब उसकी ही आँखसे आँख मिल जाती है। बोले—तुम क्यों आँख उठाती हो? मत उठाओ। तुम भगवान्की ओर देखो। जब तुमको यह मालूम पड़ता है कि वह मेरी ओर देखता है, तब तुम जरूर उसकी ओर देखती हो।

तो कहनेका अभिप्राय है कि जब ईश्वरकी नजर-से-नजर मिलती है, ईश्वरकी आँख-से-आँख मिलती है, तब पुरुषार्थकी सिद्धि होती है। वह साक्षी बना हमको देखता रहे और हम उसको कभी न देख पावें? हम उसके दृश्य ही रहें, उसके द्रष्टा कभी न हों? अरे बाबा, वह अगर हमारा द्रष्टा है तो हम उसके द्रष्टा हैं। हम उसके दृश्य हैं तो वह हमारा दृश्य है। बिना एक हुए मजा नहीं आता है।

वेदान्ती लोग कहते हैं कि हम द्रष्टा-ही-द्रष्टा हैं और वह दृश्य ही दृश्य है। प्रेमी भक्त लोग कहते हैं कि वह द्रष्टा ही द्रष्टा है, हम दृश्य-ही-दृश्य हैं। प्रेमी लोग कहते हैं कि हम द्रष्टा भी हैं, दृश्य भी हैं और वह द्रष्टा

भी है और दृश्य भी है। जो तत् है, वह द्रष्टा भी है, दृश्य भी है और जो त्वं है, वह द्रष्टा भी है, दृश्य भी है। द्रष्टा तो हम इसलिए हैं कि हम उसको देखते हैं और दृश्य इसलिए हैं कि वह हमको देखता है।

तो यह भक्तोंका जो दर्शन है न, यह ईश्वरको द्रष्टा मानता है और जीव, जगत्‌को दृश्य मानता है। वेदान्तियोंका जो दर्शन है, वह अपनेको द्रष्टा मानता है और ईश्वर जीव जगत्—सबको दृश्य मानता है और प्रेमियोंका जो दर्शन है, उसमें दोनों द्रष्टा और दोनों दृश्य हैं।

परस्पर दोउ चकोर दोउ चन्दा।

दोनों चकोर हैं और दोनों चन्द्रमा हैं। यह नहीं—कि हम चकोर हैं, चन्द्रमाको देखते हैं, उसका रस पीते हैं लेकिन चन्द्रमाको पता ही नहीं—कि हमारा रस पीनेवाला कौन है। ऐसा नहीं है। यह तो ऐसा चन्द्रमा है जिसको पता है कि चकोर हमारा रस पीता है और ऐसा चकोर है जिसको देख करके चाँदनी छिटकती है। चन्द्रमाकी चाँदनी छिटकती है चकोरके लिए और चकोर पैदा होता है चन्द्रमाके लिए। यह प्रेमकी लीला जो है न, इसको आओ, गोपियोंके जीवनमें देखें।

एकांगी प्रेमको प्रेमी लोग पुरुष-रूप प्रेम मानते हैं। जहाँ प्रेमका पूर्ण विकास होता है, वहाँ दोनों ओरसे प्रेम होता है। इसीलिए कहते हैं कि जो चकई-चकवा हैं, वे रातको कभी नहीं मिलते। विरह रहता है। उनको प्रेमका क्या पता? कैसा होता है मिलनका आनन्द? अच्छा, तो सारस तो दोनों साथ-ही-साथ रहते हैं। उनको कभी वियोग होता ही नहीं। बोले—वे क्या प्रेमका रहस्य जानें? अरे, प्रेमका रहस्य तो वह जानता है भाई, जहाँ चकोर चन्दा हो जाय और चन्दा चकोर हो जाय। बार-बार बदलते रहें, बारम्बार बदलते रहें। प्रेमी प्रियतम हो जाय, प्रियतम प्रेमी हो जाय। यह प्रेमका दर्शन, प्रेमका सिद्धान्त आपको बताते हैं। जबतक प्रेमीको यह नहीं मालूम रहता—कि यह मेरा सच्चा प्रेमी है, तबतक प्रियतम प्रियतम रहता है और प्रेमी प्रेमी रहता है। जिस दिन

प्रियतमको मालूम पड़ता है कि यह हमारा सच्चा प्रेमी है, उस दिन अपने प्रेमीपर प्रियतम अपनेको निछावर कर देता है। वह प्रियतम प्रेमी हो जाता है और प्रेमी प्रियतम हो जाता है। व्रजमें गाते हैं—

न आदि न अंत विलास करें दोउ,
लाल प्रिया में भई न चिन्हारी॥

अनन्त कालसे अनन्त काल तक दोनों विलास करते रहते हैं, लेकिन पहचान दोनोंमें नहीं है।

लाल प्रियामें भई न चिन्हारी।

जबतक वे प्रेमीको पहचानने लगते हैं, तबतक वह प्रीतम हो जाता है और जबतक प्रियतम पहचाना जाता है, तबतक वह प्रेमी हो जाता है; राधा कृष्ण और कृष्ण राधा।

जिन लोगोंकी वृत्तिमें जड़ अलग है, जीव अलग है, ईश्वर अलग है, उनका सृष्टिके बारेमें विचार करनेका दृष्टिकोण दूसरा है और जिनकी दृष्टिमें परमात्माके सिवाय और कुछ नहीं है—समुद्र तरंग है और तरंग समुद्र है, जेवर सोना है और सोना जेवर है—उनकी दृष्टिमें यह परमात्माका स्वरूप ही समग्र सृष्टि है। इसमें जीव जगत् नहीं है, एक परमेश्वर सच्चिदानन्द घन यह क्रीड़ा कर रहा है।

गोपियोंने कृष्णको श्रवण किया, देखा। देखनेके बाद यह नहीं—कि घर छोड़कर निकल पड़ीं। पहले कात्यायनी देवीकी उपासना की; बिना उपासनाकी शक्ति के चला नहीं जाता। अशक्त प्रेम कामका नहीं है, समर्थ प्रेम चाहिए। और प्रेममें सामर्थ्य क्या है? कि वह अपने प्रियतमसे भी स्वीकृति प्राप्त करे। तो देखो, गोपियोंके त्यागमें यह विशेषता है। यह नहीं—कि उनके मनमें श्रीकृष्णका प्रेम आया और घर-द्वार छोड़कर निकल गयीं। उन्होंने बीचमें देवीजीको कर लिया—माने प्रेममें शक्ति आगयी। और शक्ति जब आयी, तब श्रीकृष्णने स्वीकृति दी।

अब त्यागका प्रसंग आया। यह नहीं—कि श्रीकृष्णने बाँसुरी बजायी और गोपियोंने सुनी। हम अपने बचपनमें सुना करते थे कि हमारे गाँवके पास एक कोई बाँसुरी बजानेवाला आता था। मेघ-मल्हार एक राग होता है न, जिससे बादल आसमानमें घिर जाते हैं और वर्षा होती है; तो उसका काम यही था कि जब अवर्षण होता, दुर्भिक्ष पड़ता तब वह बाँसरी बजाने वाला आता कहींसे और ठेका करता—हम सौ रुपये लेंगे, पाँच सौ रुपये लेंगे और तीन दिनमें, पाँच दिनमें वर्षा करा देंगे। यह सच्ची बात है, अपने बचपनमें अपने बड़े-बुजुर्गोंसे सुनी थी। इतना निपुण था वह बाँसुरी बजानेमें, कि जब ठेका तय हो जाता, तब वह फिर लोगोंकी परवाह नहीं करता। जाकर किसी पेड़के नीचे बैठकर बाँसुरी बजाता और मल्लार गाता। लोग स्वयं सुननेके लिए इकट्ठे हो जाते। गाँवके लोग बताते थे कि जब वह वर्षा कराकर जाने लगता, तो कितनी स्त्रियाँ उसके साथ लग जाती थीं—कि हम तुम्हारे साथ चलेंगे। वह किसीको ले नहीं जाता। लेकिन जो निकल जातीं, उनके लिए फिर कोई ठौर-ठिकाना नहीं रहता। उनका घर छूटा। और वह तो अपने साथ किसीको रख नहीं सकता था।

केवल बाँसुरी सुनके गोपियाँ कृष्णके लिए घर-द्वार छोड़कर चली गयी हों—ऐसी बात नहीं। इसके लिए उपासना है। और प्रेममें त्याग चाहिए, प्रियतमकी स्वीकृति चाहिए। जब श्रीकृष्णने स्वीकार किया, गोपियोंको कहा कि तुम हमारी हो और तुम हमसे मिलो, हमारे साथ रास-लीला करो—तब गोपियोंने त्याग किया।

अब गोपियोंके त्यागकी तरफ एक दृष्टि डालें। ऐसे नहीं—कि मनमें आया और त्याग दिया। यह प्रेमका मार्ग जो है, वह वासनाका मार्ग नहीं है। यह बहुत बड़ी साधनाका मार्ग है, तपस्याका मार्ग है। जो वासना और कामनाके मार्गपर चलनेवाले लोग हैं, वे सच्चे प्रेमके रास्तेपर नहीं चलते हैं; वे तो वासनाके रास्तेपर चलते हैं। देखो, वासना और साधनामें

क्या फर्क है? श्रीउड़िया बाबाजी महाराज कहते थे—प्रेममें और काममें बाल बराबर फर्क है। ऊपरसे देखनेमें दोनों एक सरीखे लगते हैं, लेकिन अपने सुखके लिए जो सम्बन्ध होता है—उसको काम कहते हैं और परमात्माको, प्रभुको, परमेश्वरको सुख पहुँचानेके लिए जो क्रिया होती है—उसको प्रेम कहते हैं। माने जो सुख पैदा होता है, उसको अपनी ओर न खींच करके परमेश्वरकी ओर खींचना, परमेश्वरकी ओर धकेल देना। यह काम आप आसान नहीं समझना। रूप हम देखते हैं; एक गुलाबका फूल हम देखते हैं। उसको देखनेका जो सुख होता है, वह हमको होता है कि गुलाबके फूलको होता है? गुलाबका फूल देखकर हम सुख अपनी ओर खींचते हैं; इसका नाम काम होता है। श्रीकृष्णको देख करके अपनी आँखका, अपनी सुन्दरताका, अपने दिलका सुख उसकी ओर ढकेल देना, उससे सुखी होना—यह प्रेमका लक्षण है।

तो यह नहीं समझना कि संसारमें यह जो सड़कपर, पार्कमें, पिक्चरोंमें, घरों, क्लबोंमें जिसको प्रेम कहा जाता है, वह सच्चा प्रेम है। वह तो वासनाकी पूर्तिका मार्ग है, अपनी इन्द्रियोंकी तुष्टिके लिए होता है। सच्चा प्रेम तो वह होता है, जो अपने प्रियतम प्रभु भगवान्‌को सुख पहुँचानेके लिए होता है।

गोपियोंने त्याग किया। जिस समय श्यामसुन्दरने बाँसुरी बजायी तो उनको ऐसा लगा कि इस बाँसुरीमें एक प्रकार पीड़ाकी गंगा बह रही है; परमानन्द-स्वरूप जो कृष्ण हैं, वे हम लोगोंसे मिलनेके लिए व्याकुल हो रहे हैं। इतनी करुणा! इतनी पीड़ा! आप जानते हैं, बाँसुरी पिटकर बजनेवाला बाजा नहीं है। बहुतसे बाजे होते हैं न! नगाड़ेको तो डंडा मारना पड़ता है, तबलेको तमाचा जड़ना पड़ता है। किसी और को आपसमें ही टकराना पड़ता है। तारवाले बाजेको मिजराबसे बजाना पड़ता है। और बाँसुरी सांससे बजती है, अपने प्राणसे बाँसुरी बजायी जाती है। ऐसे वाद्य जो होते हैं, वे पिटकर बजने वाले नहीं हैं, डंडेसे,

तमाचा खाकर बोलनेवाले नहीं हैं। ऐसा प्रेम दुनियाँमें बहुत होता है, जो डंडा दिखाके करवाया जाता है—ऐ! प्रेम नहीं करोगे तो मरोगे। यह बाँसुरीका जो वाद्य है, यह प्राणवाद्य है, प्राणोंके द्वारा बजता है। हृदयका सर्वोत्तम जो भाव है, हृदयकी पीड़ा—तुम्हारे लिए हमारा हृदय कितना व्याकुल है—इस अपनी पीड़ाको व्यक्त करनेके लिए बाँसुरीसे बढ़कर और कोई बाजा नहीं है।

देखो, गोपियाँ जो त्याग करती हैं, किसलिए? इसलिए, कि बाँसुरीके स्वरपर जो श्रीकृष्णका दर्द निकलकर आता है, वह ऐसा है—कि हमारे बिना हमारे प्यारेको कष्ट हो रहा है। उनको सुख पहुँचानेके लिए हमको क्या करना है। तो बोलीं—धन छोड़ो, लोभ छोड़ो, सम्बन्धी छोड़ो, अपनी ममतावाले जो हैं बच्चे-कच्चे, उनको छोड़ो। भाई-बन्धु छोड़ो, इज्जत छोड़ो। अपने शरीरका शृंगार छोड़ो, खाना-पीना छोड़ो। हम अपनेको प्रेमकी आगमें होम करदें और उससे हमारे प्रियतमके हृदयकी यह पीड़ा शान्त हो जाय, मिट जाय। इस पीड़ाको मिटानेके लिए गोपी घरसे निकलती है, अपना सुख, अपना मजा लूटनेके लिए नहीं निकलती है।

जो सीस तली पर रख न सके,
वह प्रेम गली में आए ही क्यों।
सीस उतारो भुईं धरो,
ताते रक्खो पाँव।

यह तो अपने सिरका सौदा है। एक माता है यहाँ; कभी-कभी आती है। वह गाती है—कि हे प्रभु! तुम हमारे घर जब आओगे, संत हमारे घर जब आवेंगे तो मैं परवलका साग बन जाऊँगी, मैं आलूका साग बन जाऊँगी। माने अपनेको बिलकुल भोग्य बना करके उपस्थित कर देना, अपनेमें भोक्तापनेका भाव बिलकुल न होना। यह प्रेम होता है प्रभुको सुख देनेके लिए।

तो गोपियोंके हृदयमें देखो। पहले श्रीकृष्णके गुणानुवादका श्रवण, उसके बाद प्रणयका, पूर्वरागका उदय, उसके बाद कात्यायनी देवीकी आराधना—प्रेममें शक्तिका आना और उसके बाद भगवान्‌की स्वीकृति। स्वीकृतिके बाद तब त्याग। त्याग किसका? बिलकुल इनके दिलका, शरीरका नहीं। चीरहरणमें तो शरीरको नंगा करनेका प्रसंग है न! बिना आवरण-भंगके आत्मा और परमात्माकी एकताका बोध होगा नहीं। आवरण माने पर्दा, पर्दा हटाना पड़ता है। लौकिक रसमें भी पर्दा हटाना पड़ता है। तब आधिदैविक जो प्रीति है, उस प्रीतिमें भी चीर-हरणकी जरूरत पड़ी।

कई लोग चीर-हरणपर बड़ा कटाक्ष करते हैं। हम बाबाजी लोग मैरीन ड्राइवपर घूमनेके लिए निकलें, तो दूसरे लोग जो रास्तेके हैं, वे हमारी हँसी करते हैं कि नहीं करते हैं? वे दूसरे रास्तेके हैं, इसलिए हमारी हँसी करते हैं। जो बड़े-बूढ़े हैं, वे हमारा बड़ा आदर करते हैं, देखते ही प्रणाम करते हैं। वे दूसरे रास्तेके हैं। इसी प्रकार श्रीकृष्ण-प्रेमकी हँसी उड़ानेवाले लोग जो हैं, वे दूसरे रास्तेके हैं, इस रास्तेके नहीं हैं। अगर एक मुसलमान हिन्दूको बुत-परस्त कहता है, तो वह दूसरे मजहबका होनेके कारण कहता है न! एक हिन्दू अगर मुसलमानके बारेमें यह कहता है कि वह पुनर्जन्म नहीं मानता, वह श्राद्ध नहीं मानता, मूर्ति-पूजा नहीं मानता— तो वह दूसरे मजहबका होनेके कारण ऐसा कहता है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण-प्रेमकी या चीर-हरणकी या रासलीलाकी या संतोंकी जो लोग आलोचना करते हैं, उनका रास्ता दूसरा है; इसलिए करते हैं। उनका कोई दोष नहीं है। क्या कांग्रेसी लोग कम्युनिस्टोंकी निन्दा नहीं करते हैं? क्या कम्युनिस्ट कांग्रेसियोंकी आलोचना नहीं करते हैं? वह तो जैसे राजनीतिमें अपनी-अपनी पार्टी होती है, ऐसे इसमें भी दूसरी पार्टीके लोग इसकी आलोचना करते हैं। जो इस रास्ते पर चल रहे हैं, इस पंथके हैं, उनके लिए यह बड़ी भारी चीज है।

आप देखो, चीर-हरणकी बात सुनकर लोग गड़बड़ा जाते हैं। हम आपको कहते हैं, कि इससे ज्यादा बड़ी बात यह है कि भगवान्‌ने शरीरको ही नंगा नहीं किया, शरीरका ही चीर-हरण नहीं किया, गोपियोंके दिलका चीर-हरण किया। उनके दिलको नंगा कर दिया, जब कहा—कि लौट जाओ, गोपियो!

स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः।
व्रजस्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम्॥

भा.-१०.२९.१८

उनके दिलमें, प्रेमपर जो उन्होंने पर्दा डाल रखा था, प्रेमरूपी हीरेको जो उन्होंने अपने हृदयके संदूकमें बन्द कर रखा था, उसका ताला खोलकर, पेटी उघाड़कर उस प्रेम-रूपी हीरेको बिलकुल लोगोंके सामने लाकर रख दिया।

तो गोपियोंने क्या कहा?

मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं।
सन्त्यज्य सर्वविषयाँस्तव पादमूलम्॥

भा.-१०.२९.३१

हम तो सब कुछ छोड़कर तुम्हारे चरणोंमें आयी हैं।

सिञ्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम्।

दिलनंगा हो गया, यह हृदयका चीर-हरण हो गया। वे कहती हैं कि तुम्हारी मुसकान, तुम्हारी चितवन, तुम्हारी वंशीध्वनि—इन तीनोंने मिल करके हमारे हृदयमें मिलनकी आकांक्षाकी बड़ी तीव्र आग जला दी है। अब तुम अपने अधरोंके अमृतसे इसको सींच दो। एक स्त्रीके मुँहसे हजारोंके बीच यह बात निकलना! यह शरीरका चीर-हरण नहीं है, यह तो हृदयका चीर हरण है। वे कहती हैं—**पुरुषभूषण देहि दास्यम्।** हम तुम्हारी सेवा चाहती हैं। हम तुम्हें सुख पहुँचाना चाहती हैं। तुम बड़े संकोची हो, तुम्हें यह भी पता नहीं है कि तुम्हें सुख कैसे

मिलेगा। इस समय तुम कहते हो—कि लौटकर चली जाओ, लेकिन हमारे जानेके बाद तुम्हारी क्या दशा होगी—वह हम जानती हैं। हमें सेवाका अवसर दो।

यह जो श्रीकृष्णके प्रति गोपियोंका आत्म-निवेदन है, आत्म-समर्पण है, यह उनके जीवनकी एक विशेष बात है। और भगवान्‌के प्रति जो उनके हृदयमें प्रेम है, उसको प्रकट करनेके लिए उनको कहाँसे यह अधिकार मिला, कि इतना बड़ा त्याग करें? धन त्यागें, भोग त्यागें, सम्बन्धी त्यागें, यश-कीर्ति-प्रतिष्ठा-मान-पूजा त्यागें और अपना धर्म छोड़ें, अपना अधर्म छोड़ें, अपना सर्वस्व छोड़ें! उनको यह अधिकार कहाँसे प्राप्त हुआ? बोले—इसीके लिए भगवान्‌ने इनके हृदयका चीर-हरण किया। ये सामान्य स्त्री नहीं हैं, आत्मारमोऽप्यरीरमत्—भगवान् श्रीकृष्णने उनके साथ विहार किया।

अब विहारमें भी काम आने लगा, क्योंकि कामकी यह चाल है। कामनाका अर्थ होता है इन्द्रिय-सुख। मनमें पहलेसे होती है वासना और फिर इन्द्रिय और विषयोंका होता है सम्बन्ध। फिर इस सम्बन्धसे होता है सुखी होनेका अभिमान। तो वह वासनासे पैदा होता है। संयोगसे पलता है और अभिमान बनकर रह जाता है। इसका नाम होता है काम। वासना, इन्द्रिय और विषयका संयोग और अभिमान, इन तीनोंसे काम बनता है। यह कच्चा सुख है। बड़प्पन किसमें आया? तुममें कि इसमें? चले थे प्रेम करने! और भोग करके बड़प्पन अपनेमें ले आये—कि हमको ऐसा बढ़िया प्रेम प्राप्त हुआ। आ हा हा हा! अरे, बड़प्पन आना चाहिए प्रियतममें, कि अपनेमें? जब बड़प्पन अपनेमें ले आये तो प्रेम नहीं हुआ, काम हुआ वह। और इन्द्रिय विषयके संयोगसे प्राप्त हुआ। गोपियोंके चित्तमें काम नहीं, सच्चा प्रेम है।

बाहु - प्रसार - परिरम्भ - करालकोरु-
नीवीस्तनालभन - नर्मनखाग्रपातैः।

क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणा
मुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार॥ १०.३१.४६

एक दृष्टि रासलीलापर डाल लेते हैं, फिर गोपीगीत सुनाते हैं, क्योंकि गोपीगीतकी भूमिका भी तो चाहिए न! तो किस प्रसंगमें ये गोपीगीत गाये गये हैं, इस बातको आप जानें।

श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ नृत्य करने लगे। नाचते तो सब लोग हैं; आँख नाचती है रूपके साथ। हाथ नाचते हैं नोटोंके साथ, जब आते हैं न, हाथमें तो हाथको नचा देते हैं वे। कोई बढ़िया चीज जीभपर पड़े तो जीभ नाचती है। कभी कृष्णके साथ भी। अपने जीवनमें एक सवाल यह है—कभी कृष्णके साथ भी नाचते हो? त्यागके साथ नाच लिया, रूपके साथ नाच लिया, नोटके साथ नाच लिया और कृष्णके साथ कभी नाचा नहीं। जिन्दगी व्यर्थ गयी। विलायतमें कई लोग पछताते रहते हैं कि इस नटीके साथ हमको नाचनेका कभी मौका नहीं मिला। अरे, तुम्हारा मन पछतायेगा—कि हमें कृष्णके साथ नाचनेका कभी मौका नहीं मिला। नाचो, कृष्णके साथ नाचो।

देखो, गोपियोंको अभिमान हुआ—

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्यमानं च केशवः।

जब सुखका वातावरण मिला, तब गोपियोंकी नजर अपने ऊपर आयी। यह भी एक बहुत बढ़िया बात कही गयी है। ग्वाल-बाल कोई नई बढ़िया चीज देखते हैं, तो उनकी नजर कृष्णको छोड़कर उसपर चली जाती है। वे जंगलमें फूल देखने लगते हैं, फल देखने लगते हैं। माँकी नजर पूतनापर चली जाती है, भीड़-भाड़पर चली जाती है। लेकिन गोपियोंकी नजर कृष्णसे हटी तो सही, लेकिन दूसरेपर नहीं गयी। यह पत्नीका सम्बन्ध है, स्त्रीका सम्बन्ध है। जहाँ मित्र-मित्रका सम्बन्ध है, वहाँ दूसरेपर नजर जाना अपराध नहीं होता। लेकिन जहाँ पत्नी और पतिका सम्बन्ध होता है, वहाँ दूसरे पर नजर जाना अपराध हो जाता है।

गोपियोंकी नजर कृष्णपर-से हट तो गयी, लेकिन दूसरेपर नहीं गयी। कहाँ गयी? कि अपने ऊपर आयी—कि हम बड़ी सुन्दरी! हम बड़ी सौभाग्यवती! देखो, हमारे पीछे-पीछे कृष्ण दौड़ते हैं—कि अरी गोपियो! तुम तो हमारी प्राण हो। तुम्हारे बिना हमको एक क्षण भी अच्छा नहीं लगता। देखो, हम ऐसी सुख-रूपा, कि हमारे लिए कृष्ण भी व्याकुल! तो अपने सौभाग्यका मान और मद आया। अपने ऊपर नजर गयी।

देखो, प्रेम उसको कहते हैं जिसमें अपनी नजर प्रियतमपर होवे। वही याद आवे, वही याद आवे। ज्ञान उसको कहते हैं कि अपने सिवा दूसरी कोई चीज दिखे नहीं और संसारी उसको कहते हैं, जिसको संसार छोड़कर दूसरी चीज न दिखे। भक्त उसको कहते हैं जिसको भगवान् छोड़कर दूसरी चीज न दिखे। विषयाद्वैत, ईश्वराद्वैत और ज्ञानाद्वैत-ये तीन प्रकारके अद्वैत होते हैं। विषयाद्वैतमें सब संसार ही है; बोले—अरे मतलबी लोगोंने ईश्वरका नाम जोड़ रखा है, परलोक बना रखा है। यह स्वार्थी ब्राह्मणोंका काम है। अब देखो, कौन संसारी है? हर जगह जिसका यही ख्याल है कि सब मतलबी हैं, सब स्वार्थी हैं। और यह सब आत्म-विलास है, अपना आप ही सर्वरूपमें प्रकट हो रहा है—यह ज्ञानाद्वैत हो गया। और यह हमारा प्रभु जो है न, क्या नाच रहा है; इसका नाम हो गया प्रेमाद्वैत। महात्मा लोग तो सब एक सरीखा ही देखते हैं। उनके लिए इनमें कोई फर्क नहीं है; सब एक हैं।

अब देखा कृष्णने, कि ये तो इतना त्याग करके आयीं। इतना प्रेम किया, इतना त्याग किया। ऐसा चीर-हरण हुआ, ऐसा हृदय-हरण हुआ। और ये देखती हैं अपनी ओर! मेरी ओर देखती नहीं हैं। बोले—अच्छा, देख लो अपनी ओर थोड़ी देर!

❀

: २ :

आपको सुनाया था कि भगवान् कृष्ण गोपियोंके साथ क्रीड़ा करने लगे, तो कामको उन्होंने स्तब्ध कर दिया; जैसे खम्भा है न खम्भा—खड़ा, न हिले, न डोले, न बोले किसीसे। स्तब्ध होना माने स्तम्भित हो जाना। खम्भेके समान हो जानेका नाम स्तब्ध हो जाना है। माने, सामने आये कृष्ण, और इतनी कृपा, इतना प्रेम गोपियोंके ऊपर बरसाया कि उनकी स्व-सुखकी जो इच्छा थी, वह मिट गयी।

अब देखो, एक साधन रूप विघ्न आता है। पहले मैंने जब भागवत सुनाया था, तो उसमें सुनाया था कि भगवान्‌की प्राप्तिमें एक स्तर ऐसा आता है, जहाँ धर्म भी विघ्न होता है, जहाँ वेद भी विघ्न होता है, जहाँ समाधि भी विघ्न हो जाती है। उसीको श्रीमद्‌भागवतमें वृषभासुर कहा। धर्ममें असुर आगया न! अभिमान आगया, वृषभासुर हो गया। केशी असुर आया, वह वेदाभिमान, हयग्रीव हो गया। व्योमासुर आया, वह निराकारमें, समाधिमें अवस्थान हो गया।

जब भगवान् श्रीकृष्णने गोपियोंके साथ इतनी क्रीड़ा की, तो बाहर किसी भी वस्तुकी इच्छा नहीं रह गयी। शुद्ध प्रेममें कामका समावेश नहीं होता। तब गोपियोंके चित्तकी दो स्थितियाँ हो गयीं; एक तो बाहर कुछ नहीं चाहिए—तो मतवाली-मतवाली-सी हो गयीं, और एक अपने सौभाग्यका अनुसंधान करने लगीं। तब 'मैं' आगया। परमात्माकी प्राप्तिमें 'मैं'में निष्ठा होना; यदि योगशास्त्रके अनुसार समाधि लगाना होता और बाहरकी कामना मिटती और 'मैं'में स्थिति हो जाती, तो **तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्**, यह योगी निष्काम होकर, अपनी चित्त-वृत्तिका निरोध करके अपने स्वरूपमें स्थित हो गया। लेकिन प्रेमके मार्गमें, भक्तिके मार्गमें आत्म-निष्ठा जो है—द्रष्टाके स्वरूपमें स्थिति—यही विघ्न

है। सब कुछ भूलकर बैठे हैं तो भगवान् भी भूल गये! प्रेमके मार्गमें इस बातको बुरा मानते हैं।

अयोध्यामें संतोंकी सभा जुड़ी हुई थी। एक सज्जन पंखा झल रहे थे। पंखा झलते-झलते ऐसा आनन्द आया कि आँखमें आँसू आये, शरीरमें रोमांच हुआ—कि क्या सौभाग्य है हमारा। बेहोश होकर गिर पड़े, पँखा हाथसे छूट गया। दो-चार संत उठे, उनको वहाँसे उठाया, उनके ऊपर पानी छिड़का, उन्हें होशमें लाये। बोले—भाई, देखो! सेवाकी निष्ठा दूसरी है और आनन्द-आस्वादनकी निष्ठा दूसरी है। अब तुम पंखा झलनेके अधिकारी नहीं हो। अब इस अधिकारसे वंचित हो गये।

जो अपने आपमें मजा लेने लग जाता है, वह प्रेमका अधिकारी नहीं रहता। उसे तो अपना सुख अगर चाहिए था, तो सेवाके मार्गमें क्यों चला? अब मार्ग-भ्रष्ट हो गया। अगर दूसरेकी ओर मन गया, तो भी सेवासे भ्रष्ट हो गया। वह तो व्यभिचार हुआ। दूसरेकी ओर मन जानेका नाम संस्कृत-भाषामें व्यभिचार है। और अपनेमें यदि मन आया तो सेवासे वंचित हो गये।

गोपियोंके श्रीकृष्ण-प्रेममें विघ्न आया। वह विघ्न कैसे आया? कि श्रीकृष्णने उनका बड़ा सम्मान कर दिया।

एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः।
आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि॥

बोले—यह श्रीकृष्ण परम आकर्षक हैं, सबके मनको खींच लेते हैं। भगवान् सम्पूर्ण सौन्दर्य, माधुर्यकी निधि हैं। लेकिन एक बात साथमें और है—कि वे महात्मा भी हैं। अकेले भगवान् होते तो यह बात न बनती। अकेले महात्मा होते तब भी न बनती। ये तो परमात्मा भी हैं, और महात्मा भी हैं। यह डबल हैं न! भगवान् श्रीकृष्ण जो हैं, वह डबल हैं, द्विबल हैं। द्विबल होनेका अर्थ क्या हुआ? महात्मापनमें बल क्या है? कि उसको वह मन्त्र मालूम है। एक मन्त्र होता है; वह मन्त्र होता है—कि

साँपके बिलमें हाथ तो डाल दे, लेकिन साँपके काटनेका जहर न चढ़े। महात्मा लोगोंको वह मन्त्र मालूम होता है। वह क्या होता है? कि विमुक्त-चित्त होते हैं। महात्मा शब्दका अर्थ सुन्दर स्वामीने लिखा है **विमुक्तचित्तात्।** उनका चित्त ही संसारसे विमुक्त है। आत्मा मुक्त है—यह बात नहीं; उनका चित्त संसारसे मुक्त है। माने यह चाहे जब, चाहे जहाँ, चाहे जिसको छोड़ सकता है; यह महात्माकी विशेषता है। बैठे-बैठे वहीं शरीर छोड़ दे। बोलना बन्द कर दे, देखना बन्द कर दे, महात्मा। महात्मा माने क्या होता है? कि जिसका चित्त छूट चुका है। जब सूक्ष्म शरीर ही छूट गया, अपना नहीं रहा, तो सूक्ष्म शरीरमें जो आने-जानेवाले हैं, उनका छूटना क्या! जब शीशा ही फोड़ सकते हैं तो शीशेमें दीखनेवाली परछाईंकी क्या गिनती! ये तो शीशा ही उठाकर फोड़ सकते हैं!

बोले—भाई, अपने मार्गमें ठीक चलो। प्रेमके रास्तेमें चलो तो तुम्हारा मन अपने प्रियतममें होना चाहिए। अपने प्रियतमको छोड़कर सोचने लगे—कि हम बड़े सुन्दर! हमारे बिना कृष्ण नहीं रह सकते। रख दें उनकी पीठपर हाथ—कि हम नचावें, वैसे नाचो। तो कृष्णने मान दिया—कि सचमुच गोपी! हम तुम्हारे बिना नहीं रह सकते। उनके पीछे-पीछे घूमते रहे, उनके इशारेपर नाचते रहे। उन्होंने समझा, कि हम बड़ी सौभाग्यवती हैं। हमारे सौन्दर्य-माधुर्यपर मुग्ध होकर कृष्ण हमारे वशमें हो गये हैं।

बड़ा मान उनको प्राप्त हुआ। गोपियाँ कहती हैं—दुनियामें कौन ऐसी औरत है, जो हमारी बराबरी कर सके? लक्ष्मी है या सरस्वती है, चाहे इन्द्राणी है! अब महाराज, ऋषिकुमारी और नागकुमारी और राजकुमारी और देवकुमारी; दुनिया भरकी औरतें गोपियोंके दिमागमें घूमने लग गयीं। है कोई हमारी बराबरी करने वाली? और कृष्ण जो सामने थे—सो भूल गये।

तब कृष्णने कहा—कि अच्छा! अब तुम लोग थोड़ी देर घूमो। हमारी जरूरत तुम लोगोंको नहीं है।

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत॥

और ये ब्रह्माको, विष्णुको, शंकरको नचाने वाले हैं।

विधि हरि सम्भु नचावन हारे।

कश्च अश्च ईशश्च तान् नयते प्रशास्ति इति केशवः।

ब्रह्मा, विष्णु, महेशको नचाने वाले हैं केशव।

जासु सत्यता ते जड़ माया।
नाच नटी इव सहित सहाया॥

अपने मददगारों सहित माया नटी जिनके इशारोंपर नाचती है, वह सबको नचानेवाले प्रभु किसीके साथ नाच रहे हैं, तो उसके प्रेमके अधीन होकरके ही न! उसके गुणोंके अधीन होकर नाच रहे हैं, उसके अहंकारके अधीन होकर नहीं।

भगवान्‌ने सोचा कि गोपियाँ तो मस्तीमें आगयी हैं। कोई आनन्दानुगत समाधिमें, भीतर ही आनन्दका अनुभव करने लगी, कोई सौतोंसे अपनेको बढ़कर समझने लगी, कोई यह समझने लगी कि मैं इतनी सुन्दरी—कि कृष्ण हमारे ऊपर मोहित! अपनेमें डूब गयीं। तो यह जो आत्म-लीनता है, अपनेमें लीन होना, व्यक्ति में लीन होना—यह परमात्माकी प्राप्तिमें विघ्न है। इसलिए भगवान्‌ने कहा कि यह विघ्न निवारण करना चाहिए। यह बात हमने बिलकुल प्राकृत दृष्टिसे, दुनियादारीकी दृष्टिसे कही है। अब भगवान्‌की लीलाकी दृष्टिसे इसको देखें।

भगवान्‌की लीलामें यह पद्धति है कि भगवान् तो एक रस, आनन्दरूप हैं। सम आनन्द एक रस आनन्द—यह परमात्माका स्वरूप है। उसमें न घटता कुछ, न बढ़ता कुछ। सृष्टि पैदा होती है तब भी एक रस आनन्द, बढ़ती है तब भी एक रस आनन्द और डूब जाती है तब भी वही, एक रस आनन्द। अरे, घड़ा मिट्टीमें दिखाई पड़े तब भी मिट्टी और

टूट जाय तब भी मिट्टी। लग्न होय घट मृत्तिकामें, तब भी मिट्टी और मग्न हो जाय मृत्तिकामें, तब भी मिट्टी। तरंग उठे तो भी जल और डूब जाय तो भी जल। यह तो हर हालतमें परमात्माका आनन्द है।

एक दिन किसी भक्तने भगवान्से प्रार्थना की—कि भगवान्! आप एक ही तरीकेसे रहते हैं न! तो जैसे रोज-रोज कोई खीर खाये तो उसमें स्वाद नहीं आता है, रोज-रोज हलवा खाये, मालपुआ खाये, पूरी खाये तो उसमें क्या मजा आवेगा? जरा इसको बदलना चाहिए। भगवान्ने कहा—कि अच्छा! हामारा जो मजा है, रस है, वह तुमको हमेशा मिलते-मिलते ऐसा लगता है कि बासी पड़ गया। भाग मेरे सामनेसे! तो भगवान्ने भगा दिया उसको। अब वह रोवे-चिल्लावे, हाथ-पाँव पीटे। जब खूब व्याकुल हो लिया, तब आकर सामने भगवान् खड़े हो गये। आहाहाहा! भगवान् आगये! बड़े कृपालु, बड़े प्रेमी, बड़े भक्तवत्सल! बोले—क्यों भाई! अब कैसा लगता है? तो बोले—महाराज! आज बहुत मीठे लगते हैं। आज तो आनन्द आपका बढ़ गया!

यह आनन्द कैसे बढ़ा? यह विरहमें-से निकला। **न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते।** बिना विप्रलम्भके, माने बिना वियोगके संयोगका रस आता नहीं है। जब बीच-बीचमें चटनी-अँचार खा लेते हैं न, तब मीठी चीजका जो मजा है, वह बढ़ जाता है। तब संयोगका आनन्द बढ़ जाता है।

अब भगवान्का आनन्द बढ़े कैसे? पहले कई बार सुनाया होगा कि भगवान्के मनमें स्वयं एक बार संकल्प उठा, कि हम अपने आनन्दको और बढ़ायें। वह तो अनन्त है। अब अनन्तको बढ़ाओ, अनन्तका गुणा करो। अनन्तका दुगना कितना होगा? बताओ! कई लोग अनन्तानन्त बोलते हैं। अब अनन्तानन्त क्या होगा? अनन्तका अनन्तमें गुणा तो होता नहीं! अनन्त उसीको कहते हैं, जिससे बड़ी कोई चीज न हो सके। भगवान्के मनमें आया कि हम अपना आनन्द बढ़ावें। जब

बढ़ाने चले, तो न तो आनन्द बढ़ा न उमर बढ़ी—क्योंकि पहले ही से अनन्त! भाई, थोड़ी और बढ़ा लो उमर अपनी; सौ-पचासकी उमर हो तो बढ़ा कर सौ-दो सौ बरस कर देते! उमर तो पहलेसे अविनाशी! तो बोले—आओ, देश बढ़ावें। एक मीलमें दो मिलमें होवे तो उसको दस मील, पचास मील कर दें, तो वह भी नहीं बढ़ा। उसमें भी भगवान् अपने आनन्दकी उमर बढ़ानेमें भी फेल हो गये और लम्बाई-चौड़ाई बढ़ानेमें भी फेल हो गये। तो बोले—आओ, जरा घन कर दें। घन करना माने ठोस बना देना। कहते हैं, मथुराके एक चौबे पिता-पुत्र दोनों लड्डू खा रहे थे। बच्चेने पानी पी लिया। चौबेने एक चपत लगाया—एक लड्डू क्यों नहीं खाया? पानी क्यों पीता है? बच्चेने कहा—पिताजी, पानी इसलिए पीया कि वे लड्डू जो गले तक ऊपर लग रहे थे वे जरा नीचे बैठ जायँ, बराबर हो जायँ तो दो-चार लड्डू और खायँ। तो एक चपत और लगाया, बोले—पहले क्यों नहीं बताया हमको? हम भी ऐसा ही करते। लड्डूको भीतर घन करनेके लिए जैसे पानी पीया जाता है न, वैसे भगवान् अपने आनन्दको घन करनेके लिए, ठोस बनानेके लिए और कोई उपाय करें, तो वह पहलेसे ही इतना घनीभूत है, इतना ठोस है कि उसमें ठोस करनेकी कोई जगह ही नहीं।

भगवान् न तो लम्बाई-चौड़ाई बढ़ानेमें सफल हुए और न तो उमर बढ़ानेमें सफल हुए। अनादि, अनन्त और परिपूर्ण और घन—सद्घन, चिद् घन, आनन्दघन! अब कैसे बढ़ावें? तो भगवान्ने एक युक्ति निकाली। वे जो चाहते हैं, कर लेते हैं। फेल तो होते नहीं वे। क्या युक्ति निकाली? कि बोले—आनन्द तो एक ही है, लेकिन उसका आस्वादन करने वाले अन्तःकरण यदि अनेक हो जायँ, उसका रस लेने वाले अन्तःकरण अनेक हो जायँ, तो? गंगाजीकी धारा बढ़ रही है। मान लो, वह तो बढ़ नहीं सकती, पर उसमें एक गाय पानी पीती है। एक गायकी जगह हजार गायें पानी पीयें, लाख गायें आकर पानी पीयें, तो मजा बढ़

गया न गंगाजीका! रस- स्वरूप जो भगवान् हैं, वे अपने आनन्दको बढ़ाते कैसे हैं? कि पीने वालोंको बढ़ा करके बढ़ाते हैं। उनके जितने प्रेमी अधिक पढ़ेंगे, उतना- उनका आनन्द और बढ़ेगा।

भगवान्के मनमें संकल्प आया कि गोपियाँ हमसे इतना प्रेम करती हैं, तो इनका आनन्द बढ़ना चाहिए। यह अप्राकृतिक, दिव्य जगत्की बात है, यह दुनियादारीकी बात नहीं है। तो बोले—कि हम अगर मिले-ही-मिले रहेंगे, तब तो आनन्द एक रस रहेगा। यदि थोड़ी देरके लिए बिछुड़ जायेंगे तो इनका आनन्द और बढ़ जायेगा। दोनोंके बिछुड़नेमें भी प्रेम है। अपने प्रेमीको और सुख देनेके लिए, अपने प्रेमीको और आनन्द देनेके लिए भगवान्ने कहा—थोड़ी देरके लिए अगर विरह हो जाय, तो गोपियोंको आटे-दालका जो भाव है, वह मालूम हो जावेगा कि कृष्णके विरहमें कितना दुःख है। फिर मैं मिलूँगा तो इनको बड़ा आनन्द आवेगा। इसलिए थोड़ी देरके लिए भगवान्ने यह भूमिका बनायी कि हम अन्तर्धान हो जायँ। तो अन्तर्धान होनेके लिए कुछ उनकी शिक्षा भी चाहिए। सो उन्होंने ही गोपियोंकी नजर उनकी सुन्दरताकी ओर फेर दी। उनको बड़प्पनकी ओर फेर दिया। अब गोपियाँ देखने लगीं—कि हम बड़ी सुन्दरी, हम बड़ी गुणवती और हम बड़ी-बड़ी। तो अपनी ओर देखनेसे उनका मजा कम हो गया। जब उनका मजा कम हो गया, तो भगवान् वहाँसे चले गये। तो और कम हो गया। तब वे व्याकुल हुईं। जब वे व्याकुल हुईं तो भगवान् उनके सामने प्रकट हो गये। जैसे कोई मणि हो और उसके प्रकाशसे कमरेमें उजाला हो, तो एक चदरा रख दिया उसके ऊपर। मालूम न पड़ता हो, लोग न समझते हों कि यह उजाला किसका है, कहाँसे आ रहा है। तो क्या हुआ? कि घरमें अँधेरा छा गया। बोले—अरे रे रे! कुछ नहीं सूझता, कुछ नहीं सूझता। और जब लोग व्याकुल हुए, तो फिर चदरा हटा दिया। फिर मणिका प्रकाश जगमग-जगमग करने लगा। बोले—भाई! मणिमें तो बड़ा प्रकाश है!

इसी प्रकार भगवान् जो हैं, वे अपनेको लोगोंके बीच छिपाते हैं। यह मान भी भगवान्ने भेजा, यह मद भी भगवान्ने भेजा। अपनी योग-मायासे कहा—कि अरी योगमाया! तू कोई ऐसी युक्ति कर, जिससे गोपियोंका आनन्द बढ़ जाय। तो योगमायाने कहा—अच्छा महाराज! आप आनन्द बढ़ाना चाहते हैं तो हम गोपियोंके मनमें थोड़ा मद, थोड़ा मान पैदा कर देते हैं। जब इनके अन्दर मान, मद पैदा हो तो आप अन्तर्धान हो जाओ, छिप जाओ। क्यों? कि संसारमें जहाँ मान और मद होता है, वहाँ भगवान्का दर्शन नहीं हो सकता। कोई कहे कि हमको भांग पीकर नशेमें भगवान्के दर्शन होते हैं!

एक साधुका आश्रम था, है अभी भगवान्की कृपासे। वहाँपर बड़ी गुप्त रीतिसे प्रसाद बनता था। पेड़े बनते थे पेड़े। और उनमें यह जो शंकरजीकी बूटी है न, वह थोड़ी-थोड़ी डाल दी जाती थी। उसका चिह्न था अलग। उनके सामने प्रसाद रखा होता दो तरहका; किसको कौन-सा देना, किसको कौन-सा देना। जब लोग आश्रममें आते न, तो एक पेड़ा उठाकर दे दिया और कहा—जाओ, भजन करो। यहाँ आये हो, साधुके आश्रममें आये हो, भजन नहीं करते हो? अब वे जाकर महाराज, सरोवरके किनारे बैठे और प्रसाद खाया, तो छलकने लगा थोड़ा दिल ऊपरको। बोले—आहा! देखो न, कैसा दिव्य आश्रम है। यहाँ आनेपर तो दिल छलकने लगा। अब नशा पीकर कोई धरे ध्यान, तो क्या उसका ध्यान लगेगा! ऐसे ध्यान नहीं लगता है। नशा पीकर भगवद् रसका अनुभव नहीं हो सकता।

बहुत पुरानी बात है। हमारे एक मित्र थे। योगपर ग्रन्थ लिखे हैं उन्होंने। करीब बीस ग्रन्थ उनके छपे हुए बाजारमें मिलते हैं। वे थोड़ा पीकर तब लिखते थे। अब उसमें कौन-सी समाधि लगेगी और कौनसे भगवान् मिलेंगे? घमण्डमें चूर हैं, अपने आपको देख रहे हैं और बोले—कि ब्रह्मज्ञानका निरूपण कर रहे हैं। नोट गिनकर तिजोरीमें रखते

जा रहे हैं और कहते जा रहे हैं—संसार मिथ्या है, संसार मिथ्या है। माने नोटातिरिक्त जो संसार है, सो मिथ्या है; यही अर्थ हुआ न! ऐसे कहीं संसार मिथ्या होता है? तो बाबा! नशेकी हालतमें, अभिमानकी हालतमें प्रेम और ज्ञान—दोनों चीजें नहीं हो सकतीं। यह बात भगवान्‌की बतानी थी। अगर भगवान्‌की प्राणप्यारी गोपियाँ भी मद और मानमें आ जायँ, तो उनके बीचसे भी भगवान् अन्तर्धान हो जाते हैं। दूसरोंकी तो बात ही क्या है!

तो भगवान् अन्तर्धान हो गये।

एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः।
आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि॥

१०.३०.४७

तासां तत् सौभगमदं वीक्ष्यमानं च केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत॥ भा० ४८

गौड़ेश्वर सम्प्रदायके महापुरुषोंने इस श्लोककी व्याख्या जरा दूसरे ढंगसे की है। वे कहते हैं कि गोपियोंमें श्री राधारानी एक हैं और बाकी गोपियोंका स्तर दूसरा है। और गोपियोंको तो अपने सौभाग्यका मद हुआ—कि हम भी राधारानीके बराबर हैं, जैसे वह वैसे हम; क्या उनमें सुरखाबके पर लगे हैं? क्योंकि कृष्ण जैसे हमारे साथ नाचते हैं, वैसे उनके साथ भी नाचते हैं। और राधारानीको मान हुआ—जैसे मुझसे प्रेम करते हैं, वैसे ही दूसरोंसे भी प्रेम करते हैं? हमको गोपियोंके बराबर बना दिया? तो **तासां तत् सौभगमदं**। गोपियोंको हुआ अपने सौन्दर्यका, सौभाग्यका मद और राधारानीको हुआ मान।

अब भगवान् जब अन्तर्धान हुए, तो **प्रशमाय प्रसादाय**। गोपियोंका तो जो मद था, उसको मिटानेके लिए—कि तुम लोग अपनेको राधारानीके बराबर मत समझो; इस अभिमानमें मत फूलो—**प्रशमाय**। और **प्रसादाय**—एकान्तमें ले जाकर राधारानीको मनानेके लिए; उनका

पाँव छूकर, उनका शृंगार करनेके लिए—कि देखो, हम सब गोपियोंसे ज्यादा तुमसे प्रेम करते हैं। कैसे? कि सबको छोड़कर तुमको एकान्तमें ले आये न! देख लो! अब तो बराबरीकी बात नहीं रही न! तुम सबसे बड़ी हो।

राधारानीके प्रसादनके लिए, उनको खुश करनेके लिए और बाकी गोपियोंको सौभाग्यका जो गर्व है, उसको तोड़नेके लिए भगवान् अन्तर्धान हो गये।

अब भगवान्‌के अन्तर्धान होनेपर गोपियोंकी क्या दशा हुई?

अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः।
अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम्॥ २०.३०.१
गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर्मनोरमालाप - विहार - विभ्रमैः।
आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः॥

अन्तर्हिते भगवति-संस्कृत भाषाकी यह बड़ी विलक्षणता है; अन्तर्हितका अर्थ है 'छिप जाना,' और अन्तर्हितका अर्थ है 'भीतरसे भलाई करना।' अन्तर माने भीतर और हित माने भलाई। भीतरसे किसीकी भलाई करना और बाहरसे सख्ती बर्तना—इसका नाम होता है अन्तर्हित होना। और अन्तर्हित होना माने छिप जाना। तो भगवान् छिप गये, लेकिन गोपियोंकी उन्होंने भलाई की, क्योंकि उनके अन्दर जो मद-मान आया था, उसके निवारण के लिए ही तो छिपे न! तो उनकी भलाई हो गयी, भगवान् उनको मिल गये।

अब गोपियाँ जो हैं, वे ढूँढ़ने लगीं और अपनेको भूल गयीं। यह दवा है, चिकित्सा है; मद और मानकी चिकित्सा। इस चिकित्साका यह रूप प्रकट हुआ गोपियोंके जीवनमें। **गत्यानुराग स्मित-विभ्रमेक्षितैः।** वे चलें तो कृष्णकी तरह, मुस्कुरायें तो कृष्णकी तरह, आँख हिले तो कृष्णकी तरह। माने न केवल मनमें कृष्ण, बल्कि तनमें और चेष्टामें कृष्ण-ही-कृष्ण हो गये; इतनी तन्मयता हो गयी। कहाँ तो कृष्णको भूल

करके अपनी याद कर रही थीं—हम ऐसे, हम ऐसे; और कहाँ अब? कि अपनी याद ही भूल गयीं। कृष्ण-ही-कृष्णकी याद आ गयी। यह बड़ी भारी तन्मयता, बड़े भारी प्रेमकी बात है। प्रेम कहते ही उसको हैं, जहाँ अहं की विशेषता मिट जाये।

किसी-किसीका महाराज, अपने कुत्तेसे प्रेम हो जाता है। उनसे बात करो, तो सिवाय कुत्तेकी बातके दूसरी बात करना पसन्द नहीं करते। किसी-किसीको अपने नौकरसे प्रेम हो जाता है। वह उसीकी चर्चा दिनभर करता है।

मनोरमालाप-विहार-विभ्रमैः। अब कृष्णकी नकल करने लगीं। अपने आप पहले दुनियाको भूलकर कृष्णके लिए आयीं और फिर कृष्णको भूल करके अपनेको याद करने लगीं। अब कृष्णने इलाज किया उनके दुःखका। उनके रोगका इलाज जब हुआ, तब क्या हुआ? बस, कृष्ण ही कृष्ण, कृष्ण। अब तो महाराज, सबसे पूछें—अनुसंधानकी स्थिति। एक मनुष्य था। उसके मनमें परब्रह्म परमात्माकी जिज्ञासा थी—कि हम परमेश्वरको जानना चाहते हैं। लेकिन वह यह सोचे, कि हम ब्रह्मको तो जानना चाहते हैं, लेकिन ये जो भिखारी साधु गंगा-किनारे घूमते हैं और मधुकरी माँग-माँगकर खाते हैं, उनके पास जाकर मैं कैसे प्रश्न करूँ—तुम हमें ब्रह्म बताओ? हम सिंहासनपर बैठने वाले हैं। जब कोई हमारी जोड़का मिलेगा, तब न उससे जाकर पूछेंगे! अब देखो! ये ज्ञान भी प्राप्त करना चाहते हैं और अपना अभिमान भी रखना चाहते हैं।

चाखा चाहे प्रेमरस राखा चाहे मान।
एक म्यान में दो खडग देखे सुने न कान॥

एक जगह हम लोग गये। वहाँ कोई राजा था। माला पहनानेकी बात आयी, तो हमारे साथ कोई सफेद कपड़े वाले महात्मा थे। तो राजाने कहा—महाराज! हम गेरुआ कपड़े वालोंको तो अपने हाथसे माला पहना सकते हैं, लेकिन सफेद कपड़े वालेको हम माला कैसे पहनावें!

आप विचार करके देखो। जो सिंहासनपर बैठा महात्मा है, उससे तो हम पूछ सकते हैं, लेकिन जो अवधूत है, धरतीपर लेटा हुआ है, विरक्त है, भिखारी है—उससे भला हम कैसे पूछेंगे? जब जिज्ञासा होती है न, जब प्रेममें व्याकुलता आती है, तब यह नहीं देखा जाता कि हम किससे पूछ रहे हैं और किसके द्वारा संदेश भेज रहे हैं। यक्षने अपनी प्रियाके लिए संदेश भेजा बादलके द्वारा। जब प्रेममें आदमी व्याकुल होता है, तब उसको यह ख्याल नहीं रहता है कि हम किससे पूछ रहे हैं। अरे बाबा, जहाँ मिल जाये रत्न, वहाँसे उठा लो।

तो गोपियोंने **पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन्।**

वे जाकर बड़से पूछने लगीं—कि तुमने हमारे प्यारे श्यामसुन्दरको देखा है? पीपलसे पूछा। पाकरका जो वृक्ष होता है—प्लक्ष, उससे जाकर पूछा। ये तीनों वृक्ष बड़े-बड़े थे। फिर जमुनाके किनारे जो छोटे-छोटे वृक्ष थे, उनसे पूछा। अरे, ये तो सिर उठाकर बैठे हैं, क्या बतावेंगे। बोले—अरे, ये तो तीर्थके पण्डे सरीखे हैं। पण्डोंको कहीं ईश्वरका पता होता है? वे तो केवल अपनी दक्षिणा, पूजा ही जानते हैं। परमात्माके स्वरूपका ज्ञान कैसे करावेंगे? वह तो एक किंवदन्ती, कथा-कहानी सुना देंगे। लताओंके पास गयीं; बोलीं—ये तो सौतिया डाह करती हैं। भला हमको क्यों बतावेंगी? तुलसीजीके पास गयीं। बोलीं—बाबा, यह तो अपने बराबर किसीको कुछ समझती ही नहीं हैं। देखो, प्रेममें जो अपने प्रियतमसे मिलनेकी तीव्र इच्छा होती है, उस इच्छाका यह फल है कि यह ख्याल छोड़कर-कि कौन हमको बता सकेगा, कौन नहीं—सबसे पूछते चले जा रहे हैं।

आप लोगोंके जीवनमें शायद आया न हो, हम कभी-कभी जंगलमें रास्ता भूल जाते थे। एक बार चित्रकूट गये। अब जानकी घाटसे आना था चित्रकूट बाजारमें, तो हमने सोचा—सीधे ही चल पड़ें। अब

सीधे ही चल पड़े तो कहाँ-से-कहाँ, कुछ मालूम ही न पड़े। बड़े-बड़े नाले, बड़े-बड़े खोह, बड़ा जंगल। अब तो बाबा, कैसे रास्ता मालूम पड़े? व्याकुल हो गये। उस समय रास्तेका ज्ञान प्राप्त करनेकी जो इच्छा हुई थी न—कि कैसे भी रास्ता मिल जाय! उसकी जब याद करते हैं तो मनमें यही आता है कि ईश्वरकी प्राप्तिके लिए—किस रास्तेसे ईश्वर मिलेगा—व्याकुलता होवे अपने मनमें, तो ऐसी होवे। एक महात्मासे किसीने पूछा—ईश्वरकी प्राप्तिकी इच्छा कैसी होनी चाहिए? तो जब स्नान करनेके लिए वे नदीमें गये तो महात्माने उनको डुबो दिया। अब जब वह उब-चुब होने लगे, पानी पीने लगे तो जोर लगाकर महात्माने उनको निकाल लिया। बोले—महाराज, आप तो हमको मार रहे थे। महात्मा बोले—नहीं, मार नहीं रहे थे। तुमको बता रहे थे कि संसारसे निकलनेके लिए और ईश्वरको पानेके लिए कैसी इच्छा अपने मनमें होनी चाहिए। पानीमें-से निकलनेके लिए, बाहर आनेके लिए जैसी इच्छा तुम्हारे मनमें हो रही थी न, वैसी इच्छा चाहिए ईश्वरकी प्राप्तिके लिए।

गोपियाँ व्याकुल हो गयीं और तन्मय हो गयीं। अब उन्होंने क्या किया—कि कृष्णकी लीला प्रारम्भ की। एक गोपी सखा बन गयी। दूसरी गोपी कृष्ण बन गयी। उसने उसके कन्धेपर हाथ रखा और बाँसुरी बजानेकी मुद्रामें खड़ी हो गयी। एक कृष्णकी चालकी नकल करके चलने लगी। **कृष्णोऽहं पश्यतगतिं**। सोऽहं सोऽहं बोलते हैं न! तो गोपी बोली—कृष्णोऽहं, मैं कृष्ण हूँ, **पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः**। देखो, मैं कैसा बढ़िया चलती हूँ, मेरी चाल तो देखो न! कृष्णकी चाल उसके मनमें समायी हुई है। अभिनय करने लग गयीं गोपियाँ सब-की-सब। तन्मय, एकदम तन्मय।

उसके बाद उन्होंने देखे कृष्णके चरण-चिह्न। उससे जब आगे बढ़ीं तो बड़ी विचित्र एक स्थिति देखी उन्होंने; जैसे आकाशमें चमकनेवाली बिजली आकर धरतीपर गिर गयी हो, जैसे कोई सोनेकी

मूर्ति हो, जैसे कोई चम्पक लता हो—ऐसे उन्होंने देखा, कोई धरतीपर पड़ा हुआ है। जब पास गयीं तो देखा, राधारानी थीं। अरे, यह क्या गति? उठाया उनको, जल छिड़का। अपना दुःख भूल गयीं। उनको होशमें लायीं, पूछा—तुम्हारी ऐसी गति क्यों हुई? यह भी प्रेकी एक बात है। कभी-कभी प्रेममें दिखानेकी वासना हो जाती है। जब श्रीकृष्ण और राधा एकान्तमें गये और बड़ी सुन्दर लीला, आनन्दकी लीला हुई, तो राधारानीके मनमें आया—कि मुझे तो यह आनन्द मिल रहा है और यह हमारी इन गोपियोंको देखनेको नहीं मिल रहा है। उनके मनमें आया कि गोपियाँ भी देखें। कृष्णने कहा—अच्छा! मैं तो तुम्हारे साथ हूँ और तुम गोपियोंकी याद कर रही हो। लो, अब तुमको गोपियोंमें भेजता हूँ। फिर जब लीला करूँगा, तब देखना।

अब राधारानीने कहा—मैं कन्धेपर चढ़कर चलूँगी। कि आओ कन्धेपर। और कन्धेपर बैठने लगीं, तो गायब! वे भी बेहोश होकर वहाँ गिर पड़ीं।

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम्॥

१०.३०.४०

हे नाथ! हे रमण! हे परम प्रेष्ठ प्रियतम! मैं तुम्हारी दासी हूँ, अज्ञ हूँ। दौड़ो, दौड़ो! तुम्हारी भुजाएँ तो बहुत लम्बी हैं। जहाँ हो, वहींसे मुझे पकड़कर उठा लो। बस, तुम मुझे बताओ—कि तुम मेरे साथ हो, तुम कहीं गये नहीं हो।

तब गोपियाँ आयीं। अब गोपियोंने कहा कि चलो, ढूँढें। सम्पूर्ण बनमें उन्होंने ढूँढा। फिर उनके मनमें एक ख्याल आया, कि बनमें चाँदनी खिली हुई है, लेकिन इतने वृक्ष हैं, कि वृक्षोंकी छायामें तो अन्धेरा ही मालूम पड़ता है। यदि इन अन्धकारमय वृक्षोंकी छायामें, घनी झड़ियोंमें हम कृष्णको ढूँढने जायेंगी और वह मिलना चाहेंगे नहीं, तो जितना-

जितना हम झाड़ीमें घुसेंगी, उतना ही-उतना वह और घनी झाड़ीमें चले जायेंगे। उनके पाँवमें कहीं काँटा न लग जाय। उनके शरीरमें कहीं कोई डाली न लग जाय, छिल न जाय। कोई कीड़ा-मकोड़ा उनके पाँवके नीचे न आजाय। ऐसा हुआ तो उनको बड़ी तकलीफ होगी। हम भले जिन्दगी भर उनके विरहमें घुल-घुलकर मर जायँ, लेकिन उनको तकलीफ नहीं देंगी। एक क्षण अपने प्रियतमको दुःख होता हो और उससे बचानेके लिए यदि प्रेमीको करोड़ कल्प दुःख भोगना पड़े तब भी प्रेमीका यह भाव होता है कि हम जन्म-जन्मका, जुग-जुगका, करोड़ कल्पका दुःख अपने ऊपर लेते हैं, लेकिन हमारे प्रियतमको एक क्षणके लिए भी दुःखका आभास प्राप्त नहीं होवे। यह प्रेमकी स्थिति है।

तो गोपियोंने कहा—हम विरहका दुःख सहेंगी, लेकिन श्याम सुन्दरके पाँवमें कोई काँटा नहीं गढ़ने देंगी! तो वे लौट आयीं।

अब तो गोपियोंकी स्थिति यह थी—कि घर भूल गया, शरीर भूल गया।

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ।
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥

१०.३१.४४

न उन्हें अपने शरीरकी सुध, न घरकी सुध। बस, कृष्णमें मन, कृष्णकी वाणी, कृष्ण ही उनके वचनमें। कृष्णकी ही उनके शरीरमें चेष्टा और कृष्णके ही गुणोंका गान! और यह सब वहीं, जहाँ कृष्ण खोये थे। बोले—भाई, चीज मिलती कहाँ है? कि जो चीज जहाँ खोती है, वह चीज वहीं मिलती है। तो जमुना किनारेसे चले गये हैं; तो चलो जमुनाजीके पुलिनपर। और वहाँ इकट्ठी होकर गोपियाँ अब गाती हैं श्रीकृष्णको बुलानेके लिए।

❀

: ३ :

हम प्रेमकी चर्चा कर रहे थे। तो गोपियाँ प्रेमसे श्रीकृष्णको बुलाती हैं—

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥

१०.३१.१

इसको गोपीगीत बोलते हैं। उन्नीस गीतोंमें-से यह पहला गीत है, इसको कनकमंजरी छन्दमें कहा गया है। कनकमंजरी; धतूरा होता है न, धतूरा, जिसको खानेसे आदमी मर जाता है, नशा हो जाता है—वह धतूरा; कनक माने धतूरा। और उसकी मंजरी माने जो उसके जीरे होते हैं। उसके खानेसे जैसे नशा होता है न, वैसे गोपियोंके प्रेमके इन गीतोंको गानेसे नशा होता है। और इसमें चित्र हैं; ऐसे ढंगसे इसको लिखा जायेगा, कि चित्र बनेगा। देखो, इस श्लोकके प्रत्येक चरणमें दूसरा अक्षर 'य' है—जयति, श्रयत, दयित, त्वयि। और सातवें अक्षर जो हैं, वे प्रायः एक हैं। तो इनको लिखनेका ढंग यह होता है कि चित्र बन जाता है। ऐसी बढ़िया कविता है, इतनी भावमयी, ऐसी रस और अलंकारसे सराबोर! जैसे हृदयके मन्दिरमें एक दियेकी लौ जलती हो। वह प्रेमकी दीपशिखा है, दियेकी लौ है। पर जबतक वह हृदय-मन्दिरके भीतर रहती है, तबतक तो बड़े आनन्दसे प्रज्ज्वलित होती रहती है, लेकिन **द्वारादयं वदनतस्तु बर्हिगतश्चेत्**—यदि वह मुँहके दरवाजेसे कहीं बाहर निकाल दी गयी, तो **निर्वाति शान्तिमथवा तनुतामुपैति**—यह बुझ जाती है। बाहरकी हवा

लगी न! गाँवमें चर्चा चली। प्रेम बहुत कोमल, गुलाबकी पंखुड़ीसे भी कोमल, कमलसे भी कोमल है। तो लोगोंकी जब नजर लगती है, बाहरकी ताजी हवा लगती है तो वह लड़खड़ा जाता है, वह सूख जाता है, बुझ जाता है, डावाँडोल हो जाता है। जबतक गुप्त रहता है, तबतक सम्हालनेकी जरूरत नहीं पड़ती, जब प्रकट हो जाता है तब बहुत सम्हालना पड़ता है प्रेमके बारेमें शास्त्रका यही सिद्धान्त है—कि वह गुप्त रहे। गोपियाँ तो प्रेम-रूपिणी हैं, इसलिए वे अपने प्रेमको गुप्त रखती हैं। इसलिए उनका नाम 'गोपी' है।

अब दूसरी बात देखो। गोपियाँ प्रेमको ही गुप्त नहीं रखती हैं, भगवान्‌को भी गुप्त रखती हैं, क्योंकि भगवान् गुप्त रहनेके लिए व्रजमें आये हैं। प्रकट होना होता तो मथुरामें ही प्रकट हो जाते। व्रजमें क्यों आये? कि कंसको पता न चले। तो देखो—जहाँ स्वयं मालिक छिपकर रहना चाहता हो और सेवक उसको जाहिर कर दे, तो यह कोई सेवा नहीं हुई न! कोई प्रेम नहीं हुआ। जैसे समझो, हम कथामें कोई बात कहें और कहें—कि हम उस आदमीका नाम जाहिर नहीं करना चाहते, तो हमारे जो श्रोता हैं, उनमें-से अगर किसीको मालूम हो तो अच्छा श्रोता उसीको समझना चाहिए, जो उसको जाहिर न करे। हमने तो उसको गुप्त रखनेकी कोशिश की और श्रोताओंने आपसमें कानाफूसी करली—कि अमुकके बारेमें यह कह रहे हैं। उसको अच्छा श्रोता नहीं समझना चाहिए। जब मालिक खुद छिपकर व्रजमें, वृन्दावनमें रहना चाहता है, तो जो उनके प्रेमी हैं, उनका भी धर्म यही है, कर्तव्य यही है कि उसको छिपावें। अगर जाहिर हो जाय—कि यह भगवान् हैं, यह ईश्वर हैं, तो कंस अगर कल आनेवाला हो तो आज ही आ जावे। कल लड़ाई होने वाली हो तो आज ही हो जाय। अपने प्रियतमे लिए लड़ाई-झगड़ेवाली बातको जल्दी बुला देना—यह कोई प्रेमीका काम तो नहीं है न! अगर वह एक पर्देमें छुपना चाहते हैं तो हम सात पर्दे तान देते हैं। कृष्ण कहते हैं—मैं ईश्वर नहीं,

मनुष्य हूँ। तो गोपियाँ कहती हैं—मनुष्य नहीं, चोर है। लो, एक पर्दा और पड़ा। कृष्णने कहा—मैं ईश्वर नहीं, मनुष्य हूँ; तो गोपियोंने कहा—यह तो हम लोगोंसे छेड़छाड़ करता है। यह तो भलेमानुस भी नहीं है, ईश्वर कहाँसे होगा। नारायण कहो!

तो यह प्रेमकी बात हुई—कि जो श्रीकृष्णकी इच्छा है, जो प्रसन्नता है, जो रुचि है, जैसा वह चाहता है—वैसा ही गोप्याँ करती हैं।

तो बाबा! यह प्रेमका रास्ता जरा टेढ़ा है।

अहेरिव गतिः प्रेम्णः स्वभावकुटिला भवेत्।

अरे, यह प्रेम टेढ़ा चलता है। जैसे कोई शान्त गम्भीर महात्मा होवे और वह रास्तेमें चले तो चार हाथसे ज्यादा देखे नहीं। बिलकुल नाककी सीधमें चला जा रहा है, दाहिने-बायें कौन रास्ता जाता है, कौन आदमी आता है—उसको पता ही नहीं चलता है। और महाराज, जो चंचल चपल आदमी होते हैं न, वे निशाना साधते हैं आँखका—कि जा रहे हो उत्तर और देख लें पश्चिम और दक्षिणका कोना। जा रहे हो उत्तर और देख लें पूरब और दक्षिणका कोना! तो जो प्रेम है, वह सीधी चाल नहीं चलता। इसमें बुलाओ—तो भाग जाता। सामने आओ तो मुँह फेर ले और दूर रहो तो नाम लेकर रोवे। प्रेमकी गति बड़ी विलक्षण है।

यह जो गोपी है, यह श्रीकृष्णके प्रेमको भी गुप्त रखती है और श्रीकृष्णकी ईश्वरताको भी गुप्त रखती है। तीसरी बात यह है कि गोपी उसको कहते हैं—जो अपनी इन्द्रियोंसे कृष्ण रसका पान करे। **गोभिः पिबति। गोभिः इन्द्रियैः पिबति श्रीकृष्ण-रसं-इति गोपीः।** जो अपनी इन्द्रियोंसे श्रीकृष्ण रसका पान करे, आँखोंसे उनकी रूप-माधुरीको पीये, कानोंसे उनकी बंसीकी मिठासको पीये, त्वचासे उनके स्पर्श-रसका पान करे, नाकसे उनकी सुगन्ध सूँघे। **पिबन्ति इव चक्षुर्भ्यां, लिह्यन्ति इव जिह्वया**—जैसे जीभसे चाट लेंगी **रम्भन्ति इव बाहुभ्यां**—जैसे हाथोंसे पकड़कर हृदयसे लगा लेंगी। गोपियोंकी जो इन्द्रियाँ हैं, वे भगवद्-रसमें

डूबी हुई, भगवद्-रसमें सराबोर हैं। अब जिनके भगवान् बिलकुल निराकार हैं, उनके भगवान् तो न आँखसे देखे जायेंगे, न जीभसे चाटे जायेंगे, न नाकसे सूँघे जायेंगे, न त्वचासे छूये जायेंगे। वे तो इन सबको जहाँ-का-तहाँ खोलकी तरह छोड़ करके भीतर समाधिमें,अन्तरंगमें जाकर चाहे निराकाराकाराकारित जो वृत्ति है—उसमें स्थित हो जायँ और चाहे द्रष्टाके स्वरूपमें अवस्थित हो जायँ, चाहे ब्रह्मात्मैक्यकी जो स्थिति है—उसको प्राप्त करलें।

और नास्तिक हों, महाराज? तो बोलें—सद्गुण आगया जीवनमें। और ईश्वरकी प्राप्ति हो गयी। इसीमें रह जायँ। पर यह प्रेमका पंथ तो बड़ा विलक्षण है। इसमें तो ईश्वर जो है—

यह प्रेम का पंथ करारो महा
तरवार की धार पे धावनो है।

यह बड़ा करारा मार्ग है, तलवारकी धार पर दौड़ने जैसा। इसमें साधारण लोग नहीं चल सकते हैं।

यह गोपियोंकी तीसरी बात है—कि वे अपनी इन्द्रियोंसे श्रीकृष्ण-रसका पान करनेवाली हैं। जो ध्यान करते हैं, वे मनसे ध्यान करते हैं, उनको मनसे भगवान् मिलते हैं। जिनको ज्ञान होता है, उनको स्वरूपसे भगवान् मिलते हैं। और जिनके भगवान् प्रत्यक्ष होते हैं, उनको शरीरसे, इन्द्रियोंसे भगवान् मिलते हैं। तो अवतार-रूपमें भगवान्‌को माननेका अर्थ यही है कि इसी जीवनमें, इसी शरीरसे, इन्हीं इन्द्रियोंसे भगवद्-रसकी साक्षात् प्राप्ति होवे। इसका नाम अवतार-सिद्धान्त है। ईश्वर निराकार है और यह जगत् प्रकृतिने बनाया है और जीव अलग है—ऐसा मान करके इस सिद्धान्तकी निष्पत्ति नहीं होती। इस सिद्धान्तकी सिद्धि इस ढंगसे होती है कि एक परमात्माके सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है। वही प्रकृति है, वही जगत् है, वही जीव है। वही सर्वात्मा होकर प्रकट हो रहा है। जब भक्तके हृदयमें भक्ति बढ़ती है, प्रेम बढ़ता है, तब वह

भगवान् अपनी गुप्तताको छोड़कर प्रकट हो जाता है। यह इसका सिद्धान्त है।

अब गोपियोंके बारेमें चौथी बात बताते हैं। यह गोपीका जो मार्ग है, वह संयमका मार्ग है, भोगका मार्ग नहीं है, क्योंकि **गाः इन्द्रियाणि पान्ति इति गोपाः**। गोप किसको कहते हैं? कि जो अपनी इन्द्रियोंको सुरक्षित रखते हैं। स्त्रीलिङ्गमें इसी 'गोप'का 'गोपी' शब्द बनता है। तो इसका अर्थ हुआ—**गाः इन्द्रियाणि पान्ति इति गोप्यः**। गोपी किसको कहते हैं? कि जो अपनी इन्द्रियोंको सुरक्षित रखती हैं, अर्थात् संसारके विषय-भोगोंमें अपनी इन्द्रियोंको नहीं जाने देतीं। वे कहती हैं कि हमारी आँख केवल श्रीकृष्णके रूपको देखेगी—

बावरि वे अँखियाँ जरि जायँ
जो साँवरो छाड़ि निहारति गोरो।

वे आँखें जल जायँ, जो साँवरे सलोने व्रजराजकुमारको छोड़कर दूसरेको देखती हैं।

धोखेहु दूसरो नाम कढ़े रसना
मुख काढ़ि हलाहल बौरों॥

अगर दूसरा नाम धोखेसे भी निकल जाये, तो मूँहसे जीभ निकाल करके जहरमें डुबो दें। इसका अर्थ क्या हुआ? कि उन्होंने अपनी इन्द्रियोंको इतना सुरक्षित, इन्द्रियोंका इतना वशीकरण कर रखा है, कि वे अपने प्रियतम प्रभु श्रीकृष्णको छोड़कर दूसरी जगह अपनी इन्द्रियोंको जाने ही नहीं देतीं। इसलिए उनका नाम गोपी हुआ। संसारके विषयोंकी ओरसे उनकी इन्द्रियाँ हट गयी हैं। यह बात पहले भागवतमें आ चुकी है। **संत्यज्य सर्वविषयाँस्तव पादमूलं भक्ताः**—हम सम्पूर्ण विषयोंको छोड़कर तुम्हारे चरणारविन्दकी भक्त हैं। **तदर्थ विनिवर्तित सर्वकामाः**—श्रीकृष्णके लिए उन्होंने सम्पूर्ण कामनाओंका परित्याग कर दिया है।

तो विषयका परित्याग करनेवाली, कामनाका परित्याग करनेवाली गोपी और केवल श्रीकृष्णकी ईश्वरताको छिपानेवाली, गोपन करनेवाली गोपी। अपने हृदयमें विराजमान जो श्रीकृष्णका प्रेम है—उस प्रेमको भी छिपानेवाली गोपी; ऐसी है गोपी। ऐसी जो गोपी है—वह आज अपने प्रियतमसे अलग हो गयी है। प्रियतम रूठ करके इस रात्रिके समय जंगलमें छिप गया है। अब उसके बिना यह गोपी कैसे रहे? तो बोले—यह गोपी जब अपने प्रेमको गुप्त रखनेवाली है, तो चुप ही रहे। चाहे हृदयमें कितनी भी पीड़ा होवे, लेकिन चुप रहे। मुँहसे एक शब्द न निकाले।

बोले—बात तो ऐसी ही है। मुँहसे एक शब्द न निकलना चाहिए। लेकिन यह जीवन तो कृष्णका है, यह हृदय तो कृष्णका है। कहीं उनके विरहमें इतनी पीड़ा हुई, इतना कष्ट हुआ कि हृदय फट गया, तो? यह हृत् जो है—फेल हो गया? हृत्, हार्द, हार्ट। संस्कृतमें जो हृत् है, उसको अंग्रेजीमें हार्ट बोलें तो इसमें कोई नई बात नहीं निकलेगी। तो कहीं श्रीकृष्णके विरहके दुःखसे गोपीका हार्ट फेल हो जये, तो? गोपीका यह विचार है कि हमारे मरनेसे हमको दुःख नहीं होगा, क्योंकि हम तो मरकर श्रीकृष्णके पास पहुँच जायेंगी। हमारे लिए तो जन्म और मरणका कोई अर्थ नहीं है। हम तो भौंरी बन जायेंगी।

एक सासने अपनी बहूसे कहा—कि अरी बहू! जब श्रीकृष्ण गाय चराकर लौटते हैं, तो तू छज्जेपर मत जाया कर, उसको मत देखाकर। वह बोली—बहुत बढ़िया, सासजी! लेकिन कल जब आपको हमको कोई आज्ञा देनी हो, तो शायद आप हमको पहचान न सकें। तो कैसे आज्ञा दें—मैं बताये देती हूँ। जब श्रीकृष्ण गौचारण करके लौटें, तो उनकी वनमालापर जो भौंरी गुनगुना रही हो न, आप समझ जाना कि यही मेरी बहू है। तो जो हुक्म देना हो, उसीको देना। मैं श्रीकृष्णको देखे बिना जिन्दा तो रह नहीं सकती, मर जाऊँगी। और

जब मैं मरूँगी, तो श्रीकृष्णकी बनमालाकी भ्रमरी बनकर तब ही आऊँगी।

तो प्रेम जो होता है, उसको मरनेका डर नहीं होता। वह तो मरकर अपने प्रियतमको ही मिलेगा। परन्तु गोपियोंका ख्याल यह है कि कहीं हम श्रीकृष्णके विरहमें मर गयीं, तो यह समाचार कृष्णके पास पहुँचेगा कि नहीं पहुँचेगा? पहुँचेगा तो जरूर—कि कृष्णके विरहमें गोविन्दा गोपकी बेटी मर गयी। जब मालूम पड़ेगा तो उनको बड़ा दुःख होगा कि हमारी प्रेमिका, हमारी गोपी हमारे लिए मर गयी। तो मरनेसे बचनेका उपाय क्या है? कि—

शोके क्षोभे च हृदयं प्रलापैरवधार्यते।
पूरोत्पीडे तडागस्य परोवाहः प्रतिक्रिया॥

जब किसी सरोवरमें लबालब पानी भर जाये और ऐसा मालूम पड़े, कि अब तो यह तटको तोड़कर बाहर बह जायेगा, तो अगर उसको थोड़ा बहा दिया जाये, तब तो सरोवरकी रक्षा होती है, और अगर उस पानीको न बहाया जाये, तो पता नहीं कहाँसे तोड़कर बह जाये! इसलिए यह जरूरी है कि थोड़ा पानी बहा दिया जाये। हृदयमें जो पीड़ा है, उसको निकालनेका यही उपाय है कि उसको अपने हृदयमें-से बोल करके बाहर निकाल दिया जाये। इसलिए जब हृदयमें क्षोभ होवे, तब थोड़ा ऊटपटांग बोले देनेसे, अपने दिलकी बात जाहिर कर देनेसे— **शोके क्षोभे च हृदयं प्रलापैरवधार्यते**—हृदयको थोड़ा आश्वासन मिलता है, थोड़ा ढाढस बँधता है। इसलिए **गोप्यः ऊचुः**का अर्थ है, कि यद्यपि स्वभावसे वे गोपनशील हैं, अपने दिलकी पीड़ाको किसीके सामने बोलनेवाली नहीं, फिर भी हमारे मर जानेसे कृष्णको दुःख पहुँचेगा, तो हमें अपने जीवनकी रक्षा करनी चाहिए—इस दृष्टिसे उन्होंने यह संगीत प्रारम्भ किया; यह संगीत माने हृदयकी जो वेदना है, उसको जाहिर करना।

आप शायद जानते हों, व्रजभूमिमें लोग इतने प्रेमी होते हैं, आदमी एक अक्षर पढ़ा लिखा नहीं, हस्ताक्षर न कर सके, लेकिन महाराज! ऐसी कविता उसके मुँहसे निकलती है, ऐसा रसिया गाता है—

जो सुख बरस रह्यो बरसाने,
सो सुख बैकुण्ठहुँ नाँय॥

यह किसी महाकविकी रचना, थोड़े ही है! यह तो व्रजके गाँवके जो गँवार हैं, उन लोगोंकी रचना है। जब हृदयमें प्रेम होता है, तब बोलीमें अपने आप ही कविता, अपने आप ही संगीत आजाता है। महाराज, व्रजके जो लोग हैं, वे कभी भरतनाट्यम् नहीं सीखते हैं न कथककली और न असमिया मणिपुरी नृत्य। अरे, वहाँ तो बच्चे जनमते हैं और वे एक हाथ कमर पर रखकर और एक हाथ उठाकर ***कदम तरे आ जइयो करीले काजर वारी*** गाते हैं। नन्हें-नन्हें बच्चे, समझते नहीं हैं कि क्या गा रहे हैं, पर गाते हैं—***सास ननद को अंगूठा दिखा दीजो।*** छोटे-छोटे, नन्हें-नन्हें बच्चे भी नाचना जानते हैं। प्रेमकी चालका नाम है नृत्य। प्रेमी जब चलता है तब उसके पाँवमें अपने आप ही नृत्य आजाता है। प्रेमी जब बोलता है तब उसकी वाणीमें अपने आप ही संगीत आजाता है, अपने आप ही कविता आजाती है। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ सब मधुर-ही-मधुर, मीठा-ही-मीठा, आनन्द-ही-आनन्द दिखायी पड़ता है।

अब देखो गोपियोंको। न तो इन्होंने जाकरके किसी साहित्याचार्यसे शास्त्रकी रीति सीखी थी और न तो किसीसे संगीत सीखा था। न उन्होंने प्रेमशास्त्रका स्वाध्याय किया था—कि प्रेममें कितने ऊँचे-ऊँचे भाव होते हैं। यह तो इनके हृदयमें ही जो श्रीकृष्णके प्रति प्रेम है, वह कविता बनकर, संगीत बनकर, नृत्य बनकर वही प्रेमका भाव ही प्रकट हो रहा है।

अब देखो! यदि बहुत-सी गोपियाँ एक साथ बोलने लग जायें

तो कोलाहल मच जायेगा कि नहीं? जब कई लोग स्वर-में-स्वर मिला कर गाते हैं न—भाव एक हो, तो एक ही प्रकारके शब्द निकलते हैं। हमारे एक प्रेमी मित्र हैं, उन्होंने अपना संस्मरण लिखकर भेजा है। उस समय हम लोग सत्रह-अट्ठारह वर्षके थे और ट्रेनमें अयोध्याजीसे कहीं दूसरी जगह जा रहे थे। वह भी कविता लिखते थे, मैं भी कविता लिखता था। दोनों रेलगाड़ीके एक डिब्बेमें दो सिरेपर बैठ गये। और तय हुआ कि आओ, एक ही चित्त होकरके कविता लिखें। कविता नई लिखनी थी, पुरानी नहीं। जब दोनोंने लिखकर मिलायी, तो दोनोंकी कवि :: एक-सी ही थी। दोनोंने बिलकुल एक ही बात लिखी थी।

कहनेका अभिप्राय य : है कि जहाँ दो आदमियोंका मन एक ही विषयसे प्रेम करता है और एक स्तरपर पहुँच जाता है, वहाँ दोनोंके भाव भी समान हो जाते हैं दोनोंके शब्दोंका चुनाव भी एक ही हो जाता है। ये जो गोपियाँ हैं, उनके प्रेमके विषय हैं श्रीकृष्ण। सबका जो भाव है, वह भी एक है। पहले तो जरा अलग-अलग हो गया था। भगवान् अन्तर्धान हुए—उस समय अलग-अलग हो गया था। लेकिन जब विरहकी पीड़ा पहुँची और गर्मी लगी सबको, तो सब यही चाहने लगीं कि वह श्यामसुन्दर—जिसके मुखारविन्दसे शीतल चाँदनी छिटकती है—जल्दीसे जल्दी हमारी आँखोंके सामने आजायें तो हमारे हृदयका ताप बुझे। तो सबका भाव एक, सबका मन एक, सबका स्वर एक, सबकी कविता एक, सबकी शब्दावली एक! अथवा यह कहो कि उन्नीस प्रकारकी गोपियाँ है इसलिए उनके उन्नीस प्रकारके गीत हैं। श्रीवल्लभाचार्यजी महाराजने उन्नीस प्रकारकी गोपियोंके ये उन्नीस गीत अलग-अलग माने हैं। श्रीधरस्वामी कहते हैं कि बोलने वाली अलग-अलग हैं, इसलिए संगतिकी कोई जरूरत नहीं है। गौड़ेश्वर सम्प्रदायके लोग चार विभाग करके वर्णन करते हैं—सामने जो खड़ी हैं, दाहिने

जो खड़ी हैं, बायें जो खड़ी हैं—ऐसे। सबका ऐसा भाव है कि श्रीकृष्ण हमारी बात सुन रहे हैं। कैसे? कि जो सम्बोधन है न, वह सारा मध्यम पुरुषका सम्बोधन है, माने 'त्वं' तू—ऐसा करके सम्बोधन है। जैसे गोपियोंको यह मालूम पड़ता हो कि कृष्ण कहीं यहीं हैं और हमारी बात सुन रहे हैं। उनको छिप-छिपकर सुननेकी आदत है—कि हमारे प्रेमी लोग जो हैं, वे हमसे छिपाकर आपसमें किस ढंगकी बात करते हैं। और संगीतके वे बड़े रसिया! जो स्वर जानता है, ताल जानता है, गाना जानता है, बाँसुरी बजाना जानता है, नाचना जानता है, वह संगीतका बड़ा रसिया! तो जब हम प्रेमका संगीत यहाँ एकान्तमें बैठकर गावेंगी, तो वह कहीं न कहींसे सुनता जरूर होगा। और जब सुनेगा, तो उसका जो मान है, वह टूट जावेगा। उसका दिल पानी होकरके बहने लगेगा और वह हम लोगोंके बीचमें प्रकट हो जावेगा।

तो वहाँ चाँदनी रातमें; शरद ऋतु, शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु, जमुनाजी मन्द मन्थर गतिसे बह रही हैं सब-के-सब बालू कण चमक रहे, और गोपियाँ इस आशाको लेकरके एक स्वरसे, एक तालसे, एक भावसे अपने प्राणप्यारे श्यामसुन्दरको पुकारनेके लिए बोल रही हैं, गा रही हैं। उसी गानका यह प्रथम संगीत है।

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।
दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥

दयितक। अर्थ है 'प्यारे'। जिसके हृदयमें कठोरता बिलकुल न हो। किसीकी आँखमें प्रेम देखकर जिसका दिल काँपने लग जाये; अनुकम्पाके अर्थमें! अनुकम्पा कहते ही उसको हैं कि एकको काँपते देखकर दूसरा भी काँपने लग जाये। दूसरेकी आँखमें देखा प्रेम, तो उसकी आँखमें आया प्रेम और उसका दिल फूलने लगा, काँपने लगा। तुम तो प्रेमकी पुतली हो, प्रेमके स्वरूप हो, प्रेमकी मूर्ति हो।

अब बोले—**ते तव जन्मना व्रजः अधिकं जयति।** 'ते'का मूल रूप

है **तव**। तो **तव व्रजः तव जन्मना अधिकं जयति**। यह तुम्हारा व्रज तुम्हारे जन्मसे अधिक उत्कर्षको प्राप्त हो रहा है—यह इसका अर्थ हुआ।

अब देखो! **व्रजः ते व्रजः जन्मना अधिकं जयति**—यह तुम्हारा व्रज जन्मसे ही, स्वभावसे ही—माने जबसे व्रज प्रकट हुआ है, तभीसे यह सबसे ऊपर है। और **ते जन्मना अधिकं जयति**—तुम्हारे जन्मसे यह सर्वाधिक विजयी हो रहा है और यह व्रज तुम्हारा है। इतने सिद्धान्त इसमें प्रकट होते हैं; यह व्रज तुम्हारा है; जन्मसे ही यह उत्कृष्ट है और तुम्हारे जन्मसे और अधिक उत्कृष्ट हो गया है।

जयति तेऽधिकं तन्मना व्रजः।

अब 'जय' जब कहते हैं—**जयति**, तो बताना पड़ता है कि किसको जीत लिया, अधिक जीत लिया, अधिकाधिक जीत लिया। तो इसका अर्थ है कि सबसे बड़ी चीज वैष्णव सिद्धान्तमें वैकुण्ठको मानते हैं, वैकुण्ठसे बड़ी चीज वैष्णव सिद्धान्तमें और कोई नहीं मानी जाती। जो कृष्ण-प्रधान लोक है, उसको गोलोक बोलते हैं। जो राम-प्रधान लोक है, उसको साकेत बोलते हैं। जो शिव-प्रधान लोक है उसको कैलाश बोलते हैं। जो ब्रह्मा-प्रधान लोक है उसको ब्रह्म-लोक बोलते हैं। ये सब वैकुण्ठके ही रूप हैं।

यह वैकुण्ठ क्या है? जो कभी कुण्ठित न हो, जिसमें कुण्ठा न हो—विगत कुण्ठा। तलवार धूसर हो जाती है न, तो उसको कहते हैं—कुण्ठित हो गयी। किसी-किसीकी बुद्धि मारी जाती है तो कहते हैं—बुद्धि कण्ठित हो गयी। तो विकुण्ठा कहते हैं शुद्ध बुद्धिको, तीक्ष्ण बुद्धिको। **दृश्यते त्वग्र्या बुध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः**। जो अकुण्ठित, तीक्ष्ण, तीव्र बुद्धि है, उसको बोलते हैं विकुण्ठा। और उस विकुण्ठामें जो प्रकट हो, उसको बोलते हैं वैकुण्ठ। बोले—वह निराकार, निर्विकार, एकरस, निर्धर्मक परमात्माकी अभिव्यक्तिका स्थान, उसके जाहिर होनेकी जगह है। देखो, परमात्मा सबमें रहकर भी सबमें जाहिर नहीं

होता, किसी-किसीमें जाहिर होता है न! सूरजकी रोशनी हर जगह होती है, लेकिन जो आतिशी शीशा है, उसमें पड़नेके बाद वह प्रज्ज्वलित हो जाती है। उससे अगर रूईपर रोशनी डालो तो जलने लग जाये। तो शीशेसे रोशनी डालें रूईपर, तो न जले और आतिशी शीशेसे रोशनी डालें रूई पर, तो जल जाये। इसका क्या कारण है? तो बोले—भाई, उस आतिशी शींशेमें सूर्यकी रोशनी जाहिर हो जाती है। इसी प्रकार निराकार निर्विकार जो परमात्मा है, वह बुद्धिके जिस देशमें, समष्टिके जिस देशमें जाहिर होता है, उसका सत्पना, उसका चित्पना, उसका आनन्दपना— **त्रिपादस्यामृतं दिवि**—उसका जो अमृतमय त्रिपाद : यह वेदका मन्त्र है—**त्रिपादस्यामृतं दिवि। पादोऽस्येहा विश्वस्य भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।** वह जो त्रिपाद विभूति है परमात्माकी, उसका नाम वैकुण्ठ है। वहाँ सच्चिदानन्द प्रकट रूपमें रहता है।

बोले—तो वह वैकुण्ठ सबसे बड़ा? कि क्या पूछना! सबसे बड़ा है। लेकिन **ते तव जन्मना व्रजः अधिकं जयति**—तुम्हारे जन्म लेनेसे यह जो व्रज है, यह वैकुण्ठको जीत गया। **सर्वोत्कर्षेण वर्ततः**। भला वैकुण्ठमें कोई जन्मोत्सव मनाया जाता है?

बोले—पहले तो वेदान्तियोंसे ही पूछ लो—कि क्यों भाई? तुम्हारे ब्रह्माष्टमी है कोई? ब्रह्मपूर्णिमा सही, ब्रह्म-द्वादशी सही, है कोई? ब्रह्म-जयन्ती जिस दिन मनायी जाये—कि आज ब्रह्मका जन्म हुआ, ऐसी कोई तिथि है ब्रह्मवादियोंके पास? बोले—कोई खास तिथि नहीं है। तो कब मनाओ? कि रोज ही ब्रह्म-जयन्ती मनाओ। तो रोज ब्रह्म-जयन्ती मनानेमें जो उत्सवका आनन्द है, वह कहाँ आवेगा? आनन्द-विशेष कहाँ आवेगा? वह तो रोज सूर्योदय और रोज सूर्यास्तकी तरह हो गया न!

बोले—अच्छा भाई! किस स्थानमें वह रहता है? ***निरगुन कौन देस को वासी?*** यह गोपियोंका वचन है, वे ऊधोजीसे पूछती हैं।

जो मुख नाहिन हुतो कहौ किन माटी खायो?

मुख नहीं, हाथ नहीं, पाँव नहीं! गाँव नहीं, जन्म-तिथि नहीं!

तो व्रज जीत गया। कैसे? बोले—बस, बस! यह जो है न गोकुल, यह घर है नन्दबाबाका, महल; और इसीमें जसोदाजी सोई हुई थीं जिस कमरेमें—वह कृष्णका जन्मस्थान! और इसीमें अष्टमीकी रात और नौमीका प्रातः काल, उसदिन कृष्णका जन्म हुआ था। अब यह चीज तो वैकुण्ठमें बिलकुल नहीं है न! अनादि लक्ष्मी, अनादि नारायण और अनादि वैकुण्ठ! ब्याहका दिन ही नहीं मालूम! बनावटी ब्याह करते हैं, जब समुद्र-मन्थन होता है।

यह समुद्र-मन्थन क्यों हुआ—इसका कुछ रहस्य आपको बता देते हैं। एक दिन लक्ष्मीजीने कहा—कि हे प्रभु! सब लोग अपने ब्याहकी वर्षगाँठ मनाते हैं। आओ, हम लोग भी मनावें। नारायणने कहा—अरी बावरी! हम लोग तो अनादि हैं, अनादि जोड़े हैं। हम लोगोंका कभी ब्याह हुआ हो, तब न वर्षगाँठ मनावें! अरे, तुम शक्ति, मैं शक्तिमान। हम लोगोंका तो कभी ब्याह हुआ ही नहीं, तो वर्षगाँठ कैसे मनावें? लक्ष्मीजी रूठ गयीं, बोलीं—तुम बस, उपहार नहीं देना चाहते हमको। भेंट-वेट नहीं देना चाहते हो, इसलिए वर्षगाँठ नहीं मनाते। हमारी तो वर्षगाँठ मनानी पड़ेगी।

इसी बीचमें देवता और दैत्य समुद्र-मन्थनके काममें लगे। आगये ब्रह्माजी भगवान्‌से प्रार्थना करने—कि महाराज! अमृत चाहिए, नहीं तो देवता मरते हैं। अब भगवान् चाहते तो दैत्योंको अपने चक्रसे, अपनी गदासे मार देते, अवतार ले लेते, नारायण खुद ही आजाते। पर उन्होंने समुद्रका मन्थन करवाया। जब समुद्र-मन्थन होने लगा, तब उन्होंने लक्ष्मीजीसे कहा—लक्ष्मीजी! अब तुम यह देखो! कामधेनु प्रकट हो रही है, कल्पवृक्ष प्रकट हो रहा है, चिन्तामणि प्रकट हो रही है, अमृत प्रकट हो रहा है। ये तुम्हारे भाई बहन कुछ बुरे नहीं रहेंगे। तुम भी समुद्रकी बेटी

बनकर प्रकट हो जाओ; और आओ! हम तुम ब्याह कर लें। तो हर साल फिर वैकुण्ठमें ब्याहकी वर्षगाँठ मनाया करेंगे।

तो वैकुण्ठमें ब्याहकी वर्षगाँठ मनानेके लिए समुद्र-मन्थनका इतना बड़ा आडम्बर रचवाना पड़ा। नारायणकी जन्मगाँठ कभी मनती है? ब्रह्मकी वर्षगाँठ कभी मनती है? नारायण-जयन्ती कभी नहीं होती। लेकिन **जन्मना व्रजः** यह व्रज ऐसा है, जिसमें एक ऐसी चीज हुई है, जो वैकुण्ठमें नहीं थी।

अब व्रज जीत गया—कि यहाँ तो महाराज, नंगे भगवान् हैं। व्रजमें नंगे भगवान्, धूलमें लोटनेवाले भगवान्, गोदमें खेलनेवाले भगवान् हैं। जो चाहे सो गोदमें लेकर अपना मुँह लगा दे। सौ-सौ हजार-हजार गोपियोंके जूठे भगवान्। यह सौभाग्य भला व्रजवासियोंको छोड़ करके, प्रेमी व्रजवासियोंको छोड़ करके और किसको मिला? है वैकुण्ठमें किसीकी हिम्मत? पाँव छूनेकी हिम्मत नहीं पड़ती है। ब्रह्माजी जब कभी जाते हैं तो दूरसे अपने चार मुकुटोंकी नोक धरतीमें रगड़कर प्रणाम करते हैं। नारायणको छूनेकी हिम्मत नहीं पड़ती है। यह तो व्रज है महाराज!

ब्रह्म मैं ढूँढ्यो पुरानन वेदन।

और

ताहि अहीर की छोहरियाँ
छछिया भर छाछ पे नाच नचावें॥

कि छाछ तुम्हें पिलावेंगी लाला! जरा नाचो तो। एक लोंदा मक्खन देंगे, जरा नाचो तो।

देख्यो पलोटत राधिका पायन॥

यह वह व्रज है, महाराज! जिसने निर्गुण ब्रह्मको जीत लिया, निराकार ईश्वरको जीत लिया, वैकुण्ठवासी नारायणको जीत लिया। यह तो श्रीकृष्णको बालक बनाकर अपनी गोदमें खिलाता है।

बोले—वैकुण्ठमें एक बड़ी बात है। क्या? कि इन्दिरा, लक्ष्मी रहती है महाराज! लक्ष्मीजीकी बड़ी महिमा है। कहते हैं—

ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपाङ्गमोक्ष-कामाः
तपः समचरन् भगवत्-प्रपन्नाः।
साक्षीः स्ववासमरविन्दवनं विहाय
यत्पाद - सौभगमलं भजतेऽनुरक्ताः॥

भा. १.१६.३२

श्रीमद्भागवतका श्लोक है यह। कहते हैं कि ब्रह्मा आदि युग-युग तक तपस्या करते रहे, भगवान्‌के शरणागत हुए। काहेके लिए? कि लक्ष्मीजी एक बार कृपा भरी दृष्टिसे हमारी ओर देख लें, क्योंकि लक्ष्मीजी जिसकी ओर देखती हैं, उसमें सुन्दरता आजाती है, उसके पास सम्पत्ति आजाती है, समाजमें उसका आदर हो जाता है।

टका धर्मः टका कर्मः टका हि परमं पदम्।
यस्य गेहे टका नास्ति हा टका टकटकायते॥

टकाकी तो बड़ी महिमा है। तो लक्ष्मी महारानी जिसके ऊपर प्रसन्न हो जाती हैं, वह धनी भी हो जाता है, सुन्दर भी हो जाता है, समाजमें उसकी इज्जत भी हो जाती है, ऊँची कुर्सी भी मिल जाती है। लक्ष्मीमें बड़े गुण! **सर्वेगुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति।** तो ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता चाहते हैं कि लक्ष्मीजी हमारे ऊपर प्रसन्न हों। लेकिन वही लक्ष्मीजी जो हैं—वे अपने निवास-स्थान कमल-बनको छोड़ करके भगवान्‌के चरणोंकी धूलका प्रेमसे सेवन करती हैं। लक्ष्मीजीकी बड़ी भारी महिमा है।

देखो, कभी लक्ष्मीजीके मनमें भी शंका हुई, कि कहीं हम नारायणके घरमें निरंतर रहें तो ये हमारा तिरस्कार न करने लग जायँ। तो अपने बाप समुद्रको मनाया; बोलीं—पिताजी! आप हमारी एक बात मान लो। नारायणको घर-जमाई बना ले। जब समुद्रमें नारायण रहने लग

जायेंगे तो घर-जमाई हो जायेंगे न! तब यहाँ वे हमारा तिरस्कार नहीं कर सकेंगे। हमारी हुकूमत चलेगी, उनकी नहीं चलेगी। वह महालक्ष्मी।

पहले लोग समुद्रके रास्ते व्यापार करते थे तो उनको बहुत धन मिलता था। समुद्रमें-से मोती निकलते थे न! बड़ी-बड़ी सम्पति निकलती थी। तो लोग समुद्रको रत्नाकर कहते थे। मुद्रा जिसके पास हो, उसका नाम समुद्र। मुद्रा तो आप लोग जानते हैं न! मुद्रा माने लक्ष्मी; तो मुद्रा रूप लक्ष्मी जिसके पास है उसका नाम समुद्र हो गया। वैसे समुद्रके और बहुत सारे अर्थ हैं; जिसमें शान्त और विक्षेप दोनों मुद्रा होंवे; कभी शान्त होवे, कभी विक्षिप्त हो जाये।

तो लक्ष्मीजी जो हैं, उनके होनेसे वैकुण्ठका बड़ा आदर! तो बोले—कि नहीं, वैकुण्ठसे ज्यादा आदर व्रजका है, क्योंकि लक्ष्मीजी वैकुण्ठमें सेव्य हैं, उनकी पूजा होती है। जैसे नौकर लोग जो हैं, वे अपनी सेठानीको मालकिन कहके बोलते हैं, वैसे वैकुण्ठमें लक्ष्मीजीको। सब लोग स्वामिनी कह करके, मालकिन कहकर, हाथ जोड़कर बोलते हैं। वह हुक्म न दें तो कोई काम वहाँ होवे ही नहीं। देखो, जय-विजयको निकलवा दिया।

एकदिन नारायण भगवान् सो रहे थे। लक्ष्मीजी बाहरसे आयीं। जय-विजयने कहा—स्वामिनी! अभी नारायण भगवान् जरा विश्राम कर रहे हैं, शयन कर रहे हैं। वे बोलीं—देखो, ये सेवक होकर हमारे ऊपर हुक्म चलाते हैं; बहुत नाराज हुईं और जाकर नारायण से वह नमक-मिर्च लगाकर शिकायत की, महाराज! बड़ी भारी! नारायणने कहा—चुप-चुप-चुप! तुम्हारी वजहसे अगर हम इनको निकालेंगे तो लोग कहेंगे—कि औरतकी बातोंमें आकर नारायणने अपने सेवकको निकाल दिया। बड़ी बदनामी होगी। जब किसी महात्माका अपमान करेंगे, तब इनको निकालेंगे। तब यह होगा—कि भगवान् महात्माओंके बड़े प्रेमी हैं। हमारी तारीफ भी होगी और तुम्हारी इच्छा भी पूरी हो जायेगी; लक्ष्मीको

चुप करा दिया। तो वह जो लक्ष्मीजी हैं न—**श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि। वैकुण्ठे तु शाश्वदाश्रयते, अत्र तु श्रयते।** वैकुण्ठमें तो लोग लक्ष्मीका आश्रय लेते हैं और वृन्दावनमें लक्ष्मीजी सेवा करती हैं। **श्रयते। श्रिञ् सेवायाम्। आश्रयते** भी इसका अर्थ है और **सेवते** भी इसका अर्थ है, माने व्रजका आश्रय लेती हैं और व्रजकी सेवा करती हैं। बड़ा सुन्दर श्रीमद्भागवतमें इसका निर्वाह है।

जिस दिन भगवान् प्रकट हुए गोकुलमें उसी दिन **रमाक्रीडमभून्नृप**—जगह-जगह लक्ष्मी प्रकट होकर व्रजमें खेलने लग गयीं कि भगवान् इस रास्तेसे, यहाँ धरतीपर लेटेंगे। अब बच्चे हैं न, तो धूलमें तो लोटेंगे। बकैयाँ खींचकर चलेंगे। तो लक्ष्मीजीने कहा—कि कोई कंकड़ रह गया धरतीमें, कोई पत्थर रह गया, कोई काँटा रह गया तो गड़ जायेगा हमारे प्रभुके शरीरमें। तो पहलेसे उन्होंने धरतीको ऐसा स्वच्छ, नरम-नरम बना दिया, कि भगवान् कृष्ण इसके ऊपर लोटें धूलमें! कभी माटी खा लें—तो माटीमें स्वाद बनकर बैठ गयीं। धूलमें कोमलता बनकर बैठ गयीं। **पद्माकर सुगन्धिता**—एक-एक लता, बेल, वृक्ष—सबको उन्होंने अपने हाथोंसे छू-छू करके सँवार दिया, सजा दिया। तो श्रीकृष्णके शुभागमनसे, जन्मसे व्रजकी ऐसी शोभा कि यह स्थान-व्रज वैकुण्ठसे भी श्रेष्ठ हो गया। लक्ष्मी यहाँ स्वामिनी नहीं हैं, सेविका हैं।

अब गोपी कहती हैं कि तुम्हारे जन्मसे व्रजकी तो इतनी महिमा बढ़ी! वैकुण्ठसे भी बड़ा; और लक्ष्मीजी दासी। **दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते।** ऐसे व्रजपर एक बार दृष्टि तो डालो।

बोले—गोपियोंके मनमें ही यह सब कुछ आया; कृष्ण नहीं बोलते हैं। प्रेममें अपने मनमें ही दोनों पक्ष बोलते हैं; प्रेमकी यह महिमा है—हम ऐसे बोलेंगे तो प्रियतम ऐसे बोलेंगे। जब हमारे प्रियतम ऐसे बोलेंगे तो

हम बोलेंगी। एक उलझावदार परम्परा चलती रहती है। तो वे कहती हैं कि श्रीकृष्ण पूछेंगे, कि आज तुमलोग यह व्रज दिखाने चली हो हमको? हम दिन-रात गायें चराते हैं, व्रजकी सारी शोभा जानते हैं। अब तुम हमको **दृश्यताम्?** दृश्यताम्‌का अर्थ है—इस व्रजको देखो। **अस्माभिर्भवान् दृश्यताम्**—हम लोगोंके द्वारा आप दिख जाओ; और आप हम लोगोंको देख लो। **प्रत्यक्षीभूयताम्**—आप स्वयं प्रत्यक्ष हो जाओ, हम लोगोंके द्वारा देखे जाओ; और यह देखो कि ये तुम्हारी गोपियाँ रातमें तुम्हारे लिए जंगल-जंगल भटक रही हैं—**त्वयि धृतासवः त्वां विचिन्वते।** अब वैकुण्ठमें भी कोई ढूँढ़ता तो बात बन जाती। वैकुण्ठमें भी तुमको ढूँढ़ना नहीं पड़ता, मिल जाते हो और यहाँ व्रजमें आज तुमको ढूँढ़ना पड़ रहा है। कोई अभक्त होता, कोई पराया होता और तुमको ढूँढ़ता, और तुम न मिलते, तो भी बात बन जाती—कि भाई, प्रेम न होनेसे, भक्ति न होनेसे नहीं मिल रहे हैं। लेकिन हमारे तो **तावकाः त्वयि धृतासवः त्वां विचिन्वते।** हम तुम्हारी हैं और तुम्हारे लिए जी रही हैं, तुम्हें ढूँढ़ रही हैं।

इसमें देखो, प्रेमी भक्तका जो स्वरूप है न, वह पूरा प्रकट हो गया। **तावकाः**—तुम्हारी हैं और **त्वयि धृतासवः**—तुम्हारे लिए जी रही हैं और तुम्हें ढूँढ़ रही हैं। प्रेमीका जो सम्पूर्ण स्वरूप है, वह इसमें प्रकट हो गया।

: ४ :

व्रजके जो मार्ग हैं, वे जुदा हैं।

गोकुल गाँव को पैंड़ोइ न्यारो।

कै जानत वृषभानु नंदिनी कै वह कान्हड़ प्यारो॥

वहाँका रास्ता ही जुदा! तो क्या जुदा है? एक दृष्टि डालें।

जैसे धर्मका रास्ता है। उसमें एक अधिकारी कर्ता होता है। वह विधिके अनुसार कर्म करता है, तब उससे इष्ट फलकी प्राप्ति होती है। एक योगका मार्ग है। अपनी चित्तवृत्तियोंको बाहरसे भीतर खींच लिया। और जब सबका निरोध हो गया तो द्रष्टा अपने स्वरूपमें स्थित हो गया। एक ज्ञानका मार्ग है; वह स्वरूप-प्रधान है। वह कलर नहीं देखता, वह डिजाइन नहीं देखता। वह तो असली माल क्या है—उसको देखता है। उसपर पच्चीकारी कैसी है, उसकी शकल-सूरत कैसी है—यह नहीं, असली सोना है कि नहीं? तो वस्तु तत्त्व-प्रधान ज्ञानका मार्ग है। कारणकी उपाधि और कार्यकी उपाधि, दोनोंमें एक रस तत्त्व। जहाँ एकताका ज्ञान हुआ कि वहाँ उपाधि बाधित हो गयी। अद्वितीय अपना स्वरूप! उपाधिका बाध होकर तत्त्वज्ञान नहीं होता; उपाधिका अपवाद पहले किया जाता है पदार्थ-शोधनके लिए और फिर पदार्थकी एकताका ज्ञान होता है। फिर उपाधि बाधित हो जाती है। तो वह रास्ता जुदा है। उसको भी जानना चाहिए। लेकिन यह प्रेम और भक्तिका जो मार्ग है, यह **न कर्म-प्रधान है—इसमें यज्ञ-यागादिके समान कर्म करनेकी जरूरत नहीं, और न ही इसमें योगके समान चित्त-वृत्तिके निरोधकी और द्रष्टाके**

स्वरूपमें अवस्थान की जरूरत है। इसमें तत्पदार्थ और त्वं पदार्थका शोधन करके 'असि' पदार्थका चिन्तन लक्षणके द्वारा हो; दोनोंकी एकता जानना आवश्यक नहीं। यह सम्बन्ध-प्रधान मार्ग है। यह प्रेम जो है, यह 'अहं' वाला मार्ग नहीं है, यह 'मम'वाला मार्ग है। जैसे अहंकी परिच्छिन्नताको ज्ञान मिटा देता है, वैसे ममताको यह प्रेम-भक्तिका मार्ग जो है—वह शुद्ध कर देता है।

गोपियोंके मुँहसे जो बोली निकलती है, यह उनका संगीत है। हृदयमें जो रस है, जो संवेदना है, जो अनुभूति है—उसको काव्यमें, संगीतमें, स्वरमें ढाल दिया है।

आओ, अब आपको यह सम्बन्ध दिखावें। सम्बन्ध माने रिश्ता; जैसे पति-पत्नीका रिश्ता है, मित्र-मित्रका रिश्ता है, पिता-पुत्रका रिश्ता है, स्वामी-सेवकका रिश्ता है। वैसे ही भगवान्के साथ सम्बन्ध बनाना। यह सम्बन्ध ही दूसरे सम्बन्धको काटता है। संसारके सम्बन्धको कौन काटे? ममता नहीं कटेगी तो अहंता नहीं कटेगी, क्योंकि ममता जो है, वह अन्तःकरणकी अशुद्धि है और वह अहंकारके आश्रित रहती है। असलमें अहंकार नामकी कोई चीज है ही नहीं; ममता वालेका ही नाम अहंकार है। मकान वाला मैं, पत्नी वाला मैं, पुत्र वाला मैं! वाला मैं जहाँ हुआ न, वहीं ममता है। ममतासे अहंता गठित होती है, अहंतासे ममताकी उत्पत्ति नहीं होती है। विचित्र ही है यह! अहंकार नामकी कोई चीज-न लम्बी न चौड़ी, न काली न पीली है। **धावत्यहंकार पिशाच एषः।**

तो इस ममताको भगवान्के प्रति अर्पित करना है; भगवान् मेरे और मैं भगवान्का। यहींसे भक्ति प्रारम्भ होती है।

अब गोपियाँ देखो, सम्बन्धकी स्तुति करती हैं। जैसे किसी महात्माकी तारीफ करनी हो, तो कैसे बोलें? कि उनके यह चेले हैं, यह चेले हैं; ऐसे चेले हैं, ऐसे चेले हैं। तो चेलेकी महिमा गान करनेसे गुरुकी

महिमा अपने आपही आ जाती है। और चेला भ्रष्ट हो जाय, आसक्त हो जाय? बोलते हैं—उनके चेले ऐसे हैं। **सम्बन्धीकी निन्दासे; सम्बद्ध जो व्यक्ति है, पदार्थ है—उसकी निन्दासे जिसका वह सम्बन्धी है—उसकी** भी निन्दा हो जाती है। तो श्रीकृष्णके **साथ सम्बन्ध जोड़ करके व्रज** सबसे श्रेष्ठ हो गया। **यह बात गोपियोंने बतायी न!**

आपको कल सुनाया—

जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजःश्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हिं।

ते तव व्रजः जन्मना अधिकं जयति। व्रजः ते तव जन्मना अधिकं जयति। तुम्हारा व्रज जन्मसे, माने स्वरूपसे ही वैकुण्ठादि सबसे ऊपर है। क्यों? बोले—कि तुम्हारा जो है। प्रधानमंत्री और राष्ट्रपतिके जो चपरासी होते हैं, वे प्रान्तके मुख्य मंत्री आदि जो लोग जाते हैं उनको रोक देते हैं बाहर—कि अभी बैठो। अभी राष्ट्रपतिको, प्रधानमंत्रीको मिलनेका अवकाश नहीं है। राष्ट्रपतिका, प्रधानमंत्रीका चापरासी ही प्रान्तोंके मुख्य-मंत्रियोंसे अपना रौब दाब ज्यादा रखता है। उसको कुछ मिले नहीं, उसका आदर-सत्कार, भेंट-पूजा न हो तो जल्दी वह कार्ड ही न ले जाकर दे भीतर। बड़ोंके सम्बन्धसे आदमी बड़ा हो जाता है। तो श्रीकृष्णके सम्बन्धसे व्रज वैकुण्ठसे भी बड़ा हो गया—यह बात कल आपको सुनायी।

श्रीकृष्णका सम्बन्ध ही ऐसा है। न तो विरजा नदीके पास गये, न तो वह अपाकृत भूमि आयी, न तो मरना पड़ा। इसी धरतीपर एक कोनेमें जमुनाजीके किनारे, जहाँ गोवर्धन पर्वत, जहाँ बरसाना, जहाँ, नन्दगाँव, जहाँ वृन्दावन है, जहाँ गौयें चरती हैं, जहाँ लताएँ हैं, वृक्ष हैं, हरिण छलांग भरते हैं, बालुकामय पावन पुलिन है—

वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं
यद्देवकीसुत - पदाम्बुज - लब्ध - लक्ष्मीः।

भगवान्के चरणारविन्दके स्पर्शसे व्रजभूमिके चप्पे-चप्पेमें सौन्दर्यकी देवी, मृदुलताकी देवी, सम्पत्तिकी देवी लक्ष्मी विचारी इधर-

उधर डोला करती है। बैकुण्ठमें जाओ भगवान्‌से मिलनेके लिए, तो पहले तो विरजा नदीको पार करना बड़ा मुश्किल है। फिर वहाँ जय-विजयसे छुट्टी पाना बड़ा मुश्किल! सनत्कुमारको भी जल्दी मौका न मिले। तो भगवान्‌से जाकर मिलना बड़ा मुश्किल! और यहाँ? यहाँ तो महाराज! गली-गली डोलते हैं। कृष्ण निकले घरसे, तो देखा—एक बहू चावल साफ कर रही है और अपनी आँख बिलकुल चावल पर लगायी है। कृष्णने सोचा कि गाँव भरमें जितनी बहुएँ हैं, बेटियाँ हैं, सास, माँ हैं, भाई बन्धु हैं—सब हमारी ओर देखते हैं। यह नई बहू हमारी ओर देखती क्यों नहीं? यह तो आश्चर्य हो गया न! तिरस्कार हो गया। तो महाराज। उसको भी दिखाना चाहिए अपनी ओर। यही कृष्णका काम है। यह काम व्रज नहीं कर सकता। यह नारायण भी नहीं कर सकते, क्योंकि वे तो बिलकुल पीठ सीधी करके बैठते हैं। भगवान् राम तो चार हाथसे ज्यादा देखते ही नहीं हैं। उनको तो जाकर जुहार करो, घणीखमा अन्नदाता बोलो! राजा महाराजा हैं, कोई मामूली बात थोड़े ही है।

अब देखा इन्होंने—कि बहू नहीं देखती है। तो जरा ठुमुककर पाँवसे चले, रुनझुन रुनझुन पाँवमें नूपुर बजे, कि अब तो देखेगी। नहीं देखा, तो थोड़ा खाँस दिया। इतनेपर भी नहीं देखा तो बाँसुरी बजाने लग गये। एक कंकड़ी उठा कर फेंक दी।

यह भगवान् ऐसे हैं, जो लोगोंको अपनी ओर खींचते हैं। और जगहके लोग तो भगवान्‌को चाहते हैं, भगवान्‌से प्रेम करते हैं, भगवान्‌का भजन करते हैं और यहाँ तो *दूरि करो हरि आपनी गैयाँ!* ग्वाल-बाल कहते हैं, कृष्ण! तुम अपनी गायोंको अलग कर लो। और वह कहते हैं—नहीं मित्र! तुम अपनी गायोंके साथ हमारी गायोंको चरने दो। जरा हमें गोपियोंसे दान लेना है वहाँ। उधर ग्वालिन बोलती है—सखी! *नन्दलाल न आवन पावै।* आज हमारे घरमें वह न आने पावे; और वह घुसनेके लिए तैयार! हाथ जोड़ते हैं—कि सखी! जाने दो।

अब देखो! कहाँ तो सबसे अधिक पूज्य, सबसे बड़े भगवान् और कहाँ व्रजमें आकर स्वयं ही जने-जनेके पीछे घूमते हैं! भटकते हैं! अब व्रजकी महिमा वैकुण्ठसे तो बढ़ गयी और कृष्णका सम्बन्धी होनेसे व्रजने स्थानमें, भूमिमें इतना ऊँचा पद पाया। और वैकुण्ठमें रहनेवाली लक्ष्मी? कि **श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि।** लक्ष्मीजी हमेशाके लिए सेविका बनकर व्रजमें आजाती हैं। 'अत्र'का अर्थ है यहीं, इसी वृन्दावनमें। गोपियोंकी आँखके सामने जो जमुनाजी हैं, जमुनाजीका पुलिन है, जो वन है, जो वृक्ष हैं—उसीको 'अत्र' कहा है। और 'शश्वत्'का अर्थ क्या है? कोई कहे कि बैकुण्ठमें तो हमेशा रहती हैं। व्रजमें थोड़े दिनोंके लिए आयी होंगी! नहीं शश्वत् माने वृन्दावनमें भी हमेशाके लिए आयी हैं। और श्रयते? श्रयतेका एक अर्थ तो होता है, कि वैकुण्ठमें जिनका आश्रय लिया जाता है; या **आश्रियते। सेव्य अत्र श्रियते।** वैकुण्ठमें सब लोग जिसका आश्रय लेते हैं, यहाँ वही आकरके आश्रय लेती है। दूसरा अर्थ है कि वैकुण्ठमें सेव्य होती है, स्वामिनी होती है—वह यहाँ दासी होकरके, सेविका होकर आती है।

श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्याः
लब्ध्वापि वक्षसि पदं किलभृत्यजुष्टम्।
यस्यास्ववीक्षण - कृतेन्यसुरप्रयासः
तद्वद् वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः॥

एक दिन भगवान्के वक्षःस्थलपरसे लक्ष्मीजी उतर आयीं और सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गयीं। रहती तो हैं छातीपर न, **ईशानां जगतो वेंकटपते।** वेंकटपति जो हैं ना, तिरुपति बालाजी महाराज, उनकी छातीपर चढ़ी रहती हैं वह लक्ष्मीजी! एकदिन क्या देखते हैं, कि लक्ष्मीजी छातीपरसे उतरीं और सामने आकर हाथ जोड़कर खड़ी हो गयीं। भगवान्ने पूछा—देवीजी, क्या चाहती हो? बोलीं—कि महाराज।

मैं अब आपके वक्षःस्थलपर नहीं रहना चाहती। क्यों? यहाँ तो बड़ी शोभा है तुम्हारी! और हमारी भी कुछ बचत है। लक्ष्मीजीने पूछा—क्या महाराज? तो बोले—आते हैं लोग हमारा दर्शन करनेके लिए—कि चलकर भगवान्‌का दर्शन कर आवें। और जब तुमको देखते हैं कि हमारी छातीपर हो, तो तुम्हारी शोभा देखकर जाते हैं; हमारा मुँहतक नहीं देखते। तुम्हींको देखकर चले जाते हैं। लक्ष्मी मिल जाय देखनेको, तो लोग भगवान्‌की ओर कहाँ देखते हैं?

अच्छा! तो बोले—तुम्हारी भी बड़ी रक्षा है इसमें। लक्ष्मीजीने यह सोचकर भगवान्‌का वक्षःस्थल पसंद किया था कि जब मैं छातीपर हर समय चढ़ी रहूँगी, तो दूसरा कोई तो नहीं आवेगा न! **श्रीर्वधूसाकमास्ते।** भ्रमरगीतमें गोपियोंने कहा—कि यह जो तुम्हारी वधु है श्रीजी, वह तो हर समय तुम्हारे वक्षःस्थलपर चढ़ी रहती हैं। हम कहाँ जायँ? तो भगवान्‌ने कहा—कि देवी! तुम तो छातीपर ही रहो। तो बोलीं—न प्रभु! हम तो आपके चरणोंमें रहेंगी। **श्रीर्यत् पदाम्बुज रजश्चकमे।** कि चरणोंमें कहाँ रहोगी? तो बोलीं—चरणोंकी धूलमें मैं रहूँगी। बोले—वहाँ तो बहुतसे सेवक रहते हैं। बोलीं—कोई बात नहीं, भीड़में रह लूँगी। कि हृदयपर तो एकान्त है; वहाँ तो भीड़ है। कि हम भीड़में रह लेंगी, परन्तु रहेंगी आपके चरणोंमें।

अब भगवान्‌ने कहा—कि हमारे चरणोंमें तो तुलसी रहती है। वह तुम्हारी सौत है। तुम सौतके साथ रहना चाहती हो? बोलीं—मैं भीड़में रह लूँगी। मैं सौतके साथ रह लूँगी, लेकिन मुझे तो आपके चरणोंकी धूल चाहिए।

अब भगवान्‌के चरणोंकी धूल कहाँसे मिले? वह व्रजमें मिलती है। यह व्रज शब्द है न; 'व्रज'में-से 'रज' निकाल लो, तो क्या रहेगा? खाली 'वकार' ही रहेगा न! असलमें व्रज शब्द जो है, वह ब्रह्म-रज ही है। ब्रह्मका और रजका आखिरी ज, इन दोनोंको जोड़कर व्रज बन गया;

यहाँ रजके रूपमें साक्षात् ब्रह्म रहता है। इसीलिए इसको व्रज बोलते हैं। यहाँ लक्ष्मीजी हमेशा सेवा करती हैं।

अब गोपियाँ श्रीकृष्णको हाजिर-नाजिर मानकर, कि वे तो यहीं कहीं छिपे हैं और हमारी बात सुन रहे हैं—पुकारती हैं।

दयित दृश्यतां दिक्षु तावकाः त्वयि धृतासवः त्वां विचिन्वते॥

प्यारे! प्राणनाथ! हमारे प्रेमको देखकर; हमारे लिए तो तुम्हारा मन दिन-रात डावाँडोल ही रहता है, अनुकम्पित ही रहता है। दयितका दय् धातु अनुकम्पाके अर्थमें है। अनुकम्पाका अर्थ है कि हर समय दिलमें कँपकँपी बनी रहती है—कि गोपी कहाँ है, कैसे है, कितना प्रेम कर रही है, क्या चाह रही है!

दृश्यताम्—यह दृश्यताम्का चार प्रकारसे सम्बन्ध हमारे टीकाकार लोग जोड़ते हैं। जैसे गीतापर सैकड़ों टीकाएँ हैं, हजारों अनुवाद गीतापर विश्वमें हुए हैं; संस्कृत भाषामें गीता- पर कई सौ टीकाएँ अभी मिलती हैं; उसी प्रकार भागवतपर भी ऐसा ही है। सब टीकाकारोंने मिल मिलाकर इस शब्दको चार प्रकारसे देखा है—**दयित दृश्यताम्**।

प्रेममें तीन भाव मानते हैं; एक तदीयत, एक त्वदीयता और एक मदीयता। तो मदीयता क्या है? कि मैं उसका हूँ। अब देखो, 'उस'—वह कहाँ रहता है? बोले—बैकुण्ठमें रहता है। वह निराकार रूपमें रहता है, सबका पालन-पोषण करता है, सबका प्रेरक है, अन्तर्यामी है। तो मैं उसका हूँ। देखा नहीं और उसके हो गये; इसको तदीयता बोलते हैं। परोक्ष ईश्वर, आँखोंसे ओझल जो ईश्वर है, उसके ऊपर विश्वास करके उसका हो जाना—इसको बोलते हैं तदीयता। और सामने ईश्वर हो और उसका हो जाना—इसको बोलते हैं त्वदीयता; तुम्हारा, मैं तुम्हारा हूँ। एकमें बोलते हैं—मैं उसका हूँ; उँगली ऊपर उठ गयी। दूसरेमें बोले—कि मैं तुम्हारा हूँ, सामने आगया ईश्वर। और एक तीसरा भाव क्या है? कि तुम मेरे हो। प्रेममें ये तीन स्थितियाँ बताते हैं। तो गोपियाँ श्रीकृष्णको मेरा

ही मानती हैं। इसीसे उनमें कभी-कभी थोड़ी थापा-थापी भी हो जाती है। वे कहती हैं—हमारे होकर उनके घर कैसे गये? हमारे होकर उनकी ओर कैसे देखते हो? हमारी ओर देखो। वे कहती हैं—कृष्णकी आँख हमारी आँख। कृष्णके पाँव हमारे पाँव। कृष्णके हाथ हमारे हाथ। मैं जो चाहूँ, वही कृष्ण देखें; मैं जो चाहूँ, वही कृष्ण चाहें। वे अपने प्रेमकी अधिकतासे अपने परम प्रियतम श्यामसुन्दरको अपने प्यारका बन्दी, अपने प्यारका कैदी बना कर रखती हैं। वे कहती हैं—श्रीकृष्ण मेरे हैं। इसीसे अभी देर हो गयी तो बोलीं—अच्छा, लौट आओ। मेरे होकर ऐसा करते हो? अब ईश्वरता भूल जाती हैं वे। और भगवान् भी गोपियोंके प्रेमके सामने अपने ईश्वरपनेको निछावर कर दें। बोले—अरे, यह ईश्वरपनेको निछावर करना क्या है?

एक महात्मासे मैंने पूछा—भला यह ईश्वर अपनी ईश्वरता छोड़ कैसे देता है? इतना गोपियोंका बन गया—कि वे सुलायें तो सोये, खिलावें तो खाये, नचावें तो नाचे, बुलावें तो बोले, हँसावें तो हँसे? इतना गोपियोंका हो गया वह? उसकी ईश्वरता कहाँ गयी? बोले—अरे भाई! उसको तो गोपियोंके प्रेमपर निछावर करके भगवान्‌ने फेंक दिया। थोड़ी अयोध्याकी तरफ, थोड़ी हरद्वारकी तरफ, थोड़ी द्वारकाकी तरफ, थोड़ी जगन्नाथ-पुरीकी तरफ गयी। अपने प्रेमियोंके प्रेमपर अपने बड़प्पनको निछावर करके फेंक दिया।

कि भला जो सच्चा ईश्वर होगा, वह अपनी ईश्वरता कैसे छोड़ेगा? तो बोले—तुम वेदान्तीलोग जब वेदान्तका निरूपण करते हो, तब तो झटसे कह देते हो कि जीवत्व जो है, वह अविद्योपाधिक या अन्तः-करणोपाधिक है और ईश्वरत्व जो है, वह मायोपाधिक है या कारणोपाधिक है, या समष्टि-उपाधिक है। देशकी दृष्टिसे, विस्तारकी दृष्टिसे बोलते हैं तब समष्टिकी उपाधि बोलते हैं, और वस्तुका जो मूल बीज है, बीजकी उपाधिसे बोलते हैं, तो कारणोपाधिक बोलते हैं।

और जब कालमें परिवर्तित होती हुई वृत्तियोंकी उपाधिसे बोलते हैं, तब उसको दृष्टि-सृष्टि बोलते हैं। वृत्तिकी उपधियाँ परिवर्तित होती रहती हैं। उनके परिवर्तनकी दृष्टिसे बोलते हैं, तब दृष्टि-सृष्टि-वाद बोलते हैं और समष्टिकी दृष्टिसे बोलते हैं, तो देशकी पूर्णताको उपाधि बना देते हैं।

तुम लोग स्वयं जब तत्पदार्थका निरूपण करते हो तो ऐश्वर्यको मायिक बताते हो। अब यहाँ सच्चे आनन्दमें, सच्चे प्रेममें यदि ईश्वरताको भगवान्‌ने उठाकर फेंक दिया, निछावर कर दिया तो क्या बड़ी बात हो गयी! अरे, यह तो मायिक है ही है। जब तत्त्वज्ञानमें यह बाधित होता है, तो प्रेमकी परा स्थितिमें भी यह बाधक हो जाता है।

भक्तेर्या हि पराकाष्ठा सैव ज्ञानम्।
ज्ञानस्य या पराकाष्ठा सैव भक्तिः।

ज्ञानकी पराकाष्ठा भक्ति, भक्तिकी पराकाष्ठा ज्ञान! अरे, असलमें मूल तत्त्व तो एक ही है न! आनन्दकी प्रधानतासे विचार करो, चाहे ज्ञानकी प्रधानतासे विचार करो; चीज तो एक ही है न!

अब समझो, एक आदमी सभामें जाता है। वह सोनेका काम किया हुआ कपड़ा पहनता है। अपनी छातीपर कवच धारण करता है, सिरपर मुकुट धारण करता है। ढाल लगाता है, तलवार लेता है। जाकर दरबारमें राजा बनकर बैठता है। अब वह घरमें आवे और यदि वैसे ही ढाल-तलवार उसके हाथमें रहे, वैसे ही मुकुट रहे, वैसे ही कवच रहे, दिन-रात घरमें सोवे भी वैसे, जागे भी वैसे—तो विचारेकी फजीहत हो जायेगी कि नहीं? तो यह जो ऐश्वर्य है न! मुकुट है और ढाल है और तलवार है और सोनेका काम किया हुआ यह चोंगा है! तो जब घरमें आते हैं तो घरवाली—अरे, तुम्हें बड़ा गर्म लग रहा होगा यह मुकुट सिरपर धारण किये हुए, हटाओ इसको; यह कपड़ा हटाओ—ऐसे कहकर जैसे यह सब घरवाली उतार देती है न, वैसे ही ये जो प्रेमी लोग होते हैं, वे ईश्वरकी

ईश्वरताका मुकुट, उनकी ढाल, उनकी तलवार, सब उतारकर ईश्वरको बिलकुल नंगा, निरावरण कर देते हैं। अपने घरमें ईश्वरको निरावरण कर लेते हैं। यह प्रेमकी महिमा है। वे ईश्वरको मेरा मानते हैं; मैं आज तुम्हें हरी पोशाक पहनाऊँगा, आज पीली पहनाऊँगा, आज लाल पहनाऊँगा। भगवान्‌ने कहा—अच्छा भाई! अब हम भी अपने मनको निकालकर फेंक देते हैं। तुम्हारे सामने मूर्ति बनकर रहते हैं। जो मौज हो, पहना दो। यह मूर्तिके रूपमें वही भगवान् ही हैं, दूसरा कोई नहीं है। अपने प्रेमीका खिलौना बननेके लिए ऐसे बन गये।

अब एक दूसरी बात शुरू करते हैं। वैसे तो आप लोग जानते हैं, सुनते ही रहते हैं, लेकिन प्रेमकी बात बारम्बार सुननेमें भी मजा आता है। वाल्मीकि रामायणमें यह वचन बारबार आता है—**स्मारये त्वां न शिक्षये।** मैं तुम्हें याद दिलाता हूँ, शिक्षा नहीं देता हूँ। तो प्रेमकी एक बात यह है—कि जब सामने होते हैं, तब तो प्रेमी लोग दस बात सुना देते हैं, बरस पड़ते हैं, डाँटते भी हैं, फटकारते भी हैं। अपनी इच्छाके अनुसार काम भी कराते हैं। लेकिन कहीं बिछुड़ गये, तो? प्रेमीका जो गुमान है, वह सारा चला जाता है। उस समय फिर तुम मेरे हो और मेरे कहे अनुसार चलो—यह बात नहीं रहती। उस समय क्या होता है? कि मैं तुम्हारा हूँ, तुम्हारे कहे अनुसार चलूँगा। रूप ही बदल देता है। प्रेम जो है न, यह रूप बदलनेमें बड़ा निपुण है। यह प्रकाशक भी है और तापक भी है। जब सामने रहता है प्रीतम, तब तो यह कोमल हो जाता है, चाँदनी बरसाता है। और जब प्रियतम बिछुड़ जाता है, तब प्रेम सूर्य बन जाता है। तो सूर्य बनकर क्या करता है? कि एक तो अपने प्रियतमकी महिमाको प्रकाशित करता है—उनमें यह बड़प्पन है, उनमें यह बड़प्पन है। देखो, आदमी जिन्दगी भर तिरस्कार करते हैं और मरनेके बाद गुणगान करते हैं। ये बेवकूफ लोग हैं दुनियामें। अरे, जब तुम्हें तारीफ करनी है, उसमें कोई गुण है तो उसका मजा लो, उसका फायदा उठा लो। मरनेके बाद याद

करके रोओगे तो क्या मिलेगा तुमको? तो जिसमें जो गुण है, उसका स्वाद जीवन कालमें ही लेना ठीक रहता है।

वियोग जो है, वह सूर्य है। जब वियोग हृदयमें आता है तो उससे दो बातें होती हैं; एक तो दुःख बढ़ता है, ताप बढ़ता है, विरहमें और दूसरे अपने प्रियतमकी जो महिमा है, वह मालूम पड़ती है। देखो, जब श्रीकृष्ण सामने थे, तब तो ये गोपी लोग—क्या किया इन्होंने? आँख बन्द करके बैठ गयीं। अब कृष्ण एक एकके पास जायें—कि अरी ग्वालिनी! मैं तेरे सामने खड़ा हूँ। आ, मेरे साथ नाच। बोली—नहीं महाराज! मैं अभी ध्यान कर रही हूँ, समाधि लगा रही हूँ। अभी आत्मिक ध्यानमें लगी हूँ। तो श्रीकृष्ण भगवान् चले गये। वे अन्तर्धान हो गये। जब अन्तर्धान हो गये, तब रोने लगीं—कहाँ चले गये? तो सामने रहनेपर गुस्सा करना और पीछे चले जानेपर रोना। पहले तो कहती थीं—तुम मेरे हो, तुम मेरे हो। और अब बोलती हैं—हम तुम्हारे हैं।

दयित दृश्यतां दिक्षु तावकाः त्वयि धृतासवः त्वां विचिन्वते।

तो 'मदीयता' मिलनेमें है। गोपियोंको विरहमें भी मदीयता होती है। एक बड़ी विचित्र प्रीतिकी अवस्था है विरहमें। एकने कहा—गोपियो! देखो; कृष्ण तुमको छोड़कर गये और फिर लौटकर आये नहीं। तो बोले—कि हमें भी इसीमें खुशी है कि कृष्ण वहीं रहें। तो बोले—अरी गोपी! कृष्णके वहाँ रहनेमें क्या खुशी है? कि वहाँ चारदीवारीके भीतर, परकोटेके भीतर रहते हैं। हमारे गाँवमें तो परकोटा है नहीं। वहाँ तो सेनाके बीचमें रहते हैं, यहाँ तो सेना है नहीं। वहाँ तो बड़े—बूढ़े लोग हैं, उग्रसेन, वसुदेव आदि हैं, वे आशीर्वाद देते हैं। यहाँ तो वे हैं नहीं।

बोले—यहाँ हम बुलाकर ले आवें कृष्णको?

बोले—ले आओ। और रातको जरासन्धने चढ़ाई कर दी, तो? यहाँ तो खाई नहीं है, परकोटा नहीं है, सेना नहीं है। तो हमारे प्यारेकी रक्षा

कैसे होगी? हमारा प्यारा मथुरामें है, सुरक्षित है। हमको समाचार तो मिलता है न—कि सुखी है।

तुम नीके रहो, उन ही के रहो।

प्रीतिमें यह बड़ी भारी उदारता होती है। कृष्ण मेरे हैं, कृष्ण मेरे हैं; अब विरहमें बोलीं—हम कृष्णके हैं। इसका मतलब हुआ कि तुम जैसे नचाओगे, वैसे नाचेंगी, जैसें हँसाओगे वैसे हँसेंगी। जैसे खिलाओगे वैसे खायेंगी, जैसे सुलाओगे वैसे सोयेंगी। हम तुम्हारी।

एक होता है ईश्वरको परोक्ष मानकर; हम उसके हैं; एक होता है—हम तुम्हारे हैं और एक होता है—तुम हमारे हो। प्रेमकी कथा अलौकिक है। जैसे ज्ञानशास्त्र है, वैसे यह प्रेमशास्त्र भी है। अब जो लोग बिलकुल दुनियामें रचे-पचे हैं और जिनको महाराज—

खाओ पीओ मौज मनाओ, यही जगत का मेला है।
कौन जानता कल क्या होगा, कल का यही झमेला है।

जिनका खाना-पीना, नाचना-कूदना, संसारका विषय-भोग छोड़कर ईश्वरकी ओर कभी मन ही नहीं जाता, उनकी बात क्या सुनावें!

तो अब गोपियाँ बोलती हैं—**तावकाः गोपी-जनाः**—यह तुम्हारे गोपीजन हैं।

कि अच्छाजी! तुम हमारे हो? तो प्रेममें एक यह भी नियम है कि विरहमें बड़ी भारी पीड़ा हो गयी। और जब पीड़ा होती है तो प्राणोंको रखना बहुत कठिन होता है। जैसे कोल्हूमें गन्नेको पेरते हैं न, ऐसे यह विरहका जो कोल्हू है, वह हृदयको पेरता है, उत्पीड़ित करता है। बड़ी पीड़ा होती है हृदयमें। तो बोले—कि जो प्रेमिका होगी, प्रेयसी होगी, वह अपने प्रियतमके विरहमें जिन्दा कैसे रहेगी?

एक वचन मिलता है प्राकृत भाषामें। उसका अर्थ है—**कैतवरहितं प्रेम न भवति मानुषेलोके**। मनुष्य लोकमें निष्कपट प्रेम नहीं होता। कपट माने धोखा देना नहीं समझना; व्यवसायी नहीं। कपट माने अपने सुखकी

इच्छा। अपना मजा कुछ-न-कुछ प्रेमीको चाहिए जरूर। वह आता है भोग्य बन करके; कि बोले—देखो, हमारा स्वाद लो तुम। लेकिन उसके मनमें यह रहता है कि स्वाद तो हमको भी मिलेगा। तो संसारमें यह देखनेमें आता है कि निष्कपट प्रेम नहीं होता। **यदि भवति**—यदि हो जाय तो? बोले—**कस्य विरहः**? फिर प्रेमी और प्रियतमका वियोग कभी होगा नहीं। निष्कपट प्रेममें वियोग कैसे? साथ पैदा होंगे, साथ मरेंगे। साथ जीयेंगे, साथ खायेंगे, साथ सोयेंगे। तो बोले—कभी हो ही गया, तो? बोले—**सत्यपि विरहे को जीवति?** यदि विरह हो जाय तो फिर जिन्दा कौन रहे?

एक दिन एक गोपी आयी कृष्णके पास। कृष्णने पूछा-ग्वालिन! तुम्हारी सखीका क्या समाचार है? वह बोली—जी रही है। **जीवति।** उन्होंने कहा—अरे, मैं उसकी तबीयतका हाल पूछ रहा हूँ। उसका स्वास्थ्य कैसा है? उसकी तबीयत कैसी है? बोली—भाई! कह तो दिया! जी रही है। बोले—अरे, स्वस्थ तो है न! तो ग्वालिन कहती है—कि जबतक उसकी नाकमें-से साँस आ-जा रही है, तबतक मैं कैसे कह दूँ—कि यह मर गयी? तुम यही कहलाना चाहते हो कि वह मर गयी? तो जबतक साँस चलती है, तबतक कैसे कहूँ कि वह मर गयी?

तो प्रेममें विरह तो बड़ा भयंकर! कहीं कृष्ण यह सोचें, कि अरी गोपियो! तुम हमसे इतना प्रेम करती हो तो हमारे विरहमें जीवित कैसे रहती हो?

तो गोपियाँ बोलती हैं—**त्वयि धृतासवः।** हम तुम्हारे लिए जी रहे हैं। **त्वयि निमित्ते धृतासवः।** निमित्त अर्थमें यह सप्तमी है। **चर्मणि गजं भिनस्ति**—चामके लिए हाथीको मारता है; तो सप्तमी हो जाती है। तो **तुम्हारे लिए हम अपने प्राणोंकी रक्षा कर रही हैं। माने आशा टूटी नहीं है। यह प्रेमकी एक खास बात है, कि प्रेममें मिलनकी आशा कभी नहीं**

टूटती। यह आशा बनी है कि तुम मिलोगे, मिलोगे, मिलोगे। एक दिन आवेगा कृष्ण!

जब श्रीकृष्ण मथुरा गये, तो गोपियाँ ऐसी थीं। वे कहती हैं—हम जानती हैं कि हमें छोड़कर तुम मथुरामें हो। ऐसा माखन तो तुमको खानेको नहीं मिलता होगा वहाँ, जैसा व्रजमें मिलता है। ऐसा वृक्ष कदम्बका वहाँ कहाँ मिलता होगा? ऐसी लता माधवीकी वहाँ कहाँ होगी? ऐसी जमुना, ऐसा पुलिन, ऐसा मंद-सुगन्ध वात, यह चाँदनी रात और ये गोपियाँ और ऐसा प्रेम क्या तुमको मथुरामें कहीं मिलता होगा? तो एक दिन हमारी याद तुमको आवेगी और तुम सब कुछ छोड़-छाड़कर हमारे पास लौट आवोगे। हम जानती हैं कि तुम कुब्जासे सुखी नहीं हो सकते। तुम्हें स्वयं मालूम है कि तुम हमारे पास आये बिना सुखी नहीं हो सकते। तो हमारी आशा लगी है कि एक-न-एक दिन तुम हमारे पास आओगे।

वैराग्यमें निराशा और प्रेममें आशा। यह प्रेम जब आता है हृदयमें, तो नौ बातें आती हैं जीवनमें; एक तो कोई लड़ाईका काम करे तब भी उसको माफ कर देगा, उससे लड़ाई नहीं करना। दूसरे अपना समय व्यर्थ नहीं बिताना, प्रियतमके लिए बिताना। प्रियतमके सिवाय दूसरेसे प्रेम नहीं करना। अपनेमें अभिमान नहीं करना और आशा बँध जाना—कि जरूर मिलेंगे—

मिलेंगे राम मिलेंगे राम।

शबरी देखेले सपनवा। आज घर रामा आइहैं ना।

रोज-रोज उसकी आशा लगी है, यह आशा-बंधन। और फिर उत्कण्ठित होना, समुत्कण्ठा। फिर नाम अपने प्यारेका बार-बार मुँहमें आना। और उसके गुणमें आसक्ति होना। जहाँ वह रहे, वहाँ रहनेमें आसक्ति होना; जब प्रेमकी शुरूआत होती है, तब ये नौ बातें प्रेमीके अन्दर आती हैं। आशाबंध—यह भावांकुरके जन्मका एक लक्षण है।

प्रेमका अंकुर हृदयमें उदय हुआ—इसका एक लक्षण है, एक पहचान है कि आशा बँध गयी कि हमको इसी जीवनमें भगवान् मिलेंगे। अब आप लोग भक्त हो न भगवान्के; जरा टटोल लो अपने मनमें। आपको पूरी आशा है न, कि इसी जीवनमें, इन्हीं आँखोंसे आप भगवान्को देख लोगे? अगर यह आशा है तो आपके प्रेमका अंकुर बढ़ेगा। भजन बढ़ेगा, भक्ति बढ़ेगी, प्रेम बढ़ेगा और यदि निराशा आ गयी—कि हाय हाय! हमको क्या मिलेंगे भगवान्! तो उत्साह जो जीवनमें है न, वह मिट जायगा। जीवनमें उत्साह होना चाहिए।

अब देखो! **त्वयि धृतासवः त्वां विचिन्वते। त्वयि धृतासवः** का दूसरा अर्थ यह है कि यह मृत्युरूपी बाज जो है, वह हमारे प्राणपक्षीका अपहरण करनेके लिए बारबार आता है। लेकिन वह देखता है कि यहाँ तो विरहकी आग जल रही है। तो जहाँ आग जल रही हो, वहाँ मृत्युका बाज कैसे जायेगा? तो—

विरहानलभीतोऽयं मृत्युः स्येनो विमुञ्चति।
प्राणपक्षिणमेतद् हि निश्चेतव्यं दयानिधे॥

हे श्यामसुन्दर! तुम यह निश्चय करो कि जब-जब मौतका बाज झपटता है हमारे प्राण-रूपी पक्षीको पकड़नेके लिए, तब-तब वह विरहकी आग हृदयमें जलती देखकर लौट जाता है, भाग जाता है। इसलिए हम अब जिन्दा हैं।

धृतासवः का अर्थ क्या है? **त्वयि धृता असव यैः। गोपीजनैः। त्वयि धृतासवः**—ये गोपीजन हैं, और यह **तावकाः स्वै धृतासवः स्यां विचिन्वतो** यह **तावकाः** शब्द जो है न, यह पुल्लिंग है।

त्वयि धृतासवः। गोपियाँ कृष्णको कह रही हैं, कि मौत आ-आकर हमारे शरीरमें ढूँढ़ती है—कि भाई! गोपियोंके प्राणोंको इसमें-से निकाल कर ले चलें।

दस प्रकारके प्राण शरीरमें होते हैं, दस जगहोंपर। पाँच मुख्य हैं,

पाँच गौण हैं। तो जब मौत आकर शरीरमें टटोलती है, कि गोपीके प्राण मिलें, तो मौतको मिलते ही नहीं।

कि क्यों नहीं मिलते हैं?

बोले—हमने तो अपने प्राण निकालकर तुम्हारे पास रख दिये हैं, तुम्हारे चरणोंमें अर्पित कर दिये हैं,

त्वयि धृतासवः। अब प्राण हमारे शरीरमें हों, तब तो मृत्युको मिलें न! वे तो तुम्हारे प्रति अर्पित हैं, तो मृत्युको मिलेंगे कैसे?

जरा देखो तो एक बार, **दृश्यताम्।** प्राणप्यारे! एक बार देखो अपने ऐसे गोपीजनोंको, जो तुम्हारे लिए जी रही हैं, **दिक्षु त्वाम् विचिन्वते।** जहाँ तुमसे सम्बन्धित होकर व्रजकी महिमा बढ़ी, वैकुण्ठकी महिमा बढ़ी, वहाँ तुमसे सम्बन्धित होकर हमारी महिमा तो घट गयी। लोग यही कहेंगे न, कि गोपियाँ कृष्णकी हो गयीं, कृष्णको अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया और उसके बाद कृष्णको वह पा न सकीं! बन-बन भटकती हुई कृष्णके लिए मर गयीं।

तो देख लो न! एक बार आँख खोलकर देख लो। हम समझती हैं कि तुम कहीं जाकर एकान्तमें हमारे विरहमें बेहोश हो गये होओगे और तुम्हारी आँख बन्द हो गयी होगी! पहले तो जोशमें आकर उत्साहमें आकर हम लोगोंको छोड़कर दूर चले गये। वहाँ हमारा विरह तुमको व्याप्त हो गया, तो तुम हो गये बेहोश। अब तुम्हारी आँख हो गयी बन्द। तो तुम देखते नहीं हो कि गोपियाँ तुम्हारे लिए कितनी व्याकुल हो रही हैं। अगर देख लेते तो क्या तुम छिपे रह सकते? तुम छिपकर नहीं रह सकते। इसलिए—**दृश्यताम्, तावकाः त्वयि धृतासवाः गोपीजनाः दिक्षु त्वां विचिन्वते इति दृश्यताम्।** जगह-जगह भटक करके तुमको देख रही हैं, ढूँढ़ रही हैं। यह बात तुम जरा आँख खोल करके देखो। सीधा अर्थ इसका यही है।

बोले-दूसरा अर्थ है-दृश्यताम् प्रत्यक्षीभूयताम्-दीख जाओ।

दयित दृश्यताम्—प्यारे! दीख जाओ न। क्यों छुपे हो? क्या मान कर रहे हो? अब बहुत हो गया। ऐसा कोई खेल खेलता है? खेल खेलमें इतनी देर?

देखो, यह विश्वास जहाँ होता है न, वहीं मान होता है। जहाँ यह विश्वास हो कि हम रूठेंगे और ये मना लेंगे—वहीं रूठना। जहाँ मनानेका विश्वास ही न हो, वह रूठनेकी जगह नहीं है। आदमीका रूठना विश्वासका सूचक है। वह तुम्हारे ऊपर इतना विश्वास करता है, कि हम इससे रूठ जायेंगे तो यह हमको मना लेंगे। और यदि मनानेका विश्वास न हो बाबा, तो? तो यह मनानेकी जो भूमिका है बाबा! यह रूठने-मनानेकी, यह मानकी, यह जरा ऊँची है।

अच्छा! **दृश्यताम्, अस्माभिर्भवान् दृश्यताम्**—हम तुमको देख लें।

दृश्यताम्के चार अर्थ हुए न! तुम प्रकट हो जाओ, दीख जाओ—**प्रत्यक्षीभूयताम्**। यह पहला अर्थ है। हम तुमको देख लें, यह दूसरा अर्थ है। तुम आँख खोलकर यह देखो, कि गोपियाँ हमको बन-बन ढूँढ़ रही हैं। **त्वां दृश्यताम् विचिन्वते,** यह चौथा अर्थ है। विचिन्वते—यह द्विकर्मक क्रिया है। जैसे **वृक्षं फलं विचिन्वते**—ऐसा बोलते हैं कि वृक्ष वृक्षपर—**वृक्षं वृक्षं**—कोई फलको चुनता है, वैसे **त्वां दृश्यताम् विचिन्वते**—हम तुम्हारी दृश्यता देखना चाहती हैं। अब तुम द्रष्टाके रूपमें मत रहो। यह मत देखो कि गोपियाँ हमारे लिए रोती हैं; हम भी देखें कि तुम हमें देख रहे हो।

❋

: ५ :

पहले गीतमें गोपियोंने बताया कि जो तुमसे सम्बन्ध जोड़ लेता है, वह संसारमें सबसे बड़ा हो जाता है। तुम्हारे सम्बन्धकी ऐसी महिमा है। एक लड़कीका डॉक्टरसे सम्बन्ध हो जाय तो बिना परीक्षा दिये ही वह डॉक्टरनी हो जाती है। पतिकी महिमासे पत्नीकी महिमा बढ़ जाती है और पत्नीकी महिमासे पतिकी महिमा बढ़ जाती है। सम्बन्ध तो एक—दूसरेकी महिमा बढ़ानेवाला होना चाहिए। श्रीकृष्णके सम्बन्धसे व्रजकी महिमा बढ़ गयी। व्रजकी महिमा तो बढ़े, लेकिन गोपियाँ श्रीकृष्णके विरहमें तड़प-तड़पकर मर जायँ, तो क्या यह भगवान्‌की भक्ति बढ़ाने-वाली बात होगी?

भगवान्‌का अवतार इसलिए हुआ है कि जो लोग निर्गुण ब्रह्मको नहीं जानते हैं, जो निराकार ईश्वरमें स्थित नहीं हो सकते हैं, जो समाधि नहीं लगा सकते हैं—वे लोग भी अपने सामनेके भगवान्‌को देखकर अपना हृदय, अपना प्राण, अपनी इन्द्रियाँ, अपना सर्वस्व उन्हें अर्पित कर दें, उनमें लगा दें और धन्य-धन्य हो जायें। भगवान्‌के प्रकट होनेपर भी अगर कोई उनको ढूँढ़ता-ढूँढ़ता तड़प-तड़पकर मर जाय, तो यह भक्तिमार्गकी प्रतिष्ठा नहीं होगी। इससे तो भक्ति मार्गका लोप ही हो जायगा। आये थे भक्ति बढ़ाने और भक्ति घटानेका काम कर दिया।

तो हे रमणश्रेष्ठ! **क्वापि क्वापि महाभुज?** कहाँ हो? कहाँ हो? यह तो कोई प्रेमकी महिमा बढ़ानेवाली वस्तु नहीं है।

ये संसारी लोग जिस ढंगकी भक्ति करते हैं और व्रजवासी लोग जिस ढंगसे भक्ति करते हैं--उसमें थोड़ा फर्क है। संसारी लोग तो अपना काम बनानेके लिए भक्ति करते हैं। बिहारीजी गये और बोले—कि हे

बिहारीजी! बारह महीनेके भीतर हमारे घरमें एक बेटा पार्सल करके भेज दो। और फिर हम जैसा गोरा, बलिष्ठ, सुन्दर चाहें—वैसा दो। फिर हमारा हुकम माननेवाला दो। तो वह बिहारीजीको अपना मालिक नहीं मानते हैं, अपनी इच्छा पूरी करनेवाला कोई सेवक मानते हैं। ऐसा कर दो, ऐसा कर दो, ऐसा कर दो! हुकम-पर-हुकम देते जाते हैं।

एक प्रसंग आता है; एक लड़कीसें किसीने पूछा—तुमको कैसा पति चाहिए? तो उसने बताया, कि उसके पास मकान हो, उसके पास मोटर हो। वह बड़ा स्वस्थ हो, बड़ा सुन्दर हो, बड़ा गवैया हो, बड़ा पढ़ा-लिखा हो। जो भी चीज हमको चाहिए, वह हमारी सब इच्छा पूरी कर दे। तो पूछनेवाले सज्जनने कहा कि भाई! तुमको पति नहीं चाहिए। तुमको नौकर चाहिए जो तुम्हारी सब इच्छा पूरी कर दे। तुम मन मिलाना नहीं जानती हो, वही अपना मन तुम्हारे साथ मिलावे!

तो भक्त लोग जो होते हैं, वे ईश्वरके मनसे अपना मन मिलाते हैं, उनको अपने मनको ईश्वरके मनके साथ मिलाना आता है।

गाजीपुर जिलेमें दो आनरेरी मजिस्ट्रेट थे। पढ़े-लिखे नहीं थे, मारवाड़ी थे दोनों। उन्होंने एक एम. ए. पास आदमी काम करनेके लिए रख लिया था; वही लिखता-पढ़ता था। जब कोई मुकदमा उनके पास आता, तो वे पूरी तरह उसको समझते नहीं थे। एक दूसरेसे पूछते कि इसमें क्या फैसला दिया जाय। तो दोनों यही बोलते थे—***जो थारी राय सो म्हारी राय।*** जो तुम्हारी राय है, सो हमारी राय है। अपनी ओरसे कोई फैसला नहीं देते थे। तो ईश्वरके मनमें अपना मन मिलाना इतना बड़ा त्याग है, इतना बड़ा गौरव है! यह गौरव-मूलक भक्ति है—जी हुजूर! जी हुजूर! ***जो थारी राय सो म्हारी राय!*** लेकिन व्रजवासियोंका प्रेम गौरव-मूलक नहीं है। वे भगवान्‌के ऐश्वर्यसे प्रेम नहीं करते। उनको इससे मतलब नहीं है कि वे लक्ष्मीपति हैं कि नहीं, वे पृथिवीपति हैं कि नहीं। उनको इससे मतलब भी नहीं है कि वे दुनियाको बना-बिगाड़ सकते हैं

कि नहीं। वे तो यह जानती हैं कि हमारे प्यारे हैं, हमारे प्राणेश्वर हैं, हमारे सर्वेश्वर हैं, हमारे सर्वस्व हैं। उनका प्रेम सम्बन्ध-मूलक प्रेम है; भगवान्‌से अपना रिश्ता मानकर प्रेम करना। ईश्वर मानकर, राजा राजकुमारसे प्रेम करना दूसरी बात है और अपने प्यारेसे प्रेम करना दूसरी चीज है। व्रजवासियोंका प्रेम तो जो हृदयका सब कुछ है—उससे प्रेम है। यह व्रजवासियोंकी बात है।

इतना प्रेम करनेके बाद भी अगर भगवान्‌को ढूँढ़ना ही पड़े, वन-वन भटकना पड़े और वे मिलें नहीं, तो प्रेमकी मर्यादा टूट जायेगी। इसलिए गोपियोंने कहा—कि प्यारे श्यामसुन्दर! तुम यह देखो कि गोपियाँ भटक रही हैं बन-बनमें, जंगल-जंगलमें और व्याकुल हो रही हैं तुम्हारे लिए। तुम्हारी होकर, तुम्हें अपना सर्वस्व देकर फिर तुम्हें ढूँढ़ती फिरें—यह उचित नहीं है।

पहले श्लोकमें जिज्ञासाका स्वरूप बताया है—**दिक्षु तावका**। भगवान्‌को कैसे ढूँढ़ना? लतामें ढूँढ़ना, वृक्षमें ढूँढ़ना। पशुसे पूछना, पक्षीसे पूछना। यह जिज्ञासाका स्वरूप है। **त्वां विचिन्वते**।

अब दूसरे श्लोकमें जरा आँखकी महिमा बताते हैं। संस्कृत भाषामें एक दिक् शब्द है और दृक् शब्द है। पहले श्लोकमें दिक् है, **दिक्षु विचिन्वते**। यह दिक् शब्द का बहुवचन है सप्तमीमें; दिशा विदिशामें सब ओर ढूँढ़ रही हैं। दूसरे श्लोकमें **दृशा** शब्द है। यह दृक् शब्दका तृतीयान्त रूप है। वह दिक् है और यह दृक् है। अब इसमें ज्ञान की महिमा बताते हैं; दृष्टि जो है, वह कितनी महत्त्वपूर्ण होती है—यह बात बताते हैं।

अब थोड़ी बातचीत सुनावें। प्रेमी लोग जब एकान्तमें बैठते हैं न—कमरेमें या जंगलमें, या नदी-किनारे, तो वे क्या काम करते हैं? उनका मन क्या करता हुआ रहता है? **कुर्वत्**—क्या करता रहता है। यह कुर्वत शब्द जो है न, यह जरा टेढ़ा होकर अंग्रेजीमें वर्क बन गया। **प्रेयसी मनः**

किं कुर्वत् आस्ते? प्रेयसी का जो मन है, वह क्या करता हुआ, क्या वर्क करता हुआ रहता है? तो बताओ जी।

देखो, अकेलेमें बैठ गये। अपने प्रीतम आये और उनसे अकेलेमें बाचतीत शुरू हुई। अगर विरहमें संयोगकी स्फूर्ति न हो तो प्रेमी जिन्दा नहीं रहेगा, मर जायेगा। जिस समय अपने प्रियतमका विरह होता है, उस समय यह नहीं होता—कि चलो! दूसरे काममें मन लगालें। अरे भाई, वे नहीं मिले तो चलो, कुछ गप शप करलें; ताश ही खेल लें। तब ताश खेलनेमें मन थोड़े ही लगेगा! आँख बन्द हो जायेगी, और फिर उन्हींके बारे में सोचेंगे।

यह नहीं समझना कि परमात्मामें जो प्रेम होता है, वह दूसरे ढंगका होता है और संसारमें प्रेम दूसरे ढंगका होता है। प्रेमकी जो प्रक्रिया, जो शैली, जो ढंग इस लोकमें है, वही परमात्मामें भी है। वहाँ फर्क इतना ही है कि यहाँ कोई संसारी स्त्री-पुरुष मनमें होता है और वहाँ ईश्वर मनमें होता है। प्रेमका ढंग तो बिलकुल एक ही होता है। अब टार्च तुम्हारे हाथमें है; चाहे उससे कोई गंदी चीज देखो और चाहे भगवान्‌की मूर्तिके दर्शन करो। प्रेम तो तुम्हारे हृदयमें है। उसको चाहे गंदी चीजके साथ जोड़ो और चाहे परमात्माके साथ जोड़ो। इसमें तुमको स्वतंत्रता है।

देखो, एक बात हम और बीचमें कह देते हैं। ऐसा नहीं समझना कि भक्ति, प्रेम कोई सातवें आसमानसे टपकती चीज है। आपके मनमें धनका लोभ कभी हुआ है? हम यह मान लेते हैं कि इस समय आपके मनमें धनका लोभ नहीं है। इस समय तो आप सत्संगमें बैठे हैं कथामें बैठे हैं; आपका मन बड़ा पवित्र है। लेकिन कभी आपके मनमें धनका लोभ हुआ है, कि नहीं हुआ है? तो जब धनका लोभ होता है, तब आपका मन धनके बारेमें कैसे सोचता है? लोभ होने पर धनके बारेमें जैसा आपका मन सोचता है, वैसे आपके मनमें भगवान्‌के बारेमें लोभ हो जाय और जैसे धनके बारेमें सोचता है, वैसे भगवान्‌के बारेमें सोचने लग

जाय। धनके लोभको लोभ कहते हैं और भगवान्‌के लोभको भक्ति कहते हैं, *लोभहि प्रिय जिमि दाम।* आपके मनमें कभी आया है? स्त्री हो, पुरुष हो; सबके मनमें काम आता है, क्योंकि कामसे मनुष्यकी उत्पत्ति हुई है। अगर माँ-बापके मनमें काम न होता, तो यह शरीर उत्पन्न कहाँसे होता? और ईश्वरके मनमें कामना न होती तो यह जगत् कहाँसे बनता? वेदमें मन्त्र आते हैं ऐसे—**एकोऽहं बहुस्याम्।** वेदमें वर्णन आता है कि कामसे सृष्टि हुई है। इसलिए जब ब्रह्माके मनमें भी काम आता है तो **तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु कोन्वखण्डितधीः पुमान्।** फिर संसारमें यह मान बैठना—कि हमारे मनमें काम नहीं आता है—यह तो एक जीवकी छोटी मुँह बड़ी बात है। ज्यादा दम्भ नहीं करना चाहिए; ज्यादा ढोंग नहीं करना चाहिए।

तो जब मनमें काम आता है तो स्त्रीके मनमें आवे, तो पुरुषका कैसा चिन्तन होता है? और पुरुषके मनमें आवे तो स्त्रीका कैसा चिन्तन होता है? अब उस स्त्री या पुरुषकी जगहपर आप भगवान्‌को बैठा दीजिये। काम वही रहने दीजिये, काम बदलनेकी जरूरत नहीं है।

कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।

तो इसका नाम भक्ति हो गया। स्त्री पुरुषकी जगहपर भगवान् हो और काम वही हो। धनकी जगहपर भगवान् हो और लोभ वही हो।

अच्छा, आपके मनमें कभी मोह आता है कि नहीं? यह मेरा बेटा है, यह मेरा पति है, यह मेरी पत्नी है; मोह आता है? तो मोह आनेपर जिसका मोह होता है, उसकी कैसी याद आती है? आप ख्याल करो एक बार मनमें। मोह तो वही हो, लेकिन वह भगवान्‌से होवे। तो यही जो संसारमें काम होता है, लोभ होता है, मोह होता है, क्रोध होता है, उन्हीं वृत्तियोंका भगवान्‌के साथ जुड़ जाना; उसका नाम भक्ति होता है। आप देखो, कि आपका लोभ अभी भगवान्‌के साथ जुड़ा है कि नहीं? आपका मोह भगवान्‌के साथ जुड़ा है कि नहीं? आपका मोह जुड़ा हुआ है

शरीरके साथ। माफ करना, अगर कोई सच्चे भक्त हों और उनका मोह भगवान्‌के साथ हो, तो वह तो वन्दनीय है।

तो आदमीका मोह है शरीरके साथ। उसके मनमें लोभ है धनके साथ। उसके मनमें काम है स्त्री-पुरुषके साथ। और भक्तकी पहचान है कि उसका मोह, उसका काम, उसका क्रोध, उसका लोभ-दिलमें सब है, परन्तु वह भगवान्‌के साथ जुड़ा हुआ है।

अब भक्तिमें देखो, दृष्टि कैसे बदलती है। गोपियाँ बताती हैं—**दृशा सुरतनाथ! दृशा वरद! दृशा निघ्नतः, इह दृशा वधः किं वधो न भवति?**

वे कहती हैं, तुम्हारी दृष्टि जो है, यह गजब ढाने वाली है। क्या? कि तुम्हारी चितवन, तुम्हारी अवलोकन, तुम्हारी विलोकन! जब गोपियोंने कहा कि हम तुम्हें वन-वन ढूँढ़ रही हैं, तो एक बार उनकी आँखोंके सामने पीताम्बर-धारी, मोरमुकुट वारे श्यामसुन्दर चमक गये। उनके सामनेसे निकले और अंगूठा दिखा दिया; ढूँढ़ती हो तो ढूँढ़ती रहो! हमको क्या! **किमस्माकम्?** अरे! ढूँढ़ती हो तो जिन्दगी भर ढूँढ़ती रहो। इसमें हमारा क्या बनता- बिगड़ता है? जब हम तुम्हारे पास आये, तब तो तुम मुँह फेरकर बैठ गयीं, ध्यान करने लगीं—हम बड़ी आत्मनिष्ठ हैं। हम ब्रह्मनिष्ठ हैं, समाधि-निष्ठ हैं। आँख बन्द करके बैठ गयीं—हमारे सरीखा और कौन? अब जब हम छिप गये तो तुम हमें ढूँढ़ती हो! ढूँढ़ो! जाओ!

गोपियोंने कहा—अगर हम ढूँढ़ती हैं तो तुमको वधका पाप लगेगा। हत्याका पाप लगेगा, हत्याका।

बोले—हत्याका पाप कैसे लगेगा? क्या हम तुमको न्यौता देने गये थे, कि गोपियो! तुम आना?

अब देखो! आप ही बोल गये गोपियोंके मनमें। तो बोलीं—न्यौता तो तुमने दिया था! **सुरतनाथ!** यह सम्बोधन है; **दृशा सुरतनाथ**— आँखसे सुरतकी प्रार्थना करनेवाले। अभी तुम्हारी आँखें हमने देखी थीं।

कैसी प्रेमकी आँखसे देखकर तुमने उस दिन याचना की थी। उस दिन तो ऐसा लगता था कि हमसे मिलनेको तुम्हारे प्राण व्याकुल हैं; **दृशा सुरतनाथ!**

यह सुरतनाथ प्रेमियोंका सम्बोधन है। जैसे धर्मात्मा लोग जब बोलते हैं न, तो भगवान्‌को बोलते हैं **यज्ञतपी:। धर्मेश्वर! धर्मपाल!** पैसे वाले उनको बोलते हैं **लक्ष्मीपते!** मोक्षवाले बोलते हैं **मोक्षपते! कैवल्यपते! मुकुन्द!** और **ज्ञानघन! ज्ञानेश्वर!** बोलते हैं ज्ञान चाहने वाले। ज्ञान चाहने वालों का सम्बोधन जुदा होता है, धन चाहने वालों का जुदा होता है। किसीका परिचय देना हो तो एक आदमी कहेगा—देखो, ये कितने सुन्दर हैं! दूसरा कहेगा—कितने धनके मालिक हैं। तीसरा कहेगा—कितने पढ़े-लिखे हैं! चौथा कहेगा--कितनी ऊँची कुर्सी इनके पास है! अपनी अपनी रुचिके अनुसार सब बोलते हैं। तो जो लोग प्रेम करनेवाले हैं, वे भगवान्‌को यज्ञेश्वर कहके नहीं बुलाते हैं, धर्मपाल, क्षितिपाल कह करके नहीं बुलाते हैं। वे उनको मोक्षदाता, शरण्य, लक्ष्मीपते, जगदीश्वर कहकर नहीं पुकारते हैं। वे कहते हैं सुरतनाथ! सुरतनाथका अर्थ होता है प्रेमका स्वामी। जैसे मधुशालामें जाओ तो वहाँ जो शराब पिलानेवाला होता है, साकी—उसको क्या बोलते हैं? उसको मधुपति बोलते हैं। इसी प्रकार जो लोगोंको प्रेमका प्याला पिलानेवाला होता है प्रेमका रस—उसको बोलते हैं सुरतनाथ। प्रेमी और प्रियतमके मिलनसे सुख होता है, उस सुखरूप मधुका नाम है सुरत और उसका जो स्वामी है, उसका नाम सुरतनाथ।

अब देखो! संस्कृतभाषामें नाथ शब्दके कई अर्थ होते हैं। नाथका अर्थ होता है याचना करने वाला। नाथका अर्थ होता है जलानेवाला। तो **दृशा सुरतनाथ।** गोपियोंने कहा कि तुम कहते हो कि हमने तुमको क्या न्यौता दिया था? क्या तुमने उस दिन आँखोंके इशारेसे हमसे प्रार्थना नहीं की थी? याचना नहीं की थी?

तो बोले—अच्छा, याचना की होगी बाबा! लेकिन तुम लोगोंने भी तो याचना की थी! व्रत किया था।

बोलीं—तो तुमने क्या वर नहीं दिया था हमको? **दृशा वरद।** आँखोंसे तुमने स्वीकार भी किया था।

ये आँखें जो हैं, ये दुनिया भरकी सब बात अपने अन्दर रखती हैं। ज्ञानमें ही सब बात है। जानकारीमें ही याचना है, जानकारीमें ही देना है, जानकारीमें ही मिलना है। जानकारीसे सृष्टि पैदा होती है और नष्ट हो जाती है।

बोले—**दृशाऽशुल्कदासिका।** हम तुम्हारी बेदामकी गुलाम हैं—**अशुल्कदासिका।** कोई तुमसे भेंट थोड़े ही लेती हैं; पूजा थोड़े ही लेती है। कोई फीस लेनेवाली थोड़े ही हैं।

बोले—क्यों हो गयीं? किसने गुलाम बनाया?

कि **दृशा!** तुम्हारी आँखोंने, तुम्हारी प्यारी-प्यारी चितवनने हमें बेदामका गुलाम बना दिया। तो अब हे वरद! पहले तो दिया वरदान—कि रासलीला करना हमारे साथ। नाचना। पहले तो की याचना! अब **इह दृशा निघ्नतः**—अब यहाँ अपनी आँखोंसे ही तुम मार रहे हो। तो **दुशा वधः किं वधो न भवति? नेह किं वधः? न वधो वधावति किम्?** आँखोंसे मारना क्या हत्याका अपराध नहीं है? हत्याका दोष नहीं है?

देखो, कैसे मारा, इससे क्या फर्क पड़ता है? लाठीसे मारा कि तलवारसे मारा, कि रस्सीसे कसकर मारा! मारना तो मारना ही है। मारनेका जो साधन है, वह शस्त्र है और जो मारता है, उसको मारनेका पाप लगता है। बड़े प्रेमसे यह बात कही जा रही है, नहीं तो श्रीकृष्णको पाप लगानेवाला कौन! न तो श्रीकृष्णको पाप लग सकता है, न उन्हें कोई पाप लगा सकता है। शास्त्रने निर्णय दिया है कि जो श्रीकृष्णको जान लेता है, उसको भी पाप नहीं लगता। कृष्णने खुद ही कहा है—

जन्म कर्म च मे दिव्यं एवं यो वेत्ति तत्त्वतः।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोर्जुन॥

कृष्णको अगर ठीक-ठीक कोई जान ले—कि कृष्णमें कर्मका लेप नहीं है, कृष्णमें भोगका लेप नहीं है—तो वह जाननेवाला भी कर्मके लेपसे और भोगके लेपसे छूट जाता है

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफलस्पृहा।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते॥

यह वही कृष्ण! अब गोपियोंने कहा—पाप लगेगा कृष्ण! पाप। **सुरतनाथ, वरद**। याचना करके हमें बुलाने वाले, हमको वर देने वाले! और हम तुम्हारी बेदामकी गुलाम! और तुम अपनी नजरसे हमको मार रहे हो। तो तुम्हें पाप लगेगा। लेकिन क्या अस्वाभाविक है यह तुम्हारे लिए, जिसकी आँखोंको ही पाप करनेकी आदत पड़ गयी हो!

बड़ी प्रेमकी बोली है यह। सब नहीं बोल सकते ऐसे!

शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा।
सुरतनाथ तेऽशुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः॥ २॥

देखो, एक ही शब्द बोल करके आँखों की तारीफ भी करते हैं और निन्दा भी करते हैं। तो पहले तारीफवाली बात समझ लेनी चाहिए।

भगवान्‌की आँखें कैसीं? सबकी आँखें अगर एक सरीखी रहतीं तो इनमें कोई मजा थोड़े ही रहता! ऐसा कानून ही होता कि आँखें बिलकुल सीधे-सीधे ही देखतीं या कोने-ही-कोने देखतीं, या सब एक ही आँखके होते या सब दो हीके होते; दो आँखके होनेपर भी अगर आँख हिलती-डोलती नहीं, तो कल्पना करो; जैसे पत्थरकी मूर्ति होती है, वैसे ही तो होता न। ये आँखें ही तो दुनियामें मजा बनाती हैं। आनन्दकी सृष्टि दृष्टिने ही की है संसारमें।

तो भगवान्‌की दृष्टि कैसी? कहती हैं—कि शरद ऋतुमें, सुन्दर सरोवरमें ऊँची किस्मका बढ़िया-से-बढ़िया कमलका फूल जो खिलता

है, उसके भीतर रहनेवाली शोभाका, श्रीका अपहरण कर लिया है तुम्हारी आँखोंने। माने भगवान्की आँखें कितनी सुन्दर हैं। बहुत सुन्दर हैं, बहुत सुन्दर हैं। यह आँखोंके सौन्दर्यका वर्णन है।

वैसे तो महाराज, सब लोग अपनी आँखोंको सुन्दर ही समझते हैं। वैसे सुन्दर न दिखें तो काजलकी लकीर खींचकर बड़ी बनाते हैं, कज़रारी दिखाते हैं। पर श्रीकृष्णकी आँखें बनावटी सुन्दर नहीं हैं। बड़ी-बड़ी आँखें होनेसे यह नहीं समझना—कि बढ़िया हैं।

अनियारे दीरघ दृगनि किती न तरुनि समान।
वह चितवन और कछु जिहि बस होत सुजान॥

महाराज! बड़ी-बड़ी आँखें हों और अनीदार हों। जैसे बाणमें नोक होती है न धँसनेके लिए, वैसे आँखोंमें भी नोक होती है। अनियारे माने नुकीली और दीरघ दृगनि माने बड़ी-बड़ी। प्रेमके मार्गमें तो आँखोंकी बड़ी महिमा है।

लगा लगी लोयन करें, नाहक मन बँध जाय॥

लगा-लगी तो आँखें करती हैं, मन बिचारा झूठ-मूठ फँसता है।

इन दुनिया अंखियान को सुख सिरज्यो ही नाहि।
देखत बने न देखते, बिन देखे अकुलाहिं॥

देखनेके समय तो शरमा जाती हैं, और न देखनेपर अकुलाती हैं। कविने वर्णन किया कि आँखोंकी गति निराली है।

दृग उरझत टूटत कुटुम दुरत त्रतुर चित प्रीति।
परत गाँठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति॥

आँखोंकी रीति निराली है। संसारमें यह नियम है कि जो उलझे— जैसे रस्सी उलझती है, तो जो उलझता है, वह टूटता है। लेकिन आँखोंके उलझनेमें यह निरालापन है कि उलझती हैं आपसमें आँखें, और टूटता है कुटुम्ब; दूसरा ही कोई टूट जाता है। और जो टूटता है, वही जुड़ता है, यह संसारकी रीति है। परन्तु यहाँ टूटता है कुटुम्ब और ***जुरत चतुर चित***

प्रीति, दो प्रेमियोंके चित्तमें प्रेम जुड़ता है। और जो जुड़ता है, उसीमें गाँठ पड़ती है। तो बोले—नहीं। *परत गाँठ दुरजन हिये।* जुड़ता है दूसरा और गाँठ पड़ती है दूसरेके दिलमें; दुर्जनके हृदयमें। *दई नई यह रीति।* आँखोंकी यह जो रीति है, यह बिलकुल निराली है; सामान्य नहीं है अब देखो! गोपियाँ कहती हैं—तुम्हारे आँखें यदि हत्या कर डालें हम गोपियोंकी, तो? मार डाला रे! ऐसा बोलते हैं। यह प्रेमी लोगोंकी जो बोली है, उसमें आँखोंसे घायल करना, आँखोंसे मारना, आँखोंसे माँगना, आँखोंसे रोना, आँखोंसे देना, आँखोंसे प्यार प्रकट करना; सब आँखोंसे होता है। अभिमान प्रकट करना, आँख तरेरकर डाँट देना! कई लोगोंकी ऐसी आदत होती है महाराज! आँख टेढ़ी करदें तो बच्चे थरथर काँपने लगते हैं। तो आँखसे डाँटना, आँखसे घायल करना, आँखसे मारना; ये जो आँखें हैं, ये तो ब्रह्मास्त्र हैं ब्रह्मास्त्र! जो मनुष्यको मिले हैं। औरोंकी आँखें चलने वाली नहीं होती हैं। मनुष्यकी आँखें तो बिलकुल चलनेवाली होती हैं न!

आप एक बार देखो! यह कृष्णके नेत्रोंका वर्णन है। कैसी हैं उनकी आँखें? बोले—घायल करनेवाली हैं। मारती हैं। एक बार किसीने पूछा—संसारमें ऐसी कौन-सी चीज है, जिसका आना भी बुरा, जाना भी बुरा, उठना भी बुरा और बैठना भी बुरा है? तो जरा आँखके साथ जोड़ो। आँखका आना भी बुरा, जाना भी बुरा। उठना भी बुरा और बैठ जाना भी बुरा। तो कृष्णकी आँखें घायल करती हैं, वध करती हैं। घायल करनेका अर्थ है—ऐसा निशाना मारती हैं कि आदमी छटपटाता रह जाय। असलमें संसारमें छटपटी पैदा करना—यह ईश्वरकी कृपाके बिना, ईश्वरके प्रेमके बिना हो नहीं सकता। सब लोग खिलौनोंमें फँसे हुए हैं। कोई चार पैसेके अभिमानमें फूल रहा है, कोई खानदानके अभिमानमें फूल रहा है, कोई कुर्सीके अभिमानमें! सब लोग किसी-न-किसी अभिमानमें फूले हुए हैं।

एक बार महाराज!

मनमोहन जाकी दृष्टि परत, ताकी गति होत है और और।
न सुहात भवन तन असन बसन, उनहीं को धावत दौर दौर॥

एक बार उसने महाराज, अपनी चितवनका तीर जिसको मारा, उसको ये दुनियाके पैसे, यह भोग, यह बड़प्पन, सब बिसर जाता है। असलमें कृष्णकी आँखें घायल करनेके लिए हैं। ब्रह्म, निराकार ईश्वर किसीको घायल करके नहीं बुला सकता। जिसको हजार बार गरज हो, तो ब्रह्मके पास जाय, निराकारके पास जाय, समाधिके पास जाय। लेकिन यह तो महाराज! निशाना साध-साधकर लोगोंको अपनी ओर बुलानेवाला है।

अब देखो! आँखोंको गाली दी; सो सुनाता हूँ। **शरदुदाशये।** चोर, पक्का चोर! कृष्ण! तुम्हारी आँखें चोर हैं।

री गोपियो! हमारी आँखोंने तुम्हारा क्या चुराया है कि जब चाहो, तब कह दो चोर?

बोलीं—**शरदुदाशये।** देखो, शहरमें बात बताना तो कुछ बहुत बढ़िया नहीं है। देहातमें यह मशहूर है कि दीवालीके दिन जो चोरी करनेमें सफल हो जाता है, वह साल भर चोरी करनेमें सफल होता है। तो चोर लोग मूहूर्त करते हैं दीवालीको। वह कब होती है? कि शरद ऋतुमें होती है। तो शरदुदाशये—शरद ऋतु, पवित्र होती है, जब खूब चाँदनी छिटकी हुई होती है। शरद ऋतु, कार्तिक मास पुण्य करनेके लिए है, चोरी करनेके लिए नहीं। और चोर वह, जो अँधेरेमें जाकर चोरी करे, तो कच्चा और जो उजालेमें चोरी करे, सो पक्का। और महाराज! जो रोज-रोज चोरी करे, सो तो ठीक, पर जो एकादशीको भी न छोड़े? वह तो पक्का चोर है न!

तो शरद तो ऋतु और **उदाशय**-सरोवरमें माने पवित्र तीर्थमें। और जगह तो चोरी करते हैं महाराज, तीर्थमें भी करते हैं। सत्संगमें आकर

जूता चुरा लेते हैं। बोले—भाई! इसकी कथामें चर्चा क्यों करते हो? कि देखो, एक काम ज्यादा करना पड़ता है कि नहीं? आदमी रखो, जूतेकी रक्षा करो। यह काम सब जगह, सत्संगमें भी करना पड़ता है।

महाराज! जो पक्के चोर हैं, वे यह नहीं कहते हैं कि यहाँ अगर चोरी करेंगे तो हमको ज्यादा पाप लगेगा। तो ये भगवान्‌की जो आदतें हैं न! वे न तो पवित्र समयका ध्यान करते हैं—शरद ऋतु है, और न तो यह ध्यान करें कि उदाशय है, सरोवर है, पवित्र तीर्थ है। और फिर चारों ओर तो खूब रोशनी हो, और पानीसे घिरा हुआ जो किला हो, उसमें कोई सम्पत्ति रखी हुई हो—उदाशय। सरोवरके बीचमें कमल खिला; जो दुर्गमें है न, किलेमें। एक तो पवित्र तीर्थमें है और दूसरा उसका रक्षक जल है। अब वहाँ भी **साधुजात।** बोले—भाई! कोई कहते हैं कि ये तो बड़े भलेमानुष हैं। इनकी चोरी नहीं करनी चाहिए। चोर लोग भी आपसमें सोच लेते हैं—कि भाई, भलेमानुसके घरमें, साधुके घरमें चोरी नहीं करनी चाहिए। लेकिन ये तो इतने पक्के चोर—कि साधुके घरमें भी घुस जायँ।

तो **साधुजातः**—जो अच्छे वंशमें उत्पन्न हुए हैं, बढ़िया किस्मके हैं और स्वयं सत् माने संत हैं। भले हैं स्वयं जो—कमल। ऐसे कमल अपने पेटमें छिपा करके रखते हैं लक्ष्मीको, शोभाको। अब वहाँसे शोभाको तुम्हारी आँखोंने हरण कर लिया है। इतनी पक्की चोर हैं तुम्हारी ये आँखें! वहाँसे भी चुरा कर ले आती हैं। और महाराज! जो चोर होते हैं, उनको हत्या करनेमें भी संकोच नहीं होता। दोष जो होते हैं न, वे एक-एक करके आते हैं। आदमी समझता है कि हम तो जरा-सी गलती कर रहे हैं; इसको तुम क्यों नहीं सह लेते? लेकिन उस जरा-सी गलतीमें आगकी जो चिनगारी है, वह आग तो सारे गाँवको ही भस्म करने वाली है न! इस बातको आदमी नहीं समझता। ये दोष जो अपने जीवनमें आते हैं, तो पहले तो तरंगकी तरह आते हैं। लेकिन जब संग मिलता है तो बिलकुल समुद्रकी तरह हो जाते हैं। तो जब चोरी आती है तो हत्या भी आती है।

अब यह भगवान्‌की दृष्टि देखो। शरद पूर्णिमाके दिन गोकुल सरीखे रसीले स्थानमें गोपी रूप जो कमल हैं, उनके हृदयमें जो प्रेम रूप सौन्दर्य है, अपनी बाँसुरीके द्वारा जैसे उसका हरण किया, वैसे वह अपनी दृष्टिसे भी लोगोंके मनको हरण करते हैं।

सुरतनाथ ते—तो तुम्हारी ये आँखें चोर हैं; इन्हींसे तुमने याचना की, इन्हींसे तुमने वर दिया। इन्हींके कारण हम तुम्हारी बेदामकी गुलाम हो गयीं। अब इन्हींसे तुम हमारी हत्या कर रहे हो। तो कृष्ण! क्या तुमको वध का दोष नहीं लगेगा? **विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्**—अगर अपने आप कोई जहरका पेड़ लगावे, तो भी अपने हाथसे उसको काटना नहीं चाहिए। जहरका है, तो क्या! अपना लगाया हुआ पेड़ है। **विषवृक्षो सम्वर्ध्य**—पेड़ लगाया, उसको सींचा। अब अपने हाथसे उसको काटें कैसे? तो तुमने हमारे हृदयके बगीचेमें यह प्रेमका बीज बोया। अब उसको अंकुरित किया, पुष्पित किया, फलित किया। अब वह पक करके रस-पान करने योग्य हुआ तो तुम छिप गये। यह तो किसानने अपनी सारी जिन्दगी जैसे कोई फल उत्पन्न करनेमें लगायी हो और जब उसके रसास्वादन करनेका मौका आवे, तो परदेस चला जावे। तो यह क्या उसके लिए योग्य है?

तो तुम्हें प्रकट होकरके अपने लगाये इस प्रेम-वृक्षका जो रस है, उसका आस्वादन करना चाहिए।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

: ६ :

जीवको ईश्वरके संयोगका अनुभव बहुत कम होता है, जब ऐसा मालूम पड़ता रहे कि ईश्वर हमको मिला है। निराकार रूपसे मिला है, साकार रूपसे मिला है, प्रियतम रूपसे मिला है, आत्मरूपसे मिला है, मिला-मिलाया है—किसी भी तरहसे यह प्रतीत हो जाय कि वर्तमानमें हम ईश्वरसे जुदा नहीं हैं। अगर ऐसा हो जाय, फिर तो सुख-ही-सुख है, मजा-ही-मजा है। लेकिन संसारके लोग ईश्वरके मिलनका, संयोगका सुख अनुभव नहीं करते हैं। बड़े-बड़े महात्माओंकी तो बात है, कि *जहाँ देखता हूँ वहाँ तू ही तू है।* लेकिन लोगोंको वियोगका ही अनुभव ज्यादा है। जो लोग मानते हैं कि हम ईश्वरसे बिछुड़े हुए हैं, इनमें भी ईश्वरसे बिछुड़े हुए हैं, इनमें भी ईश्वरसे बिछुड़नेका दुःख किसीको होता है, किसीको नहीं होता।

अब आप जरा अपने बारेमें सोचो कि ईश्वरसे वियोगका दुःख आपको कभी सताता है? पतिका वियोग सतावे, पत्नीका वियोग सतावे, पुत्रका वियोग सताते, धनका वियोग सतावे और युग-युगसे बिछुड़े हुए ईश्वरका वियोग अपनेको न सतावे! यह हृदयका पत्थर हो जाना है न! इसीलिए चैतन्य महाप्रभु कहते थे—कि हे प्रभु! तुम मुझे विरहकी स्फुरणा दो। हमको यह तो मालूम पड़े, कि हम तुमसे बिछुड़े हुए हैं। फिर हम छटपटायेंगे, रोवेंगे, कलपेंगे, दुःखी होवेंगे। हमारा दिल फटेगा। तुमको दया आवेगी, तुम दौड़कर उठाओगे। पर एक बार हमको यह मालूम तो पड़े कि हम अपने प्राणप्यारे, अपने हृदयेश्वर, अपने जीवन-सर्वस्व प्रभुसे बिछुड़कर संसारमें भटक रहे हैं, दुःखी हो रहे हैं।

ये जो संसारी लोग हैं न! पैसा कमानेमें लग गये, जूआ भी खेलने लगे, बेईमानी भी करने लगे, चोरी भी करने लगे। भोग भोगनेमें लग गये ते अनाचार-व्यभिचार भी करने लग गये। लड़ाई-झगड़ेमें लग गये तो हिंसा, द्रोह, हत्या करने लग गये। हमको ईश्वरकी जरूरत है दुनियामें—यह तो इन लोगोंको मालूम ही नहीं पड़ा है।

तो देखो! भजन करनेवालोंको इस बातसे सावधान रहना चाहिए। उनको यह नहीं सोचना चाहिए कि यह बड़ा सेठ जो है, वह जब दिन भर जूआ खेलता है और ईश्वरका नाम नहीं लेता, जब इतना बड़ा सेठ होकर ईश्वरका नाम नहीं लेता, तो हम क्यों लें? अपना आदर्श उस जुआरी सेठको मत बनाना। उस भोगी राजाको, उस जुआरी सेठको, उस लड़ाकू पहलवानको अपने जीवनका आदर्श मत बनाना। ये तो दुनियामें ऐसे रच-पच गये हैं कि इनको अब काल ही ठीक करेगा। हमारे पास आने वाले कई लोग ऐसे हैं, जो मरनेके बाद जो टैक्स लगता है न, वह देनेको राजी हैं—कि जब हम मर जायेंगे तो चाहे जितना टैक्स ले लिया जाय, लेकिन जिन्दा रहते हुए दान देनेपर टैक्स लगे—वह देनेको राजी नहीं हैं। कहते हैं—मरनेपर टैक्स चाहे जितना देना पड़े, वह तो जिसको लेना होगा वह ले लेगा, लेकिन हम महाराज! अब अगर किसीको देंगे, तो वह दान देनेका टैक्स हमको लग जायेगा। मरनेके बाद वाले टैक्ससे तो बचेंगे नहीं, दान देने वाले टैक्ससे भले बच जायँ। संसारके लोगोंकी यह समझदारी है। और अपनेको बड़ा बुद्धिमान बताते हैं; बोलते हैं—हम जज हैं, हम कलेक्टर हैं। बड़े-बड़े 'टर' होते हैं। ये धर्मसे टर गये, इसीलिए इनके नामके साथ 'टर' है। अब देखो न! इसमें लोभके सिवाय और क्या कारण हो सकता है, कि आदमी मृत्युके बाद देने वाला टैक्स देनेको राजी हो, और दान देने पर जो सुख मिलता है, उसका टैक्स देनेको राजी न हो। चित्तकी कंजूसीके सिवाय इसमें और क्या कारण हो सकता है? तो साधन-भजन करने वालोंको इनको अपनेसे बड़ा समझकर इनके

पीछे चलनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए। तुम यह देखो, कि तुम्हारे चित्तमें ईश्वरकी प्राप्तिके लिए कभी वेदना, पीड़ा, तड़प होती है कि नहीं? बड़ी भारी चीज है यह! **जन्मकोटि सुकृतैर्न लभ्यते।**

कृष्णभक्ति-रस भाविता मतिः क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते।
तत्र मूल्यमपि लौल्यकेवलं जन्मकोटि-सुकृतैर्न लभ्यते॥

खरीद लो! खरीद लो! महात्मा कहते हैं—खरीद लो! तो महाराज, कौन-सी चीज खरीदें? आप किस सौदेका विज्ञापन कर रहे हैं?

कृष्णभक्तिरस-भाविता मतिः। कृष्णभक्तिके रससे सराबोर, कृष्णभक्ति रससे तर अक्कल खरीदो, बुद्धि खरीदो।

बोले—कहाँ मिलेगी, महाराज?

कि यह मत पूछो। जहाँ मिले, वहींसे खरीद लो! दुकानका कोई नियम नहीं है, **यदि कुतोऽपि लभ्यते।** चण्डालसे मिले, अन्त्यत्रसे मिले, कसाईसे मिले। जहाँसे भी मिले, वहाँसे ले लो।

कि महाराज! कीमत क्या चुकानी पड़ेगी?

बोले—बस, जरा सी कीमत है। **तत्र मूल्यमपि लौल्यकेवलम्।** जैसे तुम चाट खानेके लिए कभी-कभी मचल पड़ते हो, जैसे मिठाई खानेके लिए तुम्हारा मन चंचल हो जाता है, वैसे यह नन्दनन्दन श्यामसुन्दर मुरलीमनोहर पीताम्बरधारीकी मन्द-मन्द मुसकानकी जो मिठास है न, जो स्वाद है—उसको अपनी आँखोंसे लेनेके लिए तुम्हारा दिल मचले, ललचे, व्याकुल हो उठे! यह उसकी कीमत है।

भला यह कीमत कहाँसे मिलेगी? क्या पुण्य करें? क्या दान करें?

बोले—दानसे, पुण्यसे यह ललक नहीं मिलती है। यह तो मिलती है प्रेमियोंके संगसे। **जन्म-कोटिसुकृतैर्न लभ्यते**—करोड़-करोड़ जन्मोंके पुण्यसे भी यह नहीं मिलता। यह तो—जब किसी प्रेमीका संग मिलेगा, तब इसकी प्राप्ति होगी।

तो आओ! किसी प्रेमीका संग करें। संयोगका रस नहीं आयेगा

पहले, पहले कृष्णके विरहमें जो पीड़ा है, वह हृदयमें आनी चाहिए। एक महात्मा कहते थे—कि पहले अपने दिलको किसी भक्तके दिलके साथ मिलाओ, किसी भक्तके हृदयके पार्षद बनो। पहले किसी धनीके व्यापारमें अपने दस रुपये लगाओ। फिर तो तुम भी हिस्सेदार हो जाओगे।

तो भक्तके दिलसे अपने दिलको मिलाना है। यह क्या है? कि जैसे जसोदा मैयाके दिलमें अपने लालाको दूध पिलानेकी इच्छा होती है, जैसे ग्वालेके मनमें उनके कंधेपर हाथ रखकर चलनेकी इच्छा होती है, जैसे गोपीके मनमें उनकी आँखोंसे अपनी आँखें चार करनेकी इच्छा होती है, वैसे ही हमारे मनमें भी इच्छा उत्पन्न होवे। तो भक्तके दिलसे मिलाओगे, तब तो तुम्हारे अन्दर विरह आवेगा। नहीं तो, महाराज!

निकले थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास।

चले थे ईश्वरको ढूँढ़नेके लिए—कि हमको ईश्वर मिलेगा! महाराज! चौपाटीपर चलते-चलते एक बड़ा सुन्दर रूप दिखाई पड़ा; बोले—बस-बस! हमारा ईश्वर तो यही है। ढूँढ़ने तो निकले थे ईश्वरको, ***निकले थे हरिभजन को,*** और फँस गये कहाँ नरकमें, ***ओटन लगे कपास।***

तो किस भक्तके साथ अपना दिल मिलावें, कि हमारे हृदयमें भगवान्‌के प्रति ललक, मचलन, तड़प उदय होवे? हाय राम! भगवान्‌के बिना हमारा एक-एक क्षण निष्फल जा रहा है।

तो बोले—भाई! प्रेममें तो गोपियाँ ही आदर्श हैं। कृष्णके विरहमें गोपीके हृदयकी जो दशा होती है, वही दशा तुम्हारे हृदयकी हो जावे!

तो देखो! गोपियाँ अपनी विरहकी दशाका वर्णन कर रही हैं—

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद् वर्षमारुताद् वैद्युतानलात्।
वृषमयात्मजाद् विश्वतोभयात् ऋषभ ते वयं रक्षिता मुहुः॥ ३॥

गोपियाँ भी अनेक हैं। किसीके चित्तमें दीनता आयी, किसीके चित्तमें प्रेम आया। दीनता जिनके चित्तमें आयी, वे गोपियाँ कहती हैं— कि प्रभु! जब-जब हमारे जीवनमें दुःख आया, विपत्ति आयी, तब-तब दौड़कर तुमने हमें बचाया। अब भी हमारे जीवनमें एक दुःख आया, एक विपत्ति आयी है। तुम दौड़कर हमें बचाते क्यों नहीं हो?

इसके लिए वे अपनी विपत्तियोंको गिनाती हैं—

विषज्वलाप्ययाद्—एक बार कालिय नागके विषसे दूषित पानी पीकर व्रजके सब बछड़े और ग्वाले मर गये थे। उस समय तुमने बचाया। इसका मतलब यह है कि यह जो विपत्ति है, आपके विरहमें जो दुःख है, वह उससे कम नहीं है, इससे ज्यादा है।

व्यालराक्षसात्—वह अघासुर रूप अजगर जब सब बछड़ों और ग्वाल बालोंको निगल गया था, उस समय भी श्यामसुन्दर! तुमने दौड़कर उनको बचाया। उससे व्रजकी रक्षा हुई। इन्द्रने क्रोध करके वर्षा की और आँधी चलायी। तृणावर्त आया, बिजली चमकी, वज्र गिरे, आग लगी। वृषभासुर आया, मयासुर आया, व्योमासुर आया। तरह-तरहके भय हमारे जीवनमें आये, परन्तु हे प्राणप्यारे! हे ऋषभ! तुमने बारम्बार हमारी रक्षा की। तो जब इन विपत्तियोंमें, इन दुःखोंमें बचाया हमको तुमने, तो क्या इसी दिनके लिए? कि हम तुम्हारे विरहमें तड़प-तड़पकर मर जायें?

एक तो यह प्रार्थना हुई कि जैसे और दुःखोंमें तुमने हमको बचाया है, वैसे ही इस दुःखमें भी हमको बचाओ। यह विरहासुर हमको मार रहा है। तो इससे भी तुम्हीं हमको बचा सकते हो। तुम अपने दर्शनामृत, अपने रूपामृतका पान करा करके हमारी रक्षा कर सकते हो।

अब देखो! इसमें दूसरी बात आपको सुनाते हैं। भक्त भी तो कई तरहके होते हैं। एक भक्त वह होते हैं, जो मन्दिर-मन्दिर जाते हैं। दूरसे फूल फेंका, ऐसा निशाना मारा कि आँखमें ही जाकर लगा। वे सोचते हैं

कि हमारे पैसेकी याद कैसे रहेगी भगवान्‌को, जबतक चोट नहीं लगेगी! ऐसे भक्तोंकी बात नहीं है। जो सच्चे भक्त होते हैं, वे अपनी मृत्युको कुछ नहीं गिनते। मौर तो प्रेमियोंके लिए जैसी मीठी-मीठी नींद है। प्रेमी लोग तो कहते हैं कि हमको नींद भी नहीं आती है। एक गोपी वर्णन कर रही थी—कि सखी! आज मैंने सपना देखा। सपनेमें श्यामसुन्दर आये और उन्होंने मेरी माँगमें सिन्दूर डाल दिया, मेरे गलेमें माला पहना दी। मुझे अपने हृदयसे लगा लिया और कह दिया—गोपी! तुम तो मेरी हो। बड़ा आनन्द आया सखी! आज तो सपनेमें प्यारेने बड़ा प्रेम प्रकट किया।

अब दूसरी गोपी सुनकर वहाँसे अलग गयी। वह बेचारी पछता रही, कह रही—कि अरी सखियो! हमारी वह सखी धन्य है! धन्य है।

कि कैसे?

कि सपनेमें श्यामसुन्दरको देखती है। **या पश्यन्ति प्रियं स्वप्ने धन्यास्ता सखि गोपिकाः।** जो गोपी सपनेमें कृष्णको देखती है, वह तो धन्य है, धन्य है। **अस्माकं तु गते कृष्णे गता निद्रापि वैरिणि**—हमारे तो कृष्ण क्या गये, नींदने भी वैर साध लिया, वह भी नहीं आती। अब नींद ही नहीं आती तो सपना कहाँसे दिखे? अब तो हमको सपनेमें भी अपने प्यारेके दर्शन नहीं होते हैं! कितनी व्याकुलता, कितनी पीड़ा है। ऐसा नहीं कहती कि कृष्ण! तुम हमको मृत्युसे बचानेके लिए आओ। मौतको तो प्रेमी लोग अपने लिए वरदान समझते हैं। अगर मौत आ जाय और हमारा शरीर छूट जाय तो हमारा सूक्ष्म शरीर, हमारा जीव तो जरूर प्रभुके चरणोंमें जाकर लीन हो जायेगा। इनके सिवाय और जगह ही हमारे जानेके लिए कौन- सी है? हम तो सौ बार मौतको बुलावें अपने पास। गोपियोंको तो एक दूसरा डर है। वह डर क्या है? कि यदि हम कालिय नागके विषैले पानीसे मर जातीं तो दुनियामें यह बात फैलती, कि गलतीसे गोपियोंने, गोपोंने, बछड़ोंने कालिय नागके विषसे दूषित जल

पी लिया, और मर गये। अजगरके मुँहमें अगर हमारे सगे-सम्बन्धी जाते, हम भी चले जाते, तो हमारे मरनेका दोष लगता अजगरको। यदि इन्द्र हमको मार डालता, तो उसका दोष लगता इन्द्रको। यदि वृषभासुर मार देता, धर्मके लिए हमको मरना पड़ता, या योगाभ्यासके लिए, समाधिके लिए—व्योमासुरसे मरना पड़ता या वेदकी रक्षाके लिए मरना पड़ता—केशींसे मरते, तो हमारे मरनेका दोष इन असुरोंपर जाता। लेकिन आज तो कृष्ण! तुमने ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी कि आज हम मरेंगी, तो दुनियामें यह बात फैलेगी—कि कृष्णके विरहमें तड़प-तड़पकर गोपियाँ मर गयीं। कलंक किसको लगेगा? कृष्णको लगेगा। तो हमने जीवनमें तो तुमको कोई सुख पहुँचाया नहीं, तुम्हारी कोई सेवा की नहीं। हमारे जीवनका एक कण भी तुमको सुख पहुँचानेके काम नहीं आया। हाथसे तुम्हारी सेवा नहीं हुई, पाँवसे तुम्हारे चरणों तक पहुँच नहीं सकी, वाणीसे गा-गाकर तुम्हें रिझाया नहीं। और मरनेके बाद कलंकका एक टीका और लगा जायेंगी। हमारे प्रेमका फल यही निकला न, कि हमारे प्रियतमको कलंकका टीका लग गया! क्या? कि पहले तो कृष्णने बाँसुरी बजाकर सब गोपियोंको बनमें बुला लिया और उसके बाद अन्तर्धान हो गये और अपने विरहमें गोपियोंको तड़पा-तड़पाकर मार डाला!

तो कृष्ण! इस तरहसे हमको मारना क्या उचित है? हम मरनेको राजी हैं, लेकिन तुमको कलंक लगाकर मरनेको राजी नहीं हैं। यह नहीं समझना कि हम तुम्हारे बिना रो-रोकर मर जायँगी और तुमसे बिना मिले रह जायँगी। हम तुमसे पहले मिल लेंगी, तब मरेंगी। अब इसमें अनुग्रह है। एक तो ध्वनि होती है, और एक अनुध्वनि होती है। हम तुमको कलंक लगाकर नहीं मरेंगी। पहले मिल लेंगी, फिर मरेंगी।

ऋषभ ते वयं रक्षिता मुहुः। ऋषभ माने वृषभ, प्रतिदेह। ऋषभ शब्दका अर्थ सीधा-सीधा है प्रतिदेह। हम तुम्हारी गायें हैं और तुम हमारे वृषभ हो।

श्रेष्ठको भी ऋषभ बोलते हैं—**हि मां ऋषभं प्राहुराज्ञा।** ऋभभ-देवजीका नाम ऋषभदेव क्यों हुआ? श्रेष्ठ होनेके कारण।

अब एक दूसरी बात सुनो। भगवान् गोपियोंकी रक्षा करते हैं। किस लिए रक्षा करते हैं? एक-एक क्रमसे देखो।

विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद्। पहले मिलता है संसारमें विषसे निसृत रस—जल; जल माने रस। जल शब्दका अर्थ जड़ भी है—जड़ पदार्थ और जल शब्दका अर्थ रस भी है—रसीला। जितना रस संसारमें बनता है, वह जलसे ही बनता है। अगर जीभपर पानी न आवे तो कोई चीज रसीली नहीं होगी। तो **विषयास्तद्विषम् स्मृता। कालियः इन्द्रिय आह विषया तद् विषं स्मृता।** कालिय कहते हैं इन्द्रियोंको। और संसारके विषयोंका जो इन्द्रियोंसे सम्बन्ध हो गया है, उसका नाम है विष। तो संसारके लोग जो हैं, उनकी पहली मौत तो यह है कि इन्द्रिय और विषयोंका संयोग हुआ और उसमें मर गये। अब भगवान्ने जब कृपाकी दृष्टि डाली, तब मनुष्य इस मृत्युसे बचा। उसके बाद वासनाका जो अजगर है, भगवान्से विमुखता है वह आकर निगल लेता है। तो वहाँ भी भगवान् वासना बनकर आते हैं। स्वयं अजगरके मुँहमें घुसते हैं, तब वहाँ बचाते हैं।

अब देवता आता है इन्द्र। वह हवा चलाता है। बिजली चमकाता है, वज्र गिराता है, आग लगाता है। सब देवताओंसे ये दुःख आये। देवता भी तो भगवान्की ओर चलनेमें बाधा डालते हैं। फिर वृषका दुःख पाया, धर्मानुष्ठानका। और फिर मयात्मज-समाधिका दुःख आया। श्रीकृष्णकी प्राप्तिमें ये सब नीचे रह जाते हैं। अपनी मंजिले मकसूदपर पहुँचनेके लिए रास्तेके ये पड़ाव हैं। इनमें रुकना नहीं।

एक सज्जन बद्रीनाथ जाने वाले थे। हरद्वारमें जो गंगाजीके जलकी ठंडक देखी, तो बोले—बस-बस! अब आगे जाकर क्या करना है। इतना ठंडा गंगाजल यहाँ मिलता है। ऋषिकेशमें गये, तो वहाँ हर हर हर हर धारा

देखकर उनका मन हुआ—बस, यहीं! ज्योतिर्मठ गये, हरियाली देखकर मगन! देवदर्शिनी पहुँचे तो देखा, वह कंचनजंघा चमक रही है, चाँदीकी तरह, बड़े-बड़े बरफके पहाड़, जो सूरजकी रोशनी पड़नेसे कहीं-कहीं सुनहले मालूम पड़ रहे हैं। सोने के बड़े-बड़े नगर मालूम पड़ रहे हैं उनके ऊपर! बोले—बस बस! अब बद्रीनाथ जानेकी क्या जरूरत है? तो जो पड़ावमें ही रुक जाता है, वह अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँचता है।

तो ये सब रुकावटें जब आती हैं रास्तेमें, तो भगवान् ही कृपा करके रक्षा करते हैं मनुष्यकी। अपनी कोई झाँकी दिखाकर, कोई झलक दिखाकर, कोई कृपा प्रकट करके, कहीं चपत लगाकर। कहीं चपत भी लगाते हैं, जब आदमी फँसने लगता है न!

एक पति-पत्नी दोनों भक्त थे। बड़ी भक्ति करते थे, दिन-रात पूजामें ही लगे रहें! उनके घरमें एक बेटा आगया। तो महाराज! दोनों ने बाँट लिया। प्यार करें तो बच्चेको। भगवान् भूल गये। जब भगवान् भूल गये तो भगवान्ने धीरेसे बच्चेको अपनी गोदमें बुला लिया। तो फिर दोनों भगत हो गये भगवान्के, भगवान्की भक्ति करने लगे। बोले—प्रभु! ऐसा क्यों किया? हमारे बच्चेको अपने पास क्यों बुला लिया? बोले—बच्चा तो हमारा था। हमने तो तुम्हें खेलनेके लिए दिया था। तुम लोग तो ऐसे लग गये खेलमें, कि हमको ही बिलकुल भूल गये।

तो दे कोई वस्तु किसीको मनोरंजनके लिए और उसको ही वह सर्वस्व मान बैठे! तो वह वस्तु छीनकर भी, कभी चपत लगाकर भी, कभी अपनी झाँकी दिखाकर भी, कभी समझा-बुझाकर भी भगवान् उन सब विघ्नोंसे रक्षा करते हैं, और अपनी ओर खींचकर ले जाते हैं। इसमें शर्त एक है, वह बता देता हूँ आपको। साधकका विश्वास भगवान् पर बना रहना चाहिए कि प्रभु हमारा कल्याण करेंगे। यदि वह अपना विश्वास खो देता है तो पड़ावमें अटक जाता है। और विश्वास बना रहता है तो प्रभु उसको खींच लेता है।

तो गोपियाँ कहती हैं—**ऋषभ ते वयं रक्षिता मुहुः**—बारम्बार तुमने हमारी रक्षा की है। हम जानती हैं कि इस विरहसे भी तुम हमारी रक्षा करोगे। गोपियोंमें भी कई तरहकी हैं; अज्ञात यौवना, मुग्धा, भोली-भाली बेचारी, सुकुमारी कुमारी। वे तो डर गयीं, घबरा गयीं। बोलीं—दौड़ो, दौड़ो! बचाओ। दूसरी अड़ गयी—कि तुम यह समझते हो कि हम तुम्हारे विरहमें व्याकुल हो जायेंगी? मरेंगी? नहीं-नहीं। हम तुम्हें कलंक लगाकर नहीं मरेंगी।

पर विरहमें पीड़ा कितनी होती है! श्रीकृष्णके विरहमें क्या दशा हो रही है हृदय की? कि जैसे सम्पुटमें सोना पकाया, गलाया। जब सोना पानी-पानी हो गया न, तो जबतक वह गर्मागर्म रहेगा, तभी तक न वह पानी-पानी रहेगा! ठण्डा हो जायेगा तो फिर जम जायेगा। तो वह गर्मागर्म सोना जैसे किसीने पिला दिया हो। अब इसकी आग जैसे दिलमें लगती है, वैसे आग लगती है। विरह की! दुनियामें जितने तरहके जहर हैं, सब अगर इकट्ठा करके किसीको पिला दिये जायँ, तो उसकी जो दशा होगी, वह छटपटी, वह व्याकुलता कृष्णके विरहमें होती है। और किसीके हृदयमें वज्र मार दिया जाये तो वज्र लगनेपर कितनी पीड़ा होगी! देखो न, अपने हृदयमें भगवान्‌के विरहमें कभी पीड़ा होती है? कभी उनके लिए चार बूँद आँसू निकलते हैं? कभी कण्ठमें उत्कण्ठा आती है? कभी हृदय बढ़ता-घटता है कृष्णके लिए? कभी कृष्णके विरहमें शून्यता आती है चित्तमें? जब विरह तुम्हें दुःख नहीं देता है, तो कृष्णके मिलनमें सुखका अनुभव भी कहाँ से होगा? जिसके विरहमें दुःख नहीं होता, उसके मिलनमें सुख भी नहीं होता। खाते हैं, पीते हैं, सोते हैं, मस्ती करते हैं। ईश्वरका विरह किसको व्याप्त है?

तो गोपियाँ कैसी हैं? उनका एक-एक रोम व्याकुल है, एक-एक रग फट रही है। एक-एक अंग टूट रहा है। मनकी एक-एक वृत्ति

दुःखसे व्याकुल हो रही है श्रीकृष्णके वियोगमें। गोपियाँ कहती हैं— कृष्ण। छोटे-छोटे दुःखोंसे तो तुमने बचाया, तो क्या इसी दिनके लिए बचाया था?

कई लोग बकरा पालते हैं। खूब खिलाते हैं? मोटा करते हैं। कुत्तेको उसके पास नहीं जाने देते, भेड़ियेसे बचाते हैं। काहेके लिए? कि एक दिन हम खुद इसको अपने हाथसे मारेंगे। तो क्या इतने-इतने दुःखोंमें, इतनी-इतनी विपत्तियोंमें तुमने जो हमको बचाया था—वह आजके दिन अपने हाथोंको रँगनेके लिए? बारम्बार तुमने हमारी रक्षा की है। इसलिए श्रीकृष्ण, इस समय भी तुम हमारी रक्षा करो।

बोले—बाबा! जब तुम मरनेपर ही उतारू हो, तो तुम्हारी रक्षा कोई नहीं कर सकता।

देखो, प्रेममें हमेशा मीठी-मीठी बात नहीं होती। कभी-कभी कड़वी बात भी होती है। क्यों? कि हमेशा लोग हलवा थोड़े ही खाते हैं। कभी-कभी करेलेका साग भी तो खाते हैं न! रोज-रोज खीर खाओ तो कैसा लगेगा? गुजरातमें, काठियावाड़में बिना मिर्चके लोगोंका भोजन होवे ही नहीं। उनको तो रोज मिर्च चाहिए थोड़ी। तो जैसे शरीरके लिए थोड़ा मिर्च, थोड़ा गुड़ रोज चाहिए, वैसे ही दिलके लिए भी थोड़ा गुड़ और थोड़ी मिर्च—दोनोंकी जरूरत होती है। ये जितने मकारवाले हैं न, यह मद्रास है, मारवाड़ है, महाराष्ट्र है, इन लोगोंकी मिर्चके बिना नहीं चलती है। मिर्चकी प्रधानतासे ही इन लोगोंके नामके साथ 'म' जोड़ा गया है।

तो दिलके लिए भी गुड़ और मिर्चकी जरूरत होती है। कड़वी-कड़वी बात करनेसे जो दिलमें बात छिपी रहती है न, वह बाहर निकल आती है। और प्रेममें कितना धैर्य है, कितनी गहराई है—इसका भी पता चल जाता है।

तो मानो कृष्ण उनके सामने प्रकट हुए और बोले—कि गोपियो!

जब तुम मरनेपर ही उतारू हो, तो अब हम तुमको क्या बचा सकते हैं? अब मरो!

गोपी बोलती है—नहीं-नहीं। तुम हमको बचा सकते हो।

—कैसे बचा सकते हैं?

—कि तुम गोपिका-नन्दन नहीं हो, तुम ईश्वर हो।

प्रेमियोंकी बातको कभी सच नहीं मानना। अगर तुम लोगोंका कोई प्रेमी हो और तुमसे कहता हो कि हमारे ईश्वर तो तुम्हीं हो, उसकी बातको सच्ची मत मानना। ये बिलकुल झूठ ही बोलते हैं। ये तो जैसे दक्षिणा पानेवाले पण्डित लोग हैं न; जिस राजा या सेठ की तारीफ करते हैं, उसको बोलते हैं—**दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा**। यह दिल्लीका मालिक है अथवा जगत्‌का मालिक है। तो दक्षिणा लेने वाले पण्डित लोग जैसे किसी भी जजमानको ईश्वर-रूप बोलते हैं, वैसे ही ये स्वार्थ साधन करने वाले जो प्रेमी लोग होते हैं न झूठे, वे कहें कि बस! हमारे ईश्वर तो तुम्हीं हो। जैसे साधुओंमें आकर 'मण्डलेश्वर' शब्द सर्वतोमुखी हो गया है। चाहे जिसको मण्डलेश्वर बोल दें। वैसे ही महाराज! प्रेमियोंमें आकर 'हृदयेश्वर' और 'प्राणेश्वर'—ये सब शब्द बिलकुल दो-दो कौड़ीके बाजारमें बिकने लग गये हैं। तो वह लड़की मूर्ख है, जो हृदयेश्वरी, प्राणेश्वरी कहनेपर अपनेको बेच देती है, और वह लड़का मूर्ख है जो हृदयेश्वर, प्राणेश्वर कहनेपर अपनी जिन्दगी मिट्टीमें मिला देता है। ये प्रेमी लोग तो अन्धे होते हैं। उनका यह भाव टिकाऊ भी नहीं होता। ईश्वरका भाव सचमुच ईश्वरमें टिकाऊ होता है।

कहते हैं, किसी सम्प्रदायके आचार्य थे। वे अपनेको कृष्ण कहते थे, मुरलीधर, मुरलीमनोहर। पीताम्बर भी पहनें, बाँसुरी भी लें, नाचें भी, रास भी करें। एक पण्डित उनके साथ था। उसने कहा—महाराज! मैंने सुना है कि आप साक्षात् कृष्ण हैं! बोले—हाँ, हैं। वह बोला—महाराज!

यह सब काम तो आप बहुत बढ़िया कर लेते हैं कि पीताम्बर भी अच्छा पहनते हैं, बाँसुरी भी अच्छी बजाते हैं, नाचते भी अच्छा हैं। श्रीकृष्ण भगवान्‌ने गोवर्धन पहाड़ उठाया था; यह बात सच्ची है कि झूठी है? तो बोले—है तो सच्ची। तो बोले—उन्होंने गोवर्धन उठाया था। आप चलकर एक चट्टान ही जरा उठाकर दिखा दीजिए। अब महाराज, वे बनावटी कृष्ण तो 'हैं, हैं' करने लगे।

तो ऐसे काम नहीं चलता है। देखो, दुनियामें फँसनेवाले कौन हैं? संसारी ही तो हैं। और कितने संसारी जहाँ तहाँ नहीं फँसे हैं। अगर वे अपनी फँसावटको ही शुद्ध प्रेम कहने लगें और अपनेको, और दूसरेको धोखा देनेके लिए अपने फँसनेकी जगहको ही ईश्वर कहने लग जायें, तो यही मानना पड़ेगा कि उनके हृदयमें ईश्वर प्राप्तिकी कोई व्याकुलता, कोई इच्छा नहीं है। असलमें वे ईश्वरतक नहीं पहुँचना चाहते हैं। वे तो दुनियामें ही कहीं फँस जाना चाहते हैं। तो इस बातको ध्यानमें रखकर आगे बढ़ना चाहिए।

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिल-देहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तयो सख उदेयिवान् सात्वतां कुले॥ ४॥

अद्भुत हो तुम! **न खलु गोपिकानन्दनो भवान्**—प्यारे श्यामसुन्दर! आप केवल गोपिका यशोदाके बेटे नहीं हो। हम आपको जानते हैं, पहचानते हैं। जब अपने प्रियतमका सच्चा विरह होता है न, उसका एक लक्षण आपको बताते हैं।

ये जो संसारके लोग कहते हैं, कि हमें तुमसे प्रेम है, तुमसे प्रीति है। तो उसकी प्रीति असलमें कहाँ है-इसको पहचानना पड़ेगा न! उसका हमसे प्रेम नहीं है। तुम्हें संसारमें धनके लिए, स्त्रीके लिए, पुत्रके लिए, परिवार, इज्जत, प्रतिष्ठाके लिए दुःख होता है। अरे, इतना बड़ा दुःख तो सिरपर आया हुआ है—कि हम ईश्वरसे बिछुड़े हुए हैं। अब कौन-सा ऐसा दूसरा दुःख आ गया कि उसके लिये तुम दुःखी होते हो? और यह

जो इतना बड़ा दुःख है, यह तुमको भूल गया। इससे तुम दुःखी नहीं हो रहे हो, दुःखी हो रहे हो दुनियाकी छोटी-छोटी चीजोंके लिए।

अपने प्रेमको पहचानना पड़ता है। तुम देखो, तुमको सुख कहाँ मिलता है? धन मिलनेसे सुख मिलता है, कि इज्जत मिलनेसे सुख मिलता है, कि ऊँची कुर्सी मिलनेसे सुख मिलता है? कि पति-पुत्रके मिलनेसे सुख मिलता है, कि खिलाने-पिलानेवाले भक्तसे सुख मिलता है? जब अपने प्राण-प्रियतम परमेश्वरकी, श्रीकृष्णकी चर्चा हो, उनका गुणानुवाद हो, उनका नाम हो, उनकी याद आवे, उनके सम्बन्धसे सुख हो—तब तुम्हारा प्रेम है भगवान्से। और उनके सम्बन्धके सिवाय भी दूसरे सम्बन्धसे जब तुम्हें सुख मिलता है, तो ईश्वरसे प्रेम कहाँ? ईश्वरके सम्बन्धके सिवाय मिलता है सुख, और ईश्वरसे बिछुड़े रहनेपर भी दूसरी चीजोंका होता है दुःख! यह तो कोई प्रेमका लक्षण नहीं है।

तो गोपियाँ पहचानती हैं कि कृष्ण सचमुच परमेश्वर हैं। **न खलु गोपिकानन्दनो भवान्।** जिसके अंग-अंगमें शोभा छलकती रहती है, उसको भवान् बोलते हैं **भान्ति इति भान् नक्षत्रान्।** आकाशके जो हीरे हैं, चमकते हैं न सफेद-सफेद, उनका नाम है भ। और **भानि सन्ति अस्य इति भवान्** जिसके अंग-अंगमें क्षण-क्षण रंग बदलनेवाली छवि छलकती रहती है—लावण्यधाम, वह चटपटी मसालेदार छटा जिसके शरीरपर दौड़ती रहती है, जिसको पीकर आँखें कभी अघाती नहीं, जिसको सूँघकर नाकको कभी तृप्ति होती नहीं, जिसको पीकर जीभ कभी तृप्त नहीं होती, जिसको छूकर त्वचाकी प्यास कभी बुझती नहीं-वह प्राणप्यारा श्यामसुन्दर!

*

: ७ :

न खलु गोपिकानन्दनो भवान् विश्व पालनाय अवतीर्णस्य तव भक्तोपेक्षा अत्यन्तमनुचितम्।

विश्वकी रक्षा करनेके लिए तो तुम प्रकट हुए हो और अपने प्रेमी भक्तोंकी उपेक्षा कर रहे हो। यह तो सर्वथा अनुचित है। इस आशयको कोई भोली-भाली गोपी प्रकट कर रही है।

जहाँ भगवान्‌को आत्माके रूपमें जानते हैं, वहाँ दीनताके लिए कोई अवकाश नहीं होता। जहाँ भगवान्‌को अपना बच्चा जानते हैं, वात्सल्य होता है—वहाँ भी दीन होनेकी कोई आवश्यकता नहीं। अपना मित्र जानते हैं तो बराबरी भी हाँकते हैं। शृंगार रसका प्रसंग हो, तब तो रूठ जाते हैं, डाँट देते हैं। दीनताका भाव केवल वहाँ होता है, जहाँ स्वामी और सेवकका सम्बन्ध होता है। परन्तु जब विरहकी मार पड़ती है, तब बड़े-बड़े लोग सीधे हो जाते हैं। टेढ़े लोगोंको सीधा करनेका यही उत्तम मार्ग है। गोपियाँ थोड़ी टेढ़ी पड़ गयीं थीं। उनकी आँखें अपनी ओर थीं। सामने भगवान् खड़े और वे उधर न देखकर अपनी ओर देखें कि हम कितनी सुन्दर हैं। तब भगवान् बोले—कि अब तुम्हारी आँखके सामने रहनेसे क्या फायदा, जब तुम मेरी ओर नहीं, अपनी ही ओर देखती हो? किसीके घर गये, तो महाराज! शीशा ही लेकर सामने बैठ गये। अब वे दिन भर शीशा देखें। तो उसके घर रहनेसे फायदा? शीशेमें तो वे अपनेको देखेंगे। भगवान् अपने घरमें हों, अपना प्रियतम, अपना प्रभु अपने घरमें हो तो दूसरेसे प्रेम करना व्यभिचार है। परन्तु दूसरेसे प्रेम न होकर अगर अपने ऊपर नजर जमी रहे, तब भी तो प्रेमका अभाव हो गया न! दूसरेसे प्रेम होना तो विपरीत भाव है, व्यभिचार है, लेकिन दूसरेसे प्रेम न भी होवे, सिर्फ अपने-ही-अपनेसे होवे—तो यह प्रेमका अभाव हो गया।

तो भगवान् अंतर्धान हो गये। अब अंतर्धान हो गये, तो विरह आया। विरह आघात करता है, तो विरहकी चोट पड़ती है। सोनेमें तबतक शक्ल नहीं बनती, जबतक उस पर हथौड़े न चलायें, जब तक उसको आँच न लगे। गरम हो या हथौड़े पड़े, दो ही तरहसे तो सोनेमें शक्ल बनती है। अपने हृदयको भगवदाकार बनानेके लिये—कि उसमें भगवान्की शक्ल आ जाय, या तो उसको विरहकी आगमें जलाना पड़ता है और या उसको विरहके हथौड़ेसे पीट-पीट करके ठीक करना पड़ता है। तब मनुष्यका हृदय भगवान्के आकारको स्वीकार करता है। जबतक आँखमें आँसू न आवें, शरीरमें रोमांच न हो, कण्ठ गद्गद न हो, हृदय पिघले नहीं, कैसे भगवदाकारता हृदयमें आवे?

कथं विना रोमहर्षं द्रवता चेतसा बिना।
विनानन्दाश्रु-कलया शुद्ध्येव भक्त्या विनाशयः॥

हृदयमें बहुत-सी शक्लें पहलेकी बनी हुई हैं न। धूपकी परछाइयाँ बहुत-सी दीखती रहती हैं। उन परछाइयोंका दीखना कैसे बन्द हो! दिलमें जो अन्धेरा है, उसको मिटा दिया जाय; एक रोशनी आवे। तो जब यह विरहका सूर्य प्रकट होता है, तो हृदय द्रवित होकर भगवान्के आकारको उनकी शक्ल-सूरतको अपने हृदयमें बैठा सकता है। यह भक्तिका विज्ञान है। भक्तिका यही विज्ञान है कि प्रेम हलका होगा, तो चलो, हमेशाके लिए एक इल्लत करी। और अगर प्रेम पूरा होगा तो वह जिन्दगीको गढ़ देगा।

गोपियोंने कहा कि हमारी उपेक्षा मत करो! ये अहीरके बालक थोड़े अलग होते हैं। आप लोगोंका ग्वालोंसे शायद काम न पड़ा हो, दूध देने कभी आते रहे हों। अब तो वह भी नहीं है। हम लोग गाँवमें रहते हैं न! अहीरोंका स्वभाव अन्य जातियोंसे थोड़ा पृथक् होता है। उनकी ऐंठ भी जुदा होती है, उनके लगाव भी जुदा होते हैं, उनकी शान भी जुदा होती है। अगर तुम केवल ग्वाले होते और हमारे साथ कठोरताका

व्यवहार करते, तो उसकी एक संगति थी। हम यह कहते—बाबा! यह गाँवका अहीर, यह गाँवका ग्वाला! यह क्या जाने प्रेम, जिसके लिए गोपियोंके हृदयमें इतनी तड़प, इतनी व्याकुलता है। तुम तो ईश्वर भी हो, **न खलु गोपिकानन्दनो भवान्।**

प्यारे श्यामसुन्दर! तुम केवल यशोदा मैयाके लाड़ले लाल, केवल ग्वाल, केवल अहीर नहीं हो। वे तो कहती हैं—***कढ़िगो अबीर पै अहीर को कढ़ै नहीं।*** हौलीमें अबीर पड़ गयी आँखमें। कृष्णने एक मुट्ठी अबीर डाली आँखमें। बड़ा दर्द हुआ। गोपीने धो-धाकर आँखको साफ किया, बोली—जो अहीरका बेटा आ गया था आँखमें, वह नहीं निकला; अबीर तो निकल गया।

तुम केवल गोपिकानन्दन नहीं हो। कहनेका अभिप्राय? केवल गोपिका-नन्दन होते और हमारे दिलको न समझते, तो हम यह कहते—कि चलो! गायका चरवाहा! उसने कब प्रेमका सौदा किया है? उसे क्या पता, कि गोपियोंके दिलमें क्या-क्या फुरता है और तुम हमें जो तकलीफ दे रहे हो, वह अनजानमें दे रहे हो। अनजानमें अगर कोई थोड़ी बहुत तकलीफ दे दे, तो उसका ख्याल नहीं किया जाता, लेकिन तुम तो हमें जानबूझकर तकलीफ दे रहे हो। यह ठीक नहीं है।

भवान् अखिलदेहिनाम् अन्तरात्मदृक्। आप तो साक्षात् भगवान् हो, वह चन्द्रमा हो, जो नक्षत्रोंसे जुड़ा रहता है। चन्द्रमाको 'भवान्' बोलते हैं, यानि **नक्षत्राणि तद् भवान्**—नक्षत्रोंसे घिरे हुए चन्द्रमा। तो नक्षत्रोंमें आपसमें सौतियाडाह नहीं होता। सत्ताईस नक्षत्र चन्द्रमाको घेरे रहते हैं और चन्द्रमा जो है, वह सवा दो-दो दिन करके सत्ताईस दिनोंमें बारह राशियोंपर रहते हैं और सत्ताइसों नक्षत्रोंके घरोंमें जाते हैं। तो गोपियाँ कहती हैं—हम लोगोंमें आपसमें कोई सौतियाडाह नहीं है। तुम तो चन्द्रमाके समान हो।

गोपिकानन्दन—देखो, इस शब्दका एक अर्थ तो है गोपिकाके बेटे और दूसरा अर्थ है **गोपिका-आनन्दन** गोपियोंको आनन्द देने वाले। गोपियाँ कहती हैं, आप हैं तो गोपिकानन्दन, लेकिन कृपण, कंजूस भी हैं। वह कैसे?

बनारसकी एक बात आपको सुनाता हूँ। बनारसमें एक सज्जन थे। अभी उनके नामसे एक गली प्रसिद्ध है—नन्दनशाहकी गली, ठठेरी बाजार और लक्खी चौतरा को मिलानेवाली गली है। एक ब्राह्मण आया। उसने सुना था कि सेठजी बड़े उदार हैं, दाता हैं। वह ब्राह्मण लड़कीकी शादीके लिए कुछ पानेके लिए आया था। जब भी सेठजीके पास जाये, तो वे कह दें—कल आना। बिचारा ब्राह्मण, बनारसमें ठहरनेकी जगह नहीं, खानेकी व्यवस्था नहीं। छह महीने बीत गये। निराश होकर एक दिन वह एक श्लोक बोला—

आदौ नकारः परतो नकारः मध्ये नकारेण हतो दकारः।
इत्थं नकारत्रयसंयुतस्य का दानशक्तिर्खलु नन्दनस्य॥

आदौ नकारः—नन्दनके आरम्भमें न, **परतो नकारः** अन्तमें भी नकार है—न न। और **मध्ये नकारेण हतो दकारः**—बीचमें एक 'द' था—देनेका, उसमें भी न जुड़ गया—**नन्दन। इत्थं नकारत्रय संयुतस्य**—जब तीन-तीन नकार जुड़ गये बाबा, तो **का दानशक्तिः खलु नन्दनस्य**—तो यह नन्दन बिचारा क्या देगा? सात्त्विक दानको तमोगुणी बना देने वाले दाता हमने देखे हैं। वे देते हैं—कि जा-जा-जा-जा! और चार आना पैसा डाल दिया। चार आने तो घर से गये, और माँगने वालेका तिरस्कार करनेके कारण वह बिलकुल तमोगुणी हो गया। यदि चार आने देनेका पुण्य हुआ, तो समागत अतिथिका, माँगनेके लिए आये हुए अतिथिका तिरस्कार करनेका पाप भी तो लग गया न!

यह गोपिकानन्दन जो हैं, इनमें भी उतने ही नकार हैं, जितने नन्दन शाहमें हैं। शृंगार-रसकी यह एक युक्ति है—**वामता दुर्लभत्व निवारणा।**

ये तीन गुण कामदेवके हैं, वामता माने उल्टे चलना, बुलाओ तो भाग जायँ, दुर्लभत्व माने दुर्लभ होना, दुर्लभके प्रति प्रेम ज्यादा होता है और निवारणा, माने रोकना। ये तीनों बातें होनी चाहिए थीं गोपियोंमें, लेकिन गोपियाँ तो खुद ही कृष्णसे मिलनेके लिए आगयीं। कृष्णको ही ये तीनों बातें स्वीकार करनी पड़ीं। क्या? कि उल्टे पड़ जाना, दुर्लभ हो जाना और गोपियोंसे कहना—कि हट जाओ हमारे सामनेसे। तीनों बातें जो गोपियोंको करनी चाहिए थीं, वे कृष्णको करनी पड़ीं। तो बहुत दक्षिण भाव होनेके कारण, बहुत अनुकूलताके कारण यहाँ शृंगार रस पलटा खा गया।

गोपियाँ कहती हैं—कि कृष्ण! तुम हमारे साथ उदारता बरतो, क्योंकि तुम केवल ग्वाले नहीं हो, गोपिकानन्दन नहीं हो। हम सब गोपियोंको क्या आनन्द दे रहे हो? या तुम जसोदा मैयाके बेटे नहीं हो।

—तब कौन हैं?

—बोले—**अखिलदेहिनाम् अंतरात्मदृक्**। संसारमें जितने प्राणी हैं, उनके तुम अंतरात्मा हो और **दृक्** माने साक्षी हो। **पश्यति इति दृक्**। कई शब्द ऐसे होते हैं कि जब वे अपने रूपमें आते हैं, तो अपने पुराने रूपको बिलकुल ही छोड़ देते हैं। 'अहं' शब्द है न, यह जब 'आवाम्' बनता है, 'वयम्' बनता है और 'त्वां' का 'युवाम्' बनता है तो बिचारे 'अस्मत्' और 'युष्मत्' इन दोनोंका तो लोप ही हो जाता है। माने जब मैं-तुम-हम—ये रूप जब आत्मा ग्रहण करती है, तो उसके असली स्वरूपका लोप हो जाता है। ऐसे ही शब्दोंमें-से 'दृक्' शब्द भी है। बनता है 'पश्यति', और होता है 'दृक्'। जैंसे आकाश है न! यह बड़ा विशाल है और अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड और तारा, ग्रह, नक्षत्र—सब इसके भीतर पड़े हैं। लेकिन जब यह आँखके व्यवहारमें आता है तो नीला होकर दिखायी पड़ता है। नीलापन सच्चा नहीं है। इसी प्रकार परमात्मा जब व्यवहारमें आता है तो औरत बनकर दिखता है, मर्द बनकर दिखता है, बच्चा बनकर दिखता है, पति-पत्नी बनकर दिखता है। जैसा है, उससे बिलकुल अलग

दिखायी पड़ता है। लेकिन पहचाननेवाले लोग जानते हैं कि ऐसा होनेपर भी यह परमात्मा है। जन्म लेनेवाला मालूम पड़ता है, लेकिन है अजन्मा। मरनेवाला मालूम पड़ता है, लेकिन है अमृत। परिच्छिन्न दिखायी देता है, लेकिन है पूर्ण। साकार देखनेमें मालूम पड़ता है, लेकिन है निराकार। ये परमात्माजी जो हैं, ये जैसे हैं, वैसे व्यवहारमें दिखायी नहीं पड़ते।

ये रहते हैं सबके दिलमें—**अखिल देहिनाम्**। ऐसी कोई देह नहीं है, जो परमात्मासे खाली हो। वे अंतरात्मा, अन्तर्यामी भी हैं, संचालक भी हैं और सबके भीतर रहकर देखनेवाले भी हैं। गोपियाँ कहती हैं कि जब तुम सबके हृदयमें रहते हो, तो हमारे हृदयमें रहते हो कि नहीं? और सबके दिलकी देखते हो तो हमारे दिलकी देखते हो कि नहीं? तो **दैत्य दृश्यताम्**—देखो! तुम्हारे लिए हमारा हृदय कितना व्याकुल है। हमें कितनी पीड़ा है, कितना दुःख है!

—री गोपियों! हम तुम्हारे हृदयमें अंतर्यामी रूपसे भी हैं, द्रष्टा रूपसे भी हैं। सब देखते भी हैं, जानते भी हैं। लेकिन हम करेंगे कुछ नहीं। जब जो ठीक समझेंगे, तब वह करेंगे, समयपर करेंगे। ऐसा थोड़े ही है, कि जान लिया और आगमें कूद पड़े।

हम पुलिसके सिपाहियोंको देखते हैं। जब कहीं लड़ाई होने लगती है तो मुँह फेरकर खड़े हो जाते हैं। जब थोड़ी ठंडी होती है या चार जने, दस जने इकट्ठे हो जाते हैं, तब जाकर बीचमें पड़ते हैं, तुरन्त नहीं पड़ते। एक बार मैं बम्बईमें था। हिन्दू-मुसलमानोंका दंगा हो रहा था, उन दिनोंकी बात है। सन् ३४-३५की होगी। तो दादी सेठ अग्यारी लेनमें लोग दुकानें लूटते थे। हम लोग खड़े-खड़े देखते रहते थे और पुलिस दूसरी तरफको मुँह करके खड़ी रहती थी। जब वे लूट-मार कर चले जाते, तब सीटी बजती थी, पुलिस इकट्ठी हो जाती थी। तो यह थोड़े ही है कि किसीका दुःख देखकर तुरन्त उस दुःखमें कूद पड़ें। अरे भाई! जब मौका होता हैं, तब कूदा जाता है।

कृष्णने कहा—अभी तो तुम्हारे घरमें आग लगी है। बहुत व्याकुल हो, गोपियो। मैं जानता तो हूँ कि तुम्हें बड़ा दुःख है, लेकिन अभी तुम्हारे पास आनेका मौका नहीं है।

—बाबा! आये तो तुम संसारमें इसीलिए हो—**विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सखे उदेयिवान् सात्वतां कुले।**

विखनसा ब्रह्मणा अर्थिता ब्रह्माजीने प्रार्थना की थी। विखना माने ब्रह्मा। **विशेषेण खनति वेदार्थमिति विखना ब्रह्मा**—जो वेदके अर्थको खोद खोदकर निकाले, उसका नाम होता है विखना। एक वैखानसागम है। उसमें यह बतलाया गया है कि भगवान्‌की पूजा कैसे करनी चाहिए। यह जो रामानुज सम्प्रदाय है न, श्री वैष्णव सम्प्रदाय उसमें वैखानस ब्रह्मत्वके अनुसार पूजा होती है। ये तीन प्रकारके आगम हैं। मध्व सम्प्रदायमें नारायणोक्त सम्प्रदायके अनुसार पूजा होती है। इसी प्रकार शांकर सम्प्रदायकी पूजा अलग होती है। ब्रह्माके, नारायणके और शिवके ये तीन प्रकारके आगम हैं। तो ब्रह्माकी प्रार्थनापर तुम आये हो यहाँ। और **विश्वरक्षये**—विश्वकी रक्षा करनेके लिए आये हो। तो क्या हम विश्वमें नहीं हैं? हमारी रक्षा करना तुम्हारा धर्म नहीं है? हम तुम्हारे वियोगमें मर जायँ तो क्या तुम हमारी रक्षा नहीं करोगे?

बोले—अरी गोपियो! किसने कह दिया तुमसे कि हम अंतर्यामी हैं और द्रष्टा हैं और ब्रह्माकी प्रार्थना करनेपर आये हैं? और विश्वकी रक्षा करनेके लिए आये हैं?

बोलीं—हमको यह भी पता है कि तुम्हारा जन्म गोपकुलमें नहीं हुआ है। **सात्त्वतां कुले**—तुम तो यदुवंशियोंके कुलमें पैदा हुए हो, यदुवंशियोंके, भक्तोंके कुलमें। और मथुरामें पैदा हुए हो।

देखो, **भवान्** और **उदेयिवान्**। भवान् माने चन्द्रमा हुआ, इसीलिए उदेयिवान क्रियाका प्रयोग किया है। जैसे चन्द्रमाका उदय होता है, वैसे

ही तुम्हारा भी उदय हुआ है। दूसरोंका संताप दूर करना, यह तुम्हारा काम है।

अच्छा लो! अब दूसरी बात सुनाते हैं। इन सब बातोंमें-से वेदान्त भी निकलता है, लेकिन वह मैं नहीं सुनाता हूँ। क्यों नहीं सुनाता हूँ? कि जब हम उपनिषद् तथा गीताकी कथा करते हैं, तो उसमें वेदान्त सुनानेका बहुत मौका रहता है। अब ऐसे प्रेमके प्रसंगमें व्याकरण और उपनिषद्के मंत्रोंके बलसे तत्त्वज्ञानकी बात निकाल लेना, काहेको इतना जोर लगाना, जब बिना जोर लगाये ही जगह-जगह वेदान्त निकलता रहता है!

अब देखो! एक गोपी बोलती है, उसकी बातपर ध्यान दो। वह कहती है—देखो कृष्ण! तुम छिप गये, सो तो ठीक है। लेकिन एक कलई आज तुम्हारी खुल गयी। एक बात मालूम पड़ गयी। क्या? कि तुम जसोदा मैया के बेटे नहीं हो!

—क्यों?

—कि जसोदा मैयाके हृदयमें बड़ी दया है, बड़ी ममता-माया है। अगर तुम उसके बेटे होते तो हम लोगोंको इतने दुःखमें पड़ी देखकर दौड़े आते और बचाते।

—अरी गोपियो! ऐसा काहेको कहती हो? देखो, मैं तुम लोगोंको इतना आनन्द देता हूँ। जब मैं तुम्हारे सामने आता हूँ, तो तुम्हारी आँखें खुली-की-खुली रह जाती हैं। किसीकी नजर बड़ी तेज लगती है, जानते हैं कि नहीं?

एक बार मैं जब बच्चा था नौ बरसका, तो किसीके ब्याहमें अभिषेक बोलने गया। जब मैं बोलने खड़ा हुआ—गणपते गिरिजा—तो किसीने कहा—बहुत बढ़िया! और ज्यों ही उसने कहा—बहुत बढ़िया उसी समय हमारा गला बन्द हो गया। बोलती बन्द हो गयी। नजर लग गयी। ऐसे श्रोताओंमें भी कभी-कभी नजर लगानेवाले लोग बैठे रहते हैं, कथा बन्द हो जाती है!

तुम गोपिका-नन्दन नहीं हो। क्यों? कि जो गोपीकुमार होगा, वह गोपीकुमारीसे प्रेम करेगा। अपने सजातीयको कष्ट नहीं देगा। तुम तो हम गोपियोंको कष्ट दे रहे हो।

तो बोले—हाँ गोपियो! यह तो तुमने बहुत बढ़िया कहा। अब जैसे एक गोपीके मनमें श्रीकृष्ण आगये हों। वे बोले—मैं सचमुच गोपिका-नन्दन नहीं हूँ। मैं तो सबके हृदयमें बैठा हुआ अन्तर्यामी हूँ, द्रष्टा हूँ, ब्रह्म हूँ। असंग हूँ, उदासीन हूँ। ये जितने नाम हैं न महात्माओंके, स्वामी असंगानन्दजी महाराज, स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज, ये जो असंग हैं, अखण्ड हैं—ये सब परमात्माके स्वरूपके बोधक हैं। हम तो सबके हृदयमें बैठे हुए हैं।

तो गोपियोंने कहा—**न खलु भवान् अखिल देहिनाम् अंतरात्मदृक्।** तुम क्यों झूठ बोलते हो? हम जानती हैं कि तुम अन्तर्यामी नहीं हो, द्रष्टा भी नहीं हो और ब्रह्म भी नहीं हो।

—अरे बाबा, क्यों?

गोपियाँ तो आँख बन्द करके गीत बोल रही हैं न! तो उनके मनमें कृष्ण आते हैं, थोड़ी बातचीत हो जाती है। मन-ही-मन झड़प हो जाती है। बोलीं, कि अगर तुम अन्तर्यामी होते, द्रष्टा होते तो कबके पिघल गये होते! अगर हमारे हृदयमें होकर वह अंतर्यमन करता, तो द्रष्टा दृश्य बन गया होता। हम इतनी दुःखी हो रही हैं और तुम अन्तर्यामी टुकुर-टुकुर देखते हो?

भगवान्‌ने कहा—अरी गोपियो! क्या तुमको मालूम है कि ब्रह्माजी पृथिवीको लेकर, देवताओंको लेकर, रुद्र भगवान्‌को लेकर क्षीरसागरके तटपर प्रार्थना करनेके लिए गये थे—कि हे हे प्रभु! अवतार लो, अवतार लो। मैं अवतार लेकर आया हुआ ईश्वर हूँ और तुम मेरी शानके खिलाफ न जाने क्या-क्या बोलती रहती हो!

यह प्रेम जो है, यह बड़ा प्रबल है। यह ईश्वरसे भी बड़ा होता है।

देखो, सारी दुनिया को ईश्वर नचाता है, लेकिन ईश्वरको कौन नचाता है? प्रेम नचाता है। सारी दुनियाका वजन ईश्वर ढोता है। लेकिन ईश्वरको फूलकी तरह अपने कलेजेमें बिठाकर कौन ढोता है? प्रेम ही तो ढोता है न! तो ईश्वरसे बड़ी चीज अगर दुनियामें कोई है तो वह प्रेम है। उसकी पहली चोट पड़ी गोपिका-नन्दन पर और दूसरी पड़ी अंतर्यामीपर। और तीसरी! बोले—ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर मैं आया हूँ। तो गोपी बोली—नारायण कहो! ब्रह्माजीने क्यों तुमसे प्रार्थना की थी? क्या उनके घरमें कोई चोरी हो गयी थी? क्या तकलीफ थी ब्रह्माजीको, कि तुमसे प्रार्थना करनेके लिए चले गये?

बोले—**विश्वगुप्तये**। दुनियाकी रक्षाके लिए। विश्व माने दुनिया और गुप्त माने रक्षा। ब्रह्माजीने प्रार्थना की, तब मैं आया हूँ।

गोपियोंने कहा—बिलकुल सरासर झूठ है यह बात। यदि ब्रह्माने विश्वकी रक्षाके लिए प्रार्थना की होती, तो क्या हम लोग विश्वमें नहीं हैं? और हमारी रक्षा तुम न करते? तो हमारी रक्षा नहीं करते हो, इससे मालूम पड़ गया कि तुम रक्षा करनेके लिये नहीं आये हो! **बल्कि अविश्वगुप्तये, न खलु, ब्रह्म बिखनसार्थितो न खलु विश्वगुप्तये**। यह संस्कृत भाषाकी विशेषता है, कई तरहसे एक ही शब्दका अर्थ निकल आता है।

गोपियाँ बोलीं—हमको एक बात तो लगती है, कि ब्रह्माने सोचा होगा कि संसारके लोग यदि शम-दम आदि सम्पत्तिसे सम्पन्न होंगे और महात्माओंका संग करेंगे, जिज्ञासा करेंगे, तत्त्वमसि आदि महावाक्योंका विचार करेंगे, तो सब मुक्त हो जायेंगे। जब सब मुक्त हो जायेंगे तो हमारी बनी-बनायी सृष्टि बिगड़ जायेगी। तो तुमको महाराज, प्रार्थना करके उन्होंने लाकर बैठा दिया होगा—कि तुम किसीको दुनियामें शान्तिसे नहीं रहने देना। किसीका इन्द्रिय-संयम नहीं होने देना, किसीके मनमें मोक्षकी इच्छा मत होने देना, जिज्ञासा मत होने देना। किसीको गुरुके पास मत जाने देना। बाँसुरी बजा-बजाकर, नाच-नाचकर, गा-गाकर

लोगोंको दुनिया में लुभाए रखना, जिससे लोग जन्म-मरणके चक्करमें पड़े रहें। तो बस! अगर तुम ब्रह्माजीकी सृष्टि बचानेके लिए आये हो, तो यही बात होगी—कि लोग मोक्ष न चाहें।

वह कथा आती है न! एक दिन व्रजभूमिमें आकर नारदजी महाराजने देखा वहाँका सुख, वहाँका आनन्द! तो बैठकर रोने लगे। जमुनाजी बह रही हैं, वह सुन्दर पुलिन है, वह लता है, वह वृक्ष है! व्रजमें अपने आप जो लोग जाते हैं न, उनको कुछ नहीं मालूम पड़ता। उनको तो सूखा बालू मिले, खारा पानी मिले और गर्मी मिले। और वहाँसे लौट आयें वे। निगुरा लोगोंके सामने व्रजका स्वरूप जो है न, वह प्रकट नहीं होता है। नारदजी व्रजमें आकर एक तरफ बैठकर रोने लगे। ललिताजी ने पूछा, कि क्यों नारदजी! कैसे रो रहे हो? व्रजमें आकर सब लोग सुखी होते हैं और तुम रो रहे हो? तो उन्होनें कहा कि हम उन लोगोंके नामपर रो रहे हैं जो अबतक मुक्त हो चुके हैं। क्योंकि अब न उनका देह रहा, न इन्द्रियाँ रहीं, न मन रहा, न वे रहे। अगर वे मुक्त न हुए होते और भगवान् श्रीकृष्णकी यह लीला देखते, तो मुक्तिकी इच्छा छोड़कर उनसे प्रेम करते न!

मुक्तिहि नोन सी खारी लागे। व्रजभूमिमें तो वह आनन्द है महाराज, कि वहाँ मुक्ति जो है, वह नमक सरीखी खारी लगती है। वहाँ तो—

मुक्ति भरे जहाँ पानी। सरसावें ब्रह्मज्ञानी॥

वहाँ तो मुक्ति पानी भरती है। वहाँ तो ब्रह्मज्ञानी थप्पड़ खाते हैं। यह व्रजका आनन्द, यह व्रजका रस! व्रजके रसिया लोग ऐसे बोलते हैं।

बोले—गोपियो! तुम तो सभी बातें उड़ाये जा रही हो। क्या मैंने अपने भक्तोंके वंशमें, यदुवंशमें—नन्दबाबाका वंश भी यदुवंश ही है—उसमें मैंने अवतार नहीं लिया है? क्या उसमें मेरा उदय नहीं हुआ है?

बोलीं—**न खलु भवान् सात्वतां कुले उदेयियान्।** यह बात भी नहीं हैं। तुम यदुवंशमें पैदा नहीं हुए हो।

—अरे नारायण! यह कैसे?

तो बोलीं—यदुवंशियोंका हृदय इतना कठोर नहीं होता है। कोई स्त्री इतनी व्याकुल हो रही हो तुमको पानेके लिए, और तुम जाकर अंधेरेमें छिपकर बैठे हो। अगर तुम यदुवंशी होते, भक्त-वंशमें पैदा हुए होते, तो दौड़कर आ नहीं जाते?

—अरी गोपियो! मैं गोपिकानन्दन भी नहीं हूँ, यदुवंशी भी नहीं हूँ, तो आखिर कुछ तो हूँ! मैं कहाँसे आ गया?

बोलीं—**न खलु भवान् सात्वतां कुले उदेयियान्**। तुम यदुवंशमें पैदा नहीं हुए हो। तुम तो आसमानसे टपक पड़े हो, ऐसा ही लगता है। यदुवंशमें तुम्हारा कोई माँ-बाप नहीं है, न गोपी-वंशमें तुम्हारा कोई माँ-बाप है। तुम तो बस, आकाशमें **खलु ख उदेयिवान्**। क्योंकि आकाश बड़ा परिपूर्ण है, उदासीन है, असंग है। वह किसीसे प्रेम नहीं करता है। तुम भी हो आकाशके समान नीले! आकाशके ही बच्चे मालूम पड़ते हो। नहीं तो तुम्हारे हृदयमें दया माया जरूर होती।

कृष्णने कहा—अच्छा गोपियो! जब मेरे बारेमें तुम्हारा ऐसा ख्याल है, तो फिर अब मैं नहीं आऊँगा तुम लोगोंके बीचमें।

कृष्ण आते नहीं हैं, न गोपियाँ कृष्णको देखती हैं। प्रेमीके मनमें जितनी उलझन होती है, जितनी उधेड़-बुन होती है, वह अपने प्रियतमके बारेमें होती है। अपने मनकी परीक्षा कर लेना। प्रेमियोंकी पंगतमें ऐसे ही मत बैठ जाना। तुम्हारा मन किसके बारेमें सोचता है? किसके बारेमें उधेड़-बुन करता है?

एक महात्मा व्रजमें जंगलमें जा रहे थे। पेड़ तो वहाँ ऐसे लटके हुए थे कि उनकी जटा किसी पेड़में उलझ गयी। तो खड़े हो गये वे, सुलझाई नहीं। दूसरे साधुओंने आकर देखा। कहा—महाराज, खड़े क्यों हो? सुलझा लो। बोले—न बाबा! हम तो नहीं सुलझायेंगे, कि आओ, हम सुलझा देते हैं। बोले—नहीं। हम भी नहीं सुलझायेंगे, तुम

भी नहीं सुलझावोगे। जिसने उलझाया है, वही सुलझावेगा। अब आने दो उसको! न खुद सुलझाया, न दूसरोंको सुलझाने दिया। एक दिन, दो दिन, तीन दिन, खड़े रह गये वे। अरे महाराज! एक झटके से पीताम्बर फहराता हुआ, मन्द-मन्द मुस्कुराता हुआ, वह मोरमुकुटवाला सामनेसे आया—कि अरे, बाबाजी बड़ा जिद्दी है। क्यों जटा अटकाकर बैठा है यहाँ? तो एक झटका मारा। जटाकी जो उलझन थी, वह सुलझ गयी। लेकिन अब बाबाजी जो हैं, वे बैठ गये। उनके मनमें क्या उलझन पैदा हुई—देखो! उधरसे आ रहा है तो वह! दाहिनेसे आवे तो वह! बायेंसे आवे तो वह! सामनेसे आवे तो वह! मनमें-से दुनियाँको निकालकर उसको भर लेनेके लिए इससे बढ़िया और कोई तरकीब ही नहीं है।

कृष्णने कहा, कि अब मैं जाता हूँ। अब नहीं मिलूँगा। गोपियोंने कहा—सखे! हम जो तुमसे बात कहती हैं, वह हम कोई ईश्वरसे बात नहीं कर रही हैं। हम तो अपने प्राणसखासे, अपने हृदयेश्वरसे बात कर रही हैं न! अगर हमारी बात सुनकर तुमको नाराज होना था, रूठ जाना था तो हमारे सखा क्यों बने?

खेलन में को काको गुसैयाँ?

जब खेलनेका अधिकार दे दिया तो इसमें मालिक और सेवकका भेद नहीं रहता है। अब हम छोटे और तुम बड़े नहीं।

न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक्।
विखनसार्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले॥

तीन प्रकारसे भगवान्‌को इस श्लोकमें देखा गया है। जो सच्चे प्रेमी हैं, वे तो भगवान्‌को गोपिकानन्दनके रूपमें जानते हैं। जो तत्त्वज्ञ हैं वे **अखिल देहिनां अन्तरात्मदृक्** के रूपमें जानते हैं और जो बिचारे ईश्वरके उपासक भक्त हैं, वे **विखनसार्थितो विश्वगुप्तये**के रूपमें जानते हैं। माने भगवान् श्रीकृष्ण अवताररूप हैं—यह एक दृष्टि है। वे ब्रह्मरूप हैं, यह

दूसरी दृष्टि है और वे श्यामसुन्दर नन्दनन्दन मुरलीमनोहर हैं; प्राणप्यारे हैं; यह तीसरी दृष्टि है। पहले यह वर्णन आ चुका है—

इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यांगतानां परदैवतेन।
मायाश्रितानां नरदारकेण साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः॥

यह लीला पुण्यात्माओंको मिलती है, पापी लोगोंको नहीं मिलती। क्यों? कि जो पापी होगा, उसके मनमें तो पापकी वासना आ जायेगी, तुरन्त। तो घिर जायेगा उससे। और यह है दुनियासे मनको हटानेकी वैज्ञानिक प्रक्रिया, मनकी चिकित्सा, मनका इलाज। यह मनको ऊपर उठानेकी साइंस है। यह अन्तःकरणको ऊपर उठानेका साइंस है। दुनियामें जो मन लगा हुआ है, यहाँसे वहाँ फँसा हुआ है, कहाँ-कहाँ फँसा हुआ है। जरा लिस्ट बनायें न! बचपनसे अबतक कितनोंको प्रीतम माना है—बस, हमारे तो सर्वस्व यही हैं। यह तो जो बचकाने होते हैं; छोटे-छोटे बच्चे होते हैं, समझते हैं—बस, सब! हमारे तो प्रेम हो गया। अब छूटेगा नहीं, बदलेगा नहीं। और ये जो बड़े-बूढ़े लोग होते हैं वे बड़े अनुभवी होते हैं, कहते हैं—अरे! तुम सरीखे सौ-सौ को प्रेम करके छोड़ दिया। तुम होते क्या हो! तो जिन्दगीमें कितनी बार ऐसा खेल-मेल होता रहता है।

यह जो भगवान् कृष्णका स्वरूप है, यह गोपिका-नन्दन है। प्रेमियोंके लिए सर्वोत्तम रूप यही है—गोपिका-नन्दन रूप। और ज्ञानियोंके लिए सर्वोत्तम रूप है अन्तरात्मदृक्। और जो ऐश्वर्यके उपासक भक्त हैं, उनके लिए सर्वोत्तम रूप है विखनसार्थितो विश्वगुप्तये! अवतार रूप! इनमें-से सच्चा कौन-सा है? अरे बाबा! जिसका सहारा लेकर जो ऊपर उठे, उसके लिए वही सच्चा है। यह जो असली सच्चा है न, वह तो सीढ़ी बनकर तुम्हारे सामने ही आया है। यह अन्तर्यामीरूप भी, निराकार रूप भी द्रष्टा रूप भी सीढ़ी है हृदयको ऊपर उठानेके लिए। यह अवतार रूप भी एक सीढ़ी है। यह नन्दनन्दन रूप जो व्रजमें आया है, यह भी

तुम्हारे हृदयको ऊपर ले जानेके लिए ही है। वह जो असली घर है भगवान्‌का; उसमें पहुँचनेके बाद वह फिर दुनियामें लौटने नहीं देता। यह तो आप गीतामें पढ़ते ही होंगे—**सधाम परमं ममः यद्गत्वा न निवर्तन्ते।** कुछ ऐसी पोल-पट्टी है भगवान्‌के धाममें कि वे कहते हैं कि जब एक बार आ गया यह, तो यदि फिर लौटकर जायेगा, तो दुनियामें कुछ-न-कुछ अफवाहें फैलायेगा, बदनामी करेगा। और लोग फिर यहाँ आना नहीं चाहेंगे। तो जो एक बार वहाँ गया, उसे हमेशाके लिए कैद ही कर लेते हैं। और ये सब रूप भगवान्‌के जो हैं, वे भगवान्‌की ओर लोगोंके मनको खींचकर ले जानेके लिए हैं। तो प्यारका रूप है गोपिका-नन्दन-रूप, ज्ञानका रूप है अखिल देहान्तरात्मदृक्-रूप और ऐश्वर्य-भक्तिका रूप है विखनसार्थितो विश्वगुसये।

गोपियाँ कहती हैं—इस समय तुम क्या कर रहे हो? यह रातका समय, यह बाँसुरी बजाकर हमें बुलाना और प्रेमकी इतनी लीला करना। उसके बाद अन्तर्धान हो जाना। और इस तरह गोपियोंको बन-बनमें भटक-भटक करके ढूँढ़ते देखना, और उनका इतना कष्ट देख करके भी उनके बीचमें प्रकट न होना। यह न तो गोपिका-नन्दनवाले प्रेमके अनुरूप है, न तो अन्तर्यामी द्रष्टा रूपके अनुरूप है, न तो ऐश्वर्य रूपके अनुरूप है। किसी भी रूपके अनुरूप तुम्हारी लीला नहीं है। तो **किमियं अद्भुत लीला**—यह क्या अद्भुत लीला कर रहे हो, कृष्ण! जो सर्वथा असंगत है।

इसलिए अपने प्रेमियोंके बीचमें प्रकट होओ और आओ, हम लोगोंके साथ हास-विलास करो। **दैत्यं दृश्यताम्।** प्यारे, हमारी आँखोंके सामने दीख जाओ। प्रत्यक्ष हो जाओ। आओ! हम लोग फिर पहलेके समान हँसें, खेलें, लीला करें। यह छिपनेकी लीला बन्द करो!

❋

: ८ :

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात्।
कर सरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्॥५॥

गोपियाँ कहती हैं—आप अपने इस हाथको हमारे सिरपर रख दो। इसका अर्थ यह है कि जब स्मर रूप हाथ, रुद्र रूप हाथ तुम हमारे सिरपर रख दोगे, तो हमारे हृदयमें काम वासना नहीं रहेगी। हम निष्काम हो जायेंगे।

करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्।

अब देखो! मोक्षवाली बात तो पहले बतायी। गोपियाँ कहती हैं— कृष्ण! हम तुम्हारे ऊपर मोहित हैं।

कि क्या देख करके मोहित हो?

वृक्षालकावृतमुखं तव कुण्डलनी-
गण्डस्थलाधर - सुधं हसितावलोकम्।
दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य
वक्षःश्रियैकरमणं च भवाम दास्यः॥

कहती हैं—अलकोंसे घिरा हुआ यह मुख। अब नये-से-नये फैशनमें यह बात आगयी, कि बालके कुछ हिस्से यदि ललाटपर और आँखपर लटकते हुए हों तो बोलते हैं—बड़ा सुन्दर! तो **वृक्षालका-वृतमुखम्**—श्रीकृष्ण भगवान्‌की जो अलकें हैं, वे उनके कपोलोंपर लटकती रहती थीं। और कुण्डलोंकी शोभासे उनका कपोल चमकता रहता है। उनके अधरोंकी सुधा छलक-छलक करके मानो पास-

पड़ोसको सराबोर कर रही हो—**गण्डस्थलाधर-सुधम्**। और **हसितावलोकम्**—मुसकानसे युक्त चितवन और **दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य**—गोपियोंके मनमें था कि अगर हमारे ऊपर कोई विपत्ति आवेगी, तो इनके जो हृष्ट-पुष्ट-बलिष्ट भुजदण्ड हैं, वे हमारी रक्षा करेंगे। और सचमुच देखो, शंखचूड़ जब गोपियोंको उठाकर ले जाने लगा तो कृष्णने हथियार नहीं उठाया, हाथ ही से उसका सिर तोड़ दिंया। तो **विरचिताभयं**—गोपियोंको अभय देनेवाला और मुमुक्षुओंको अभयदान देनेवाला, मोक्ष दान करनेवाला और **वृष्णिधुर्य**—धर्मका दान करनेवाला और **कामदं**—संसारकी कामनाको, जो धर्मके विरुद्ध कामना है, उसको मिटानेवाला और ईश्वर-प्राप्तिके अनुकूल कामनाको पूर्ण करनेवाला है। प्रेमकी भाषामें यह तृतीय पुरुषार्थ है।

बात यह है कि सब कथा-वार्ता तो बाबाजी लोग करते हैं। ये चढ़ बैठे ब्राह्मणोंकी जीविकापर। हम भी तो हैं न बाबा जी! तो जब गृहस्थ ब्राह्मण लोग शास्त्रका रहस्य बताते थे, तो गृहस्थ धर्मकी उपयोगी जो बाते थीं, उनको वे बिलकुल खोल करके, खुला करके बताते थे। यह नहीं समझना कि शास्त्रमें सिर्फ माला ही फेरना लिखा है। उसमें यह भी लिखा है कि मकान कैसे बनाना, तलवार कैसे चलाना, दवा कैसे बनाना; नाचना कैसे, गाना कैसे और बजाना कैसे, वेशभूषा कैसे बनाना। अपना सौन्दर्य किस तरहसे प्रसारित करना तक सारी बातें शास्त्रोंमें लिखी हैं। उपवेद सारे-के-सारे—धनुर्वेद, आयुर्वेद, स्थापत्यवेद, गान्धर्ववेद हैं ही इसीके लिए। यह नहीं समझना कि तुम बैठकर सीताराम सीताराम ही करना। सारे-के-सारे भोग हैं वहाँ। बड़ा भारी कामशास्त्र है, अर्थशास्त्र है, धर्मशास्त्र है, नृत्यशास्त्र है, नाट्यशास्त्र है। यह भरतनाट्यम जिसको बोलते हैं, यह हमारा हिन्दुस्तानी ही तो है न!

तो बोले—**कान्त कामदं**—प्यारे श्यामसुन्दर! तुम तो हमारी सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हो।

बोले—बाबा! भगवान्‌का भजन कामनाओंको पूर्ण करनेके लिए?

कि बिलकुल, निश्शंक! दुनियामें किसीसे कामना पूर्ण करना और ईश्वरसे कामना पूर्ण करना—इसमें बड़ा फर्क है। ईश्वरसे जो कामना पूर्ण करेगा, वह संसारसे मुक्त होकर ईश्वरको प्राप्त करेगा और जो संसारमें कामना पूर्ण करेगा, वह संसारमें फँस जायगा। तो **कान्त कामदं**।

अच्छा! बोले—कामना तो देते हैं भगवान्। धन भी देते हैं क्या?

बोले—**श्रीकरग्रहम्**—लक्ष्मीका तो हाथ ही पकड़ लिया है। नरसी मेहताने क्या भेजा था लिखकर ? हुण्डी। नरसी मेहताकी हुण्डी भर दी न! खुद थोड़े ही भरते हैं। वह तो कोई-कोई खास-खास भक्त होता है, जिसके लिए आकर खुद हस्ताक्षर करते हैं, नहीं तो महाराज! हस्ताक्षर करनेके कामपर तो खुद लक्ष्मीजीको लगा रखा है।

एक सेठको हम जानते हैं। एक भक्तपर उनकी कृपा थी। उसने अपने कार्यालयको हुक्म दे रखा था कि अगर भगतजीकी कोई हुण्डी आजाय, तो हमसे बिना पूछे भुना दी जाय। तो भगवान्‌ने लक्ष्मीजीसे कह रखा है कि किसी भगतकी हुण्डी आवे, तो बिना पूछे ही भुनाना। हमसे सलाह नहीं करना। **श्रीकरग्रहम्**—इसी शर्तपर तुमसे ब्याह करता हूँ, नहीं तो मुझे ब्याह व्याह करनेकी कोई जरूरत नहीं।

तो देखो, **विरचिताभयं**से मोक्ष, **वृष्णिधुर्य**से धर्म, **कामदं**से काम और **श्रीकरग्रहं** से अर्थ फल। ये चारों बातें भगवान्‌के कर-कमलोंकी छत्र-छायामें प्राप्त होती हैं।

श्रीकरग्रहं। श्रीकृष्णने कहा कि गोपियो! देखो! तुम लोग यह तो कहती हो कि हमारे सिरपर हाथ रख दो, लेकिन मैं नन्द बाबाका बेटा; कितने धर्मात्मा हैं वे! यशोदा मैया कितनी धर्मात्मा है! तुम लोग स्त्री हो। तुम्हारे सिरपर मैं हाथ रखनेवाला नहीं। मैं छूता नहीं तुमको। क्या समझती हो तुम?

तो गोपियोंने कहा—**श्रीकरग्रहम्।** लक्ष्मीजीका हाथ तुमने पकड़ा है। क्या हम जानती नहीं हैं?

तो तुम्हें सौतिया डाह होगा?

कि नहीं। सौतिया डाह नहीं होगा, भले उनका हाथ पकड़ करके तुम रखो। हम भी अपना हाथ तुमको पकड़ानेके लिए तैयार हैं। तुम हमारे सिरपर हाथ रख दो।

अब देखो, एक व्यंग्य भी है गोपियोंकी इस उक्तिमें तुमने तो लक्ष्मीजीका हाथ पकड़ रखा है, ब्याह कर लिया है। एक तो ब्याह हो गया और दूसरे घरवाली बहुत पैसेवाली है। तो **लक्ष्मीवन्तो न जानन्ति प्रायेण परवेदनाम्।** जिनको लक्ष्मी मिल जाती है, उनको दूसरेके दुःखका पता नहीं चलता। **शेषं धराभराक्रान्तं शेते नारायणः सुखम्**—शेष भगवान्‌के सिरपर तो सारी धरतीका बोझ रहता है, और नारायण हैं कि महाराज! घर्र घर्र घर्र साँस लेकर सो रहे हैं। अरे भाई! नारायणको समझना तो चाहिए न—कि शेषजी के सिरपर कितना भार है! तो यह लक्ष्मीका दोष है। लक्ष्मी वालोंको पता नहीं चलता। जो लोग बड़े अच्छे नरम फर्नीचरपर सोते हैं न, उनको क्या पता, कि जो लोग बेचारे खुलेमें सड़कपर ऐसे नंगे ही रातको सो जाते हैं; दिनमें शौच जानेका स्थान नहीं है, नहानेके लिए जगह नहीं है—उनको कितनी तकलीफ होती है। यह लक्ष्मीवाले क्या समझेंगे!

बोलीं—कि कृष्ण! तुमने भी लक्ष्मीका हाथ पकड़ा है। इसीसे तुमको हमारा दुःख-दर्द, हमारी पीड़ा नहीं मालूम पड़ती है। **श्रीकरग्रहम्।**

एक आदमीने भरी सभामें कहा कि इस सभामें आधे आदमी मूर्ख हैं। अब सभाके लोग बहुत बिगड़े—कि तुम हम लोगोंको मूर्ख कहते हो? कि नहीं भाई! बात मैं अपनी वापिस लेता हूँ। इस सभाके आधे आदमी मूर्ख नहीं हैं। अब लो, अपनेको आपने बचाया! तो **धनवन्तो न**

जानन्ति। लेकिन **धनवन्तो हि जानन्ति करुणाः परवेदनाम्**। कुछ-कुछ धनी लोग ऐसे होते हैं, जो दूसरेके दुःखको समझते हैं।

कैसे?

कि **श्रीदामानं वासुदेवः चकार धनदोपमम्**। भगवान् श्रीकृष्णने रुक्मिणीके घरमें रहकर सुदामाको बिलकुल कुबेर बना दिया। तो बाबा! तुमने भी लक्ष्मीका हाथ पकड़ा है। तो तुम वैसा करोगे, जैसा शेषके साथ नारायण करते हैं या जैसा सुदामाके साथ श्रीकृष्ण करते हैं? तुम्हारे हृदयमें दया-माया, ममता, मोह है। तुम जरूर कृपा करोगे। एक बार हमारे सिरपर अपना कर-कमल रख दो, तो यह जो विरहकी गर्मी आगयी है दिमागमें, यह दूर हो जाय और तुमसे मिलें।

अब कृष्णने कहा—अच्छा गोपियो! बस, इतना ही चाहिए न! अच्छा, बन्द करो सब आँख, और कतारमें बैठो। मैं पीछे- ा हूँ और एक-एकके सिरपर हाथ रखता हुआ चला जाता हूँ। आँख खोलकर देखना नहीं।

बोलीं—कि न! ऐसे काम नहीं चलेगा।

जलरुहाननं चारु दर्शय।

: ६ :

मनुष्यका जीवन सिर्फ पैसेके लिए इधर-उधर भटकनेके लिए नहीं है और न तो आगके सामने बैठकर चौरासी भूमि तापनेके लिए है। यह भी एक तप है—वह दूसरी बात है। पैसा भी जीवनके लिए जरूरी है, पर तपस्या भी एक जरूरी चीज है। सिर्फ भोग भोगना, या मरनेके बाद हम कहीं बड़े भारी इन्द्रलोकमें पहुँच जायेंगे—इसके लिए नहीं है। यह जो हमारा आध्यात्मिक जीवन है, यह मनकी मशीनरीको ऐसा बना देनेका है, जिससे हम दुःखसे बच सकें और जगह-जगह सुखका अनुभव कर सकें।

एक सज्जन एक साधुको गाली दे रहे थे। तो लोगोंने महात्मासे पूछा कि महाराज! यह आपको गाली क्यों देते हैं? वे बोले—भैया, चुप रहो। बतलाने लायक बात नहीं है। बोले—आखिर हमराज, कोई तो बात होगी। बोले—अरे, हमारा इनका साला-बहनोईका नाता है। ये बड़ी मीठी गाली देते हैं हमको। यह क्या हुआ? यह आध्यात्मिक प्रसाद हुआ; **प्रसन्न अध्यात्म**। गाली देनेपर जहाँ प्रायः आदमी जल भुन जाता है, वहाँ वे खिल गये। दुनियाके लोग बस, जहाँ जायेंगे, वहाँ दुःख लेंगे। गुबरौले बनेंगे। चींटी तो बनेंगे ही नहीं। चींटी वह होती है जो हर जगहसे शक्कर निकाल ले और गबरौला वह होता है, जो हर जगहसे मैल निकाल ले।

अपने जीवनको ऐसा बनावें, मशीन ही अपनी ऐसी बन जाय कि जो चीज हमारे कानमें आये, मीठी बन जाय। जो आँखमें आये सो मीठी हो जाय, जो नाकमें आये सो मीठी हो जाय, जो मुँखमें आवे सो मीठी हो जाय। अपनी मशीनको इतनी मीठी बना लिया जाय कि बस, जो सामने आया, उसको शहदसे तर कर दिया। इसमें तो *न हर्रे लगे न फिटकरी और रंग चोखा आये।* दुनिया चाहिए रोटी खाने भरके लिए, कपड़ा पहनने भरके लिए, स्थान सोने भरके लिए! ठीक है! लेकिन इसके लिए ज्यादा

लोग दुःखी नहीं हैं। ज्यादा लोग तो दुःखी हैं इसलिए, कि हमारा बैंक-बैलेंस कम है। वह बेचारा पैसा तकलीफ नहीं देता है; तकलीफ तो अपना मन देता है न! उसीको सुधारना चाहिए। औरतके बिना थोड़ेसे मर्द दुःखी होंगे और मर्दके बिना थोड़ी-सी औरतें दुःखी होंगी। लेकिन हमको ऐसी औरत चाहिए और ऐसा मर्द चाहिए—इसके लिए बहुतसे औरत मर्द दुःखी होंगे। रोटीके बिना कम लोग दुःखी होंगे, लेकिन हमको ऐसी रोटी चाहिए—इसके लिए दुःखी होंगे। यह ऐसा-ऐसा जो है, यही ज्यादा तकलीफ देता है। इसकी जगहपर अपने दिलको ले चलो भगवान्में। संसारका व्यवहार तो करो संसारमें और मजा लेनेके लिए भगवान्को रखो। अगर मजा लेनेके लिए तुम्हारे पास कोई पूँजी नहीं होगी, दुनियाँमें मजा लेने चलोगे—तो कोई मर जायेगा, कोई बिछुड़ जायेगा, कोई धोखा दे देगा, कोई बेवफा हो जायेगा। कोई तुम्हारे मनके मुताबिक नहीं चलेगा। बीसों तकलीफें मिलेंगी दुनियामें। इसलिए मजा तो लो ईश्वरसे और दुनियाके साथ; नारायण कहो। उसको बस, नारायण ही नारायण रहने दो।

बोले—भाई! भगवान्को दिलमें बसाना—यह कैसे होगा? तो देखो, इसके लिए सीधा सादा उपाय है। जिसके हृदयमें नारायणका वास होवे, उसका सुमिरन करो। गोपीकी याद करो, तो कृष्ण तुम्हारे हृदयमें आवेंगे। कोई सात्त्विक होते हैं, कोई राजस होते हैं, कोई तामस होते हैं, कोई निर्गुण होते हैं, पर तुम अपने हृदयमें यह देखो कि कोई प्रेमी कैसे प्रेम करता है। यह घर-गृहस्थीका काम बच्चे कैसे सीखते हैं? माँ-बापकी गृहस्थी देखकर ही तो बच्चे अपनी घर-गृहस्थीकी बात सीख लेते हैं। ऐसे अगर तुम्हें भगवान्की भक्ति सीखनी है, तो भगवान्के भक्त किस ढंगसे भक्ति करते हैं—उसको अपने जीवनमें बनाओ। यह आज भी ताजा रहेगा और आगे भी ताजा रहेगा। यह कभी बुर्जुआ होनेवाला नहीं है, कभी पुराना पड़नेवाला नहीं है। जबतक मनुष्य जाति रहेगी और जबतक मनुष्य जातिमें मन रहेगा, उसकी समस्याएँ रहेंगी, तबतक उसके

समाधानके लिए यह भगवान्से प्रेम करनेवाली बात जो है, वह बिलकुल जीती जागती रहेगी। इसको दुनियाका कोई विज्ञान, कोई राजनीति, कोई पार्टी काट नहीं सकती है, क्योंकि यह तो मनकी एक शाश्वत समस्याके समाधानके लिए है।

तो आओ मेरे भाई! चलो एक बार वृन्दावन! मनसे चलो। यह वृन्दावनकी माधुरी—*इन रसिकन मिलि आस्वादन कियो।* शरद ऋतुकी रात्रि! चाँदनी छिटकी हुई। मन्द मन्थर गतिसे जमुनाजी बह रही हैं। शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु चल रही है। और गोपियाँ श्रीकृष्णके बिना व्याकुल होकर गान कर रही हैं।

श्रीकृष्णके दो रूप हैं; एक तो है शृंगार और एक है अंगार। अंगार, आगका अंगारा। जब मिलते हैं, तब तो यह शृंगार बन जाते हैं अंग-अंगके, **शृंगारः सखि मूर्तिमान् इव।** नीलकमल बनकर कानमें बैठ गये और कपोल छूने लग गये। अंजन बनकर आँखमें बैठ गये। नीलमका हार बनकरके वक्षःस्थलपर आगये।

वृन्दावनरमणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयति।

शृंगार बन गये। गोपियाँ कृष्णसे ही अपने अंग-अंगको सँवारती हैं, सजाती हैं। और जब विरह होता है, तब? बोले—बिलकुल अंगार बन जाते हैं; धधकता हुआ कोयला। विरहमें अंगार और मिलनमें शृंगार। वैसे अंगार और शृंगार शब्दका भी अर्थ होता है।

श्रीकृष्ण गोपियोंके हृदयमें प्रकट हुए। बोले—गोपियो! मालूम नहीं था कि मेरे बिना तुम लोगोंको इतनी पीड़ा, इतना कष्ट हो रहा है। तो तुम क्या चाहती हो? बस, इतना ही न—कि हम तुम्हारे सिरपर हाथ रख दें? देखो, सब लोग जमुनाजीके किनारे जमुनाजी की ओर मुँह करके, कतार बनाकर और आँख बन्द करके बैठ जाओ। मैं पीछेसे एक-एकके सिर पर हाथ रखता हुआ चला जाता हूँ। तुम हो हजारों! और आँख मत खोलना कभी।

संस्कृत भाषामें एक ग्रन्थ है 'संकल्प कल्पद्रुम' भगवान्से जैसा संकल्प करो, वैसा ही वह पूरा करता है। ग्रन्थ ही है संकल्प-कल्पद्रुम। चिन्तामणिर्जयति। चिन्तामणि हैं भगवान्। तो बोले—बन्द करो आँखें। हम तुम्हारे सिरपर हाथ रखते हैं। एक गोपी आगे बढ़कर आयी—अपने मनमें, और बोली—श्यामसुन्दर! ये सब गँवार हैं। इनको मालूम नहीं—कि क्या बोलना वोलना चाहिए तुमसे। कैसे बोलना चाहिए। तुम छँटे हुए हो तो तुमसे बात करने वाला भी छँटा हुआ होना चाहिए। क्यों? कि तुम बात-बातमें बात निकाल लेते हो। आओ! हम जो कहती हैं सो करो।

भज सखे भवत्किङ्करी स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय।

सखे! भगवान्को सखा कहकर बुलाना! यह कोई मामूली बात नहीं है। यह तो गोपियोंके सखा हैं, गोपियोंके प्राणसखा हैं। जो साथ खाये—सो सखा; स माने साथ, ख माने खाना। एक अर्थ तो मैंने स्वामी अखण्डानन्दजीसे सुना था पहले। वह तो व्याकरणके बड़े प्रौढ़ विद्वान् हैं, प्रत्येक शब्दमें व्याकरण निकाल देते हैं। पुराने पण्डित जो हैं, वे उस शब्दका अर्थ करते हैं समान ख्याति। जिसकी ख्याति साथ-साथ होवे सो सखा, जैसे गोपी-कृष्ण, श्याम-बलराम, लक्ष्मण-राम। जिनका नाम साथ-साथ लिया जाय कृष्ण-अर्जुन। कोशकारोंसे सखा शब्दका अर्थ किया है कि जो साथ-ही-साथ जिये, उसका नाम सखा, **समप्राणाः सखाः स्मृताः।** तो गोपियाँ कहती हैं कि हम लोगोंका जीवन समान जीवन है, सहचर जीवन है। तुम जानते हो कृष्ण, कि तुम्हारे बिना ये गोपियाँ जीवित नहीं रह सकतीं। एक बात!

अब दूसरा अर्थ देखो 'सखा'का; कि तुम हमारे सखा, हम तुम्हारे सखा। तो **हितं उपदिशामः**—हम तुम्हारी भलाईकी बात कहती हैं हमारे बिना तुम भी रो दोगे। तो मान लो, हम जिन्दा रहते तुमको सुखी नहीं कर सके; हमसे सुख मिलता तो तुम छोड़कर क्यों जाते? गलती है हमारी, लेकिन मरनेके बाद भी तो हम तुमको सुखी नहीं कर सकेंगी

हमारे मरनेके बाद तुमको बड़ा दु:ख होगा। सखा! सखाका अर्थ है कि हम मर जायेंगी तो तुम भी सुखी नहीं रह सकोगे। तुम्हारी बुद्धि भी ठीक नहीं रह सकेगी। इसलिये हम यह नहीं चाहती हैं कि हम मरनेके बादमें तुमको दु:खी बनावें।

तो कृष्णने कहा—तो क्या चाहती हो तुम?

बोलीं—**भज**। भज माने हमारा सेवन करो। हम तुम्हारे रोगकी दवा हैं। तुम्हारे हृदयमें जो पीड़ा है, जो तकलीफ है, उसको हम समझती हैं, और उसको हम ही दूर कर सकती हैं। तुम यह क्या कहते हो कि तुम आँख बन्द करो और हम तुम्हारे सिरपर हाथ रखते हैं? नहीं। आओ, आओ! हमारी सेवा करो। हमारी सेवाके बिना तुम अन्धकारमें ही छिपे रहोगे। अब गोपियोंके सामने नहीं आवोगे तो कहाँ रहोगे? अँधेरेमें रहोगे न! तो बाबा! यह श्रीकृष्णचन्द्रका जो उदय हुआ है, वह अन्धकारमें रहनेके लिए नहीं उदय हुआ है; प्रकाशमें रहनेके लिए हुआ है। आओ, हमारे बीचमें आओ।

बोले—अरी गोपियो! हम तुम्हारा क्यों भजन करें? क्यों सेवन करें? तुममें कौन-सी ऐसी शहद है कि उसको हम चाट जायँ?

शहद मीठी होती है तो खानेको मन हो जाता है। आज एकने हमको बताया कि जब मैं बीमार था, तो लोग वैद्य बुलाते थे दवा करनेके लिए। वैद्य पुड़िया दवाकी देता और शहदमें खानेको बताता। तो जब शहदमें दवा डालनी होती, तो मैं पुड़ियाको तो फेंक देता इधर-उधर करके किसी तरह और शहद चाट जाता।

तो बोलती हैं, **भवत् किङ्करीः स्म**। कृष्ण! हम तुम्हारी किंकरी हैं। यदि मोहको आश्रय देकरके शंकर रहें, तो क्या हो जायेगा? वह किंकर हो जायेगा; **आशावान् यदि संसारे शंकरः किङ्करायते**। यदि संसारमें शंकर भी आशावान बन जाय तो उसे किंकर होना पड़ेगा।

किंकर माने सेवक। यह समझो, कि यह किंकर शब्द बड़ा

विलक्षण है। शब्दका जो पर्दा है, वह जरा खोलना चाहिए न! एक तो इसका अर्थ है—कि जो हाथ जोड़ करके सामने आवे, जो बारम्बर पूछे—कुछ आज्ञा? कुछ हुक्म? उसका नाम होता है किंकर, किं करोमि। दूसरा इसका अर्थ होता है—कुत्सितं अपि करोति। किं करः। जो अपने मालिकके लिए छोटे-से-छोटे क़ाम करनेको तैयार रहता है। अब इसका तीसरा अर्थ देखो; किं करो भवति? क्या यह हाथ है? माने अपने हाथसे आदमी जैसे अपना काम कर लेता है, वैसे करो न भवति, हाथ तो नहीं होता है, लेकिन शंका होती है कि क्या यह हमारा हाथ है? किं करो भवति? तो जो मनुष्यका हाथ बन जाय काम करनेमें, उसको किंकर कहते हैं। जो छोटा काम भी करले उसको किंकर कहते हैं और जो किं करोमि? आकर पूछे—क्या करूँ? उसका नाम किंकर होता है। संस्कृत भाषाके जो शब्द होते हैं न, वे कहीं शब्द होते हैं, कहीं पद होते हैं, और कहीं स्वयंमें वाक्य हो जाते हैं। इसीलिए पदमपि भवति, वाक्यमपि भवति। यह किंकर शब्द अपनी आवाज भी है और अपना पाँव भी है। यह वाक्य भी है और पद भी है। यह बात तो भला लोगोंके किस कामकी! लेकिन 'किंकर होना' का माने तो समझमें आवेगा न; कि जो आज्ञापालन करनेका इच्छुक हो, छोटा-से-छोटा काम करे, अपना हाथ बन जाय—वह किंकर। गोपियाँ कहती हैं—कृष्ण! हम तुम्हारी किंकरी हैं, माने हम तुम्हारी छोटी-से-छोटी सेवा करनेको राजी हैं। यह इसका मतलब हुआ। अब—

चाखा चाहे प्रेम रस, राखा चाहे मान।
एक म्यान में दो खडग देखे सुने न कान॥

असलमें प्रेममें कान नहीं चलती है। कान माने मर्यादा, कुल-कान। वह प्रेममें नहीं चलती है। तो कौन-सी कान चलती है?

तो बोले—मुसकान चलती है। यह मुसकान क्या है? कि जो कानको मूस ले, माने चुरा ले। जो कुल की कान को, मर्यादाको चुरा ले,

उसको बोलते हैं मुसकान। तो प्रेममें कुल-कान नहीं चलती। प्रेममें मुसकान चलती है।

अब देखो! गोपियाँ कहती हैं कि हम तुम्हारी किंकरी हैं। तुम हमारा सेवन करो, इसीमें तुम्हारा भला है। अब इसके लिए अपनी योग्यता बताती हैं।

व्रजजनार्तिहन् वीर योषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित।
भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय॥६॥

व्रजजनार्तिहन्। तुम कहते हो कि व्रज जनोंकी जो आर्ति है, उसका नाश करनेवाले हो। ऐसा कहकर वे भगवान् कृष्णको उनका स्वरूप बताती हैं। पहले **विश्वगुप्तये** जिसने कृष्णको कहा था न, उसको इसने काट दिया। एकने कहा कि तुम सारे विश्वकी रक्षा करनेके लिए पैदा हुए हो, तो यह गोपी कहती है कि नहीं। तुम व्रज-जनका दुःख दूर करनेके लिए पैदा हुए हो। खास हमारे लिए पैदा हुए हो। तो **वयं व्रजजनाः न भवाम?** सामान्य और विशेषमें फर्क होता है। एकने कहा—कि हम सबसे प्रेम करते हैं। बोले—कि तुम्हारा छोटा सा, एक प्याले बराबर तो दिल, और उसमें दो घूँट प्रेमका रस। और वह जब तुमने सारी दुनिया पर फेंका, तो उसकी एक फुहियाका भी तो पता नहीं चला; कहाँ गया! सबसे प्रेम करते हो—माने किसीसे भी प्रेम नहीं करते हो!

तो बोले—फुहियासे तुम्हारा काम नहीं चलता?

कि नहीं। हमको तो पूरा-का-पूरा, लबालब भरा हुआ जो प्याला है न, वह चाहिए।

अमिय गरल ससि सीकर रविकर राग विराग भरा प्याला।
पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह मतवाला॥

यह पागल उन लोगोंका प्यारा है, जो कभी अमृत पीते हैं माने तारीफ पीते हैं, तो कभी गरल, जहर भी; निन्दाका घूँट पी जाते हैं। *अमिय गरल ससि सीकर*—कभी चाँदनीमें खेलते हैं तो कभी धूपमें तपते

हैं। कभी राग आता है तो कभी विराग आता है। अरे, ये दोनोंके घूँट जो पीते हैं न, वे प्यारे रास्तेपर चलते हैं।

व्रजजनार्तिहन्—यह सामान्य प्रीति नहीं है, यह विशेष प्रीति है। क्या भगवान् सबके साथ नाचने जाते हैं? क्या भगवान् सबके घरमें माखन चोरी करने जाते हैं? अरे बाबा! आप लोग घर-गृहस्थीमें रहते हो। अपनी पत्नीकी कोई चीज, कोई जेवर चुरा करके रख लेनेमें और उसको परेशान करनेमें जो मजा आता है, क्या दूसरेके साथमें जाकर वैसा चुराओगे? नहीं चुरा सकते न! इसका नाम अपनेपनकी प्रीति है। तो व्रजवासियोंको सामान्य प्रीति नहीं चाहिए, उनको तो विशेष प्रीति चाहिए। वे कहती हैं— हमारे घरमें आकर छेड़-छाड़ करो। हमारे साथ गाओ, हमारे साथ नाचो, हमारे साथ खाओ। वह जो मुकुट ऊपर करके और सिर सीधा करके बाबाजी बनकर, देवता बनकर बैठ जाये और बोले—सब लोग पूजा करो, वंदन करो, अक्षत चढ़ाओ; वह कृष्ण नहीं चाहिए हमको। हमको तो वह व्रजजनोंका जो दु:ख हरण करने वाला है न, हमारा अपना—वह कृष्ण चाहिए। **व्रजजनार्तिहरम्**। यह आत्मीयताकी बात है। वह सर्वेश्वर नहीं चाहिए। भागवतके दशम स्कन्धके प्रारम्भमें यह बात आयी है। ब्रह्माजीने भगवान्‌को जगन्नाथ कहकर सम्बोधित किया। तो इन्द्र थे बगलमें खड़े। उन्होने ब्रह्माजीका हाथ दबाया—कि क्या करते हो? तो बोले—करते क्या हैं! भगवान्‌को जगन्नाथ बोल रहे हैं। बोले—कि नहीं बाबा। हमको जगन्नाथ नहीं चाहिए। जगन्नाथ तो दैत्योंका भी नाथ होगा, देवताओंका भी नाथ होगा। हमारा काम कैसे बनेगा?

कि तुमको क्या चाहिए?

बोले—हमको तो देव-देव चाहिए।

तो देखना, उस प्रसंगमें 'जगन्नाथ'के बाद 'देवदेवं वृषाकपिम्' है। माने हमारे पक्षमें कोई होना चाहिए न! हमारा भगवान् हमारे पक्षमें होना चाहिए। कुछ तो हमारी बात करे।

तो **व्रजजनार्तिहन्** का अर्थ है—बाबा, विश्वकी रक्षाके लिए तुम अवतीर्ण हुए हो—यह बात तो विश्ववाले जानें। हम तो **व्रजजन** हैं।

हम व्रज सुखी व्रज के जीव।

प्रान तन मन नयन सरबस राधिका को पीव॥

हमको तो व्रजकी सीमाके बाहर हरि भी नहीं चाहिए;

विपिन राज सीमा के बाहर हरिहूँ को न निहार॥

तो यह प्रेम जो है न, यह भगवान्‌को प्राइवेट भगवान् बना लेता है और ज्ञान भगवान्‌को सार्वजनिक भगवान् बनाता है। तो बात क्या हुई—कि कलियुगमें लोग सार्वजनिकमें विश्वास करते हैं। प्रापेगेण्डाका युग है न यह, वाणीका युग। सब लोग व्याख्यान देकर लीडर बनते हैं। तो भक्त लोग भी तो जोर-जोरसे बोल-बोलकर ही भक्ति करते हैं न! यह तो प्रापेगेण्डाका युग हुआ! हम लोग भी गुणानुवाद करते हैं, पदका गान करते हैं, कीर्तन करते हैं। तो वाणीका युग है यह, वाणीका।

तो भक्ति, प्रेम जो होता है, वह भगवान्‌को प्राइवेट बनाता है। और ज्ञान जो है वह सार्वजनिक मंचपर ले जाता है, जिससे भगवान्‌को वोट ज्यादा मिले। ज्ञान भगवान्‌को वोट ज्यादा दिलाता है और भक्ति भगवान्‌को अपने हृदयका सर्वस्व बना लेती है। **व्रजजनार्तिहन्**—आर्ति! देखो, गोपीके हृदयमें आर्ति है। असलमें व्रज-जन उसको कहते हैं जो भगवान्‌की ओर चले। आप व्रज-जन शब्दका अर्थ भूलना मत। **व्रज गतौ** धातु है, **व्रजन्ति, गच्छन्ति ये ते व्रजाः**। जो भगवान्‌की ओर चले, उसका नाम व्रज-जन। अरे एक कदम तो उठाओ, भाई!

बोले—**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्**। भगवान्‌की प्रतिज्ञा है—जो जिस ढंगसे मेरे पास आते हैं, मैं उसी ढंगसे उनको मिलता हूँ। तो एकने कहा—बाबा, हम तो एक कदम चले अबतक। भगवान् बोले—हम भी एक कदम चले। तो वे बोले—फिर मिल कैसे गये? तो बोले—तुम्हारा एक कदम जरा छोटा पड़ता था और मेरा एक

कदम बहुत बड़ा पड़ गया। बहुत बड़ा कदम है भगवान्‌का। एक-पग उनकी ओर चलो और एक-पग तुम्हारी ओर चलें वे, तो मिलना हो जाता है। पर एक पग भी तो चलो उनकी और!

मैं बौरी ढूँढन चली, रही किनारे बैठ।

दुनियाँकी चीजको पकड़के बैठ जाते हैं, तो भगवान् कैसे मिलेंगे? जो भगवान्‌की ओर चलने वाले हैं, उनके हृदयमें जो विरहकी पीड़ा होती है, उसको नाश करते हैं भगवान्। **व्रजजनार्तिहन्।** तो देखो, यह अपनी योग्यता बतायी; हम व्रज-जन हैं, इसलिए हमारा दु:ख मिटा करके हमें सुख देना—यह तुम्हारा कर्तव्य है। एक बात।

अब दूसरी बात लो। **वीर योषितां।** यह तो गोपीका वचन है भाई! तुम इसमें यह उम्मीद मत करना कि किसी नेताका भाषण इसमें निकल आवेगा। तो वीरयोषिताका अर्थ है, कि तुम वीर हो—माने दयावीर हो। जब किसीको दु:खी देखते हो, तो उसके ऊपर दया करनेके लिए द्रवित हो जाते हो। बड़ी-बड़ी तकलीफ उठाकर भी, पराक्रम दिखाकर भी लोगोंका कष्ट दूर करते हो। 'वीर' शब्दका सीधा अर्थ यह है। लेकिन अब जो यहाँ 'योषिता' जुड़ा हुआ है न, उसको आगे जोड़ें कि पीछे जोड़ें? दोनों तरफ जोड़कर देखो तो, क्या अर्थ निकलता है?

योषितां वीर—अपनी वीरता हमीं लोगोंको दिखाते हो? हम बिचारी गाँवकी गोपी, सब कुछ छोड़कर आयीं। और हमारे बीच अपनी बहादुरी दिखाते हो—कि देखो गोपियो! हम तुमको छोड़ सकते हैं? यह बहादुरी हम बिचारी गोपियोंको ही दिखानेकी जरूरत थी? और **योषितां वीर** का क्या अर्थ है? योषित शब्द है न। योषा शब्द बनता है संस्कृतमें; तो यह दो तरहसे बनता है; एक चवर्गी जकारसे बनता है और एक यवर्गी य से। यह योषित शब्द दोनों तरहसे बनता है। चवर्गी यकार होवे, तब तो उसका अर्थ 'सेवनीय' होता है—योषणीय जूस, रस! हम तो पीने लायक जूस हैं। जूस, योषित। स्त्रीके शरीरमें क्या रखा है? बोले—रस-ही-रस

है—योषित। ये वैरागी बाबा लोग जो हैं न, उनका विषय दूसरा है। सबको वैरागी नहीं बनाना। जिन लोगोंके संस्कार वैसे पड़ जाते हैं बाबाजीओंकी बात सुनते-सुनते, उनके मनमें वैसी बात बैठ जाती है। **योषितां वीर**—जो रसीली हैं, करुणाकी मूर्ति हैं, कोमलांगी हैं—उनके बीचमें बहादुरी दिखाना? नारायण कहो। अरे, जाकर किसी असुरके सामने बहादुरी दिखाना, बाबा! हमारे सामने तो कोमल बन जाओ। मीठे बन जाओ। **योषितां वीर**। एक बात और है—कि **कृष्ण**! कहीं बदनामीसे तो नहीं डर रहे?

एक बात और सुनाता हूँ, 'योषितां वीर' का अर्थ। बहुतसे लोग हैं न, वे **योषितां भीरु** होते हैं; वे औरतोंसे बहुत डरते हैं। एक महात्मा थे गंगा किनारे। उन्होंने यह नियम बना दिया था—कि जहाँतक हमारी आँख जाती है, उसके भीतर कोई स्त्री नहीं आनी चाहिए। अब रोज विक्षेप ही रहे, क्योंकि गंगास्नान करनेके लिए स्त्रियाँ आवें, तो एक आदमी खड़ा होकर बोले—अरे, दूरसे जाओ। दूर-से जाओ। इधर बाबाजी हैं। उन्होंने यह नियम बनाया हुआ था, कि अगर हमारा कोई पाँव छू लेगा तो हम चौबीस घंटे भूखे रहेंगे। अब उनको चलना तो पड़ता है। अभी वह बाबाजी जिन्दा हैं भगवान्‌की कृपासे। प्लेटफार्मपर भी जाते हैं, कभी गंगास्नानके लिए जाते हैं, कभी हजारों आदमियोंके बीचमें भी जाते हैं। अब जिनको मालूम है, वे बेचारे तो दूरसे ही हाथ जोड़ लेते हैं और जिनको नहीं मालूम है, वे दौड़ते हैं पाँव छूनेके लिए। चार-पाँच जने उनके चारों तरफ खड़े रहते हैं—कि दूरसे प्रणाम करना, दूरसे। छूना नहीं, नहीं तो बाबाजी भूखे रह जायेंगे। अब वह छू लेने देते, तो इतने विज्ञापनकी जरूरत नहीं पड़ती। कई लोग ऐसे नियम बना लेते हैं, कि अखबारमें छपनेसे भी ज्यादा हो जाता है वह। यह बात दूसरी है।

अब **योषितां वीरका** अर्थ समझो। जो स्त्रीके साथमें रहकर निर्विकार रह जावे, वह योषितां वीर है। असलमें संसारके लोग कैसे हैं?

वे तो अपने सरीखा ही सबको समझते हैं। मनुष्य अपनेसे ज्यादा किसी दूसरेको माननेको तैयार नहीं होता। वह दुनियाकी सब बातोंको अपने भीतर ही लाकर रखनेकी कोशिश करता है। बोले—भाई, जैसे चाट देखकर हमारी जीभपर पानी आ जाता है, वैसे सबकी जीभपर पानी आता होगा। दूसरे लोग ऐसे भी हैं, जो लोगोंको चाट खाते देखते हैं तो ग्लानिसे उनका मुँह भर जाता है; कैसे इतनी गंदी चीज लोग खाते हैं? ऐसे लोग भी होते हैं। हम यह नहीं कहते कि अच्छा कौन, और बुरा कौन है। लेकिन अपना-अपना दृष्टिकोण तो होता है न अलग-अलग। यह जो हम समझते हैं कि जैसा-जैसा हमारे मनमें विकार होता है, वैसा ही सबके मनमें होता है—तो यह मनुष्यकी बुद्धिकी कमजोरी है। अलग-अलग संस्कार होते हैं, अलग-अलग विकार होते हैं, अलग-अलग रहनी होती है। श्रीकृष्णकी तो विशेषता ही यही है—

पत्न्यस्तु षोडशसहस्रमनङ्गबाणैः
यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः॥

सोलह हजार पत्नियाँ अपने हाव भाव, कटाक्ष और नखरोंसे जिनके मनमें, जिनकी इन्द्रियोंमें किंचित् भी क्षोभ उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं हुईं, उन्हींका नाम तो कृष्ण है!

तमयं मन्यते लोको ह्यसंगमपि संगिनम्।
आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः॥

दुनियाके लोग मूर्ख हैं। श्रीमद्भागवतमें देखो, यह 'अबुधा' शब्द है। दुनियाके लोग मूर्ख हैं, क्यों? **तमयं मन्यते लोको ह्यसंगमपि संगिनम्**—इस असंग, इस उदासीन, इस निर्विकार महापुरुषको ये लोग विकारी मानते हैं। मूर्ख हैं, कि आखिर क्यों मानते हैं ऐसा? कि **आत्मौपम्येन**—अपनी उपमा कृष्णसे देते हैं, कि जैसे हम भिखारी हैं, वैसे कृष्ण भी भिखारी रहे होंगे।

अन्य कई लोग 'योषितां भीरु' होते हैं। वे भागते हैं कि स्त्रीकी

शकल न दीख जाय। स्त्रीसे छू न जायँ; जंगलमें भागे जा रहे हैं। और कृष्ण? ये गोपियोंके बीचमें रहते हैं। ये षोडश सहस्र पत्नियोंके बीचमें रहते हैं। तो हम जानती हैं यह बात। तुम्हारे लिए डरनेकी कोई बात नहीं है। तुम तो वीर पुरुष हो। तुम कमजोर नहीं हो, संसारी नहीं हो, जीव नहीं हो। वीर पुरुष हो।

बोले—हाँ गोपियो! यह सब ठीक है। मैं व्रजजनोंकी पीड़ा हरण करनेके लिए आया, यह भी ठीक-और मेरे मनमें कोई विकार नहीं है—यह भी ठीक। लेकिन मैं अपने विकारसे डरकर तुम लोगोंसे नहीं भागता हूँ, तुम्हारे विकारको देखकर भागता हूँ।

—कि बाबा! हमारे अन्दर क्या विकार आया? यह तो उल्टे हम पर ही पड़ रहा है!

—**निजजनस्मयध्वंसनस्मित**। तुम्हारे अन्दर स्मय-रूप विकार है। स्मय बोलते हैं अभिमानको, कि तुम्हारे अन्दर अभिमान रूप विकार है। तुम अपनी ओर देखो।

मैंने अखबारोंमें पढ़ा है, और जो लोग विलायतसे लौटकर आते हैं, उनसे सुना है कि विलायतकी रहनी दूसरी है। वहाँ जब कभी जाओ, तो वहाँ की जो लड़कियाँ हैं, जो स्त्रियाँ हैं, वे मजेसे हाथ मिलाती हैं, हँसती हैं, खेलती हैं, बोलती हैं। तो यहाँसे जो बेवकूफ लोग जाते हैं, वे समझते हैं कि ये तो हमारे ऊपर फिदा हो गयी हैं। ये तो हमसे बड़ा भारी प्रेम करती हैं। इन्होंने तो बस, अब अपना शरीर हमारे प्रति अर्पित कर दिया है। यह बेवकूफी वे वहाँ जाकर कर बैठते हैं, क्योंकि वहाँ की रहनी-सहनीको तो जानते नहीं हैं। वहाँ तो हँसना- खेलना, बोलना, मिलना-जुलना—इन सबकी बिलकुल खुली छूट है। अब यहाँके लोग यह जानते नहीं। ये वहाँ जाते हैं तो समझते हैं कि ये हमारी वासना पूरी करनेके लिए आ रही हैं। समझते हैं, हम बड़े विद्वान हैं, हम भारतके बड़े भारी मुकुट-मणि आये हैं, और हमको देखकर ये आत्मलीन हैं। मूर्खता

करते हैं। ऐसे ही गोपियाँ जो हैं, वे जब देखती हैं कि कृष्ण तो हमारे पीछे आ रहे हैं, हमारी ओर देख रहे हैं, हमारे साथ हँस रहे हैं, बोल रहे हैं— तो वे भी मूर्खता कर बैठती हैं। क्या? कि अभिमान कर बैठती हैं, हम बड़ी सुन्दरी हैं। देखो, श्रीकृष्ण हमारे पीछे-पीछे घूमते हैं, हमारे ऊपर लुभाये हुए हैं। इसका नाम हुआ स्मय। अपने सौन्दर्यका, अपने माधुर्यका उनके मनमें अभिमान आगया।

कृष्णने कहा—कि गोपियो! हम अपने विकारके डरसे तुमसे नहीं भागते हैं। तुम्हारे अन्दर जो अभिमानका अछूत आगया न, उसके कारण हम तुमसे भागते हैं।

गोपियोंने कहा—कृष्ण! इस रोगको तो दूर करनेकी बहुत बढ़िया औषधि है तुम्हारे पास। **निजजनस्मयध्वंसनस्मित।** नेक मुस्कुरा दो न! जब तुम मुस्कुराकर हमारी ओर देखोगे, तो हम सब अभिमान छोड़कर तुम्हारे चरणोंमें गिर जायेंगी। यह तो तुम जब नहीं दीखते हो, तब अभिमान आता है। जब तुम दीखते हो, तब अभिमान कहाँ आयेगा? जो भक्तजन हैं, वे कभी-कभी अभिमान कर बैठते हैं। तुम्हारी मुस्कान निज जनोंके अभिमानको ध्वंस करनेवाली है।

स्मित श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज कहते हैं—गोपियोंने दूसरी बात कही। वे कहती हैं, कि जब भगवान् हँसते हैं, तो माया फैलाते हैं। उनकी हँसीको देखकर आदमी मोहित हो जाता है। अब जब मोहित हो जाता है, तब अभिमानी हो जाता है। तो गोपियाँ कृष्णसे कहती हैं, कि तुम अपनी हँसीमें थोड़ा संकोच कर लो। स्मित माने मन्द हास्य। जब तुम खिल-खिलाकर हँसते हो तो तुम्हारी हँसीके चक्करमें हम फँस जाती हैं, और समझती हैं कि तुम हमारे ऊपर मोहित हो। हमें अभिमान आ जाता है। और हमारा अभिमान दूर करनेके लिए छिपनेकी ज़रूरत नहीं, भागनेकी जरूरत नहीं। हमारा अभिमान दूर करनेके लिए तो तुम्हारी जो उन्मुक्त हँसी है, उसको थोड़ा संकुचित करके थोड़ा मुस्कुराहट भर दो। हम

समझ जायेंगी, कि अब ये हँसते नहीं हैं, थोड़ा गम्भीर हो गये हैं। इसका मतलब है कि हमारे अन्दर कोई दोष होगा। इनकी हँसी कम क्यों हुई? तो हम समझ जायेंगी और हमारा अभिमान दूर हो जायेगा। हम यह प्रार्थना करती हैं, कि आँख मत बन्द करवाओ और पीछेसे हाथ मत रखो।

जलरुहाननं चारुदर्शय—हमारी आँखोंके सामने आओ। एक गोपीने कहा था कि सिरपर हाथ रख दो, तो दूसरी गोपियाँ जो हैं, वे कहती हैं—कि नहीं! हमारे सामने आकर खड़े हो जाओ और सुन्दर मुखारविन्दका दर्शन कराओ।

इस पदमें बड़ी-बड़ी ध्वनियाँ हैं। **दर्शयति** में ध्वनि यह है कि अब हमारे पास तो ऐसा कोई उपाय नहीं है, जो तुम्हारे मुखारविन्दको देख सकें। हमारे साधन तो हार गये। हम तो निस्साधन हो गयीं। भगवान् ने कहा—अच्छा, मैं पीताम्बर से ढककर थोड़ा-सा, एक कोना अपने मुखारविन्दका दिखाता हूँ। तो उन्होंने कहा—नहीं। **चारुदर्शय**। भली भाँति दिखाओ!

—कि अरी गोपियो! भली भाँति तो दिखावें, लेकिन तुम लोग हमारे मुँहको क्या समझती हो। तुम तो अपने ही मुँहको सब कुछ समझती हो। जब देखो तब शीशा लेकर अपना ही अपना मुँह देखती हो।

वे कहती हैं—नहीं-नहीं श्यामसुन्दर। **चारु जलरुहाननं दर्शय**। तुम्हारा मुखारविन्द बड़ा सुन्दर है। **चारु दर्शय, चारु जलरुहाननं दर्शय**। चारु जो है, वह मुखका विशेषण भी है और क्रियाका विशेषण भी है। भली-भाँति दिखाओ और अपने सुन्दर मुखारविन्दको दिखाओ। **जलरुहाननं**। मुखको कमल क्यों बताती हैं? कि **अमृतस्रावी**। भगवान्‌के मुखारविन्दसे अमृतकी धारा बहती रहती है। जैसे कमलमें से कोमलताका अमृत परिस्फुटित होता है, उसी प्रकार भगवान्‌के मुखारविन्दसे रसीलापन अमृत। जो उस मुखारविन्दको देखे, जो छूए, जो सूँघे, जो उसका स्वाद ले, जो उसकी वाणी सुने, वह उस अमृत को प्राप्त करके अमृतमय हो जाये।

इसलिए **जलरुहाननं चारु दर्शय**। ❋

: १० :

प्रेममें प्यास उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। इसलिए गोपियोंने पहली बात यह कही—कि **शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम्।** हमारे सिरपर हाथ रखो। माने दूरसे काम नहीं चलेगा, पास आओ। जब पास आगये, तो? कि **जलरुहाननं चारुदर्शय।** अपने सुन्दर मुखारविन्दका दर्शन कराओ। जब और पास आ जायें, तो? कि **कृणु कुचेषु नः कृन्धिहृच्छयम्।** हमारे वक्षःस्थलपर अपने चरणारविन्द रख दो।

अब आगे बढ़ते हैं। ऐसे भी कोई-कोई बोलते हैं कि जैसे कोई निर्गुण ब्रह्ममें निष्ठा रखनेवाला महापुरुष होवे। उसको अपने हृदयसे लगाकर रखनेके लिए भगवान्‌को कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा। उसके लिए भगवान्‌को अपने ऐश्वर्यको या गुणको प्रकट करनेकी कोई जरूरत नहीं होती। वह भी निर्गुण, बिना किसी प्रयत्नके ही मिले हुए हैं। सात्त्विक पुरुषको मिलानेके लिए भगवान्‌को थोड़ा अपना ऐश्वर्य प्रकट करना पड़ता है। क्यों? कि सात्त्विक पुरुषकी अगर अभी समाधि न लगे, ध्यान न लगे, कोई भगवान्‌का ऐश्वर्य प्रकट न हो, तो उसकी स्थिति भगवान्‌में नहीं होगी। तो सात्त्विक पुरुषको अपनेमें लेनेके लिए भगवान्‌को भी थोड़ा प्रयत्न करना पड़ता है। और राजस हो, तो? बोले— और ज्यादा प्रयत्न करना पड़ता है। वह रजोगुणी है न! उसको भोग भी मिल रहा है, अर्थ भी मिल रहा है। समझो, उदाहरणके तौर पर मैं यह बात कहता हूँ। उसको संसार मिल रहा है। उसमेंसे उसको खींचनेके लिए भगवान्‌को थोड़ा हँसना पड़ता है, बोलना पड़ता है, थोड़ा खेलना

पड़ता है, थोड़ा नाचना पड़ता है। निर्गुण पुरुषसे तो सहज मिलना होता है—जैसे ये शुकदेव आदि हैं न, ये निर्गुण स्थितिमें हैं। इनसे तो भगवान्‌का सहज मिलना है। जो द्वारकाके हैं—वसुदेव, देवकी आदि उनको थोड़ा उपदेश किया, अपने स्वरूपसे मिलना हो गया। और जो राजस हैं, कर्ममें संलग्न हैं, उनको तो खींचना पड़ता है। और जो महाराज, न समाधि जानें, न ब्रह्मको जानें, न उपदेश चले उनके ऊपर? उनके सामने तो भगवान्‌को अपनी समग्र माधुरीको प्रकट करना पड़ता है। माने जहाँ जितना अधिक संसारका भाव होगा, वहाँ उतना ही अधिक भगवान्‌को अपना स्वरूप प्रकट करना पड़ेगा। अज्ञान जहाँ हल्का होता है, वहाँ तो भगवान् हल्का ही रूप प्रकट करके उसको दूर कर देते हैं। और अज्ञान जहाँ बहुत गाढ़ा होता है, वहाँ तो फिर नाचें, गावें, हँसें, खेलें रोवें! हृदयसे लगावें!

श्रीमद्‌भागवतकी व्याख्यामें एक सम्प्रदाय इस प्रकार अधिकारियोंका विभाग कर देता है, ये निर्गुण अधिकारी हैं, ये सात्त्विक अधिकारी हैं, ये राजस अधिकारी हैं, ये तामस अधिकारी हैं। फिर तामस अधिकारियोंमें भी तामस-तामस, तामस-राजस, तामस-सात्त्विकका भेद करते हैं। राजस अधिकारियोंमें भी राजस-राजस, राजस-तामस, राजस-सात्त्विक और सात्त्विक अधिकारियों में भी सात्त्विक-सात्त्विक, सात्त्विक-राजस, सात्त्विक-तामसका भेद करते हैं। निर्गुण जो है, वे सबसे न्यारे होते हैं। निर्गुणके सामने भगवान्‌को अपनी विशेषता प्रकट करनेकी कोई जरूरत नहीं रहती है। जो महाराज, बिलकुल पकड़कर बैठे हैं, हमको तो आँखसे मिलना चाहिए, हृदयसे काम नहीं चलेगा। आओ प्रभु! हमारे चामसे तुम्हारा चाम सटना चाहिए। हमको तो हृदयसे लगना चाहिए, हृदयमें ध्यान करनेसे काम नहीं चलेगा। बुद्धिके, ज्ञानके नेत्रसे देखनसे काम नहीं चलेगा। हम इन आँखोंसे देखेंगे। तो स्थूलमें आगये न! तब

उनके सामने भगवान्‌के निराकार, निर्विकार, निर्गुण ऐश्वर्यशाली रूपकी बात नहीं चलती। वहाँ मच्छ, कच्छ, वराहकी भी नहीं चलती। वहाँ तो उन्हींके समान रूप धारण करके उनका बेटा बनकर, उनका मित्र बनकर, उनका पति बनकर, उनका यार बनकर माने कैसे भी भगवान्‌को अपने प्रेमी भक्तोंको अपनी ओर खींचना ही पड़ता है। जैसे समझो—कि कोई कुएँमें गिरा हो। तो निकालने वालेको भी कुएँमें उतरना पड़ता है। कुएँमें नहीं उतरेगा तो कैसे वह कुएँमें गिरे हुए को निकालेगा? इसी प्रकार संसारमें कोई कैसा भी भक्त होवे, यदि वह भगवान्‌के साथ प्रेम करता है, तो भगवान् उसको वहाँ आकर भी निकालते हैं, उसके साथ प्रेम करते हैं और उसको मिलते हैं। तो हल्के-फुल्के भगवान् कहाँ मिलेंगे? कि निर्गुणियोंके बीचमें; वे भी निर्गुण होकर आगये। लेकिन महाराज, जिनको उतारनेके लिए पूरी तैयारी चाहिए, पूरी सामग्री चाहिए, उनके बीचमें तो अपना पूरा सौन्दर्य, पूरा माधुर्य, पूरा प्रेम, पूरा श्रीविग्रह लेकर आते हैं। इसी दृष्टिकोणको लेकर एक सम्प्रदायमें इसकी व्याख्या इस ढंगसे की जाती है।

अब समझो, एक सम्प्रदायमें तो ऐसा मानते हैं, लेकिन सब सम्प्रदायोंमें ऐसा नहीं मानते हैं। और इसमें भी यह जो तामस है, यह प्राकृत तमोगुण नहीं। राजन माने प्राकृत रजोगुण नहीं, सात्त्विक माने प्राकृत सतोगुण नहीं। यह तो भगवान्‌के भक्तोंकी जो स्थिति होती है, वह प्राकृत तामस वत् होनेके कारण उसको तामस कहते हैं। असलमें वह तामस नहीं है। प्राकृत राजस वत् होनेके कारण उसको राजस बोलते हैं। वह असलमें राजस नहीं है। बाबा, वह तो भगवान्‌के साथ नाच रहा है। दुनियामें पैसेके लिए नाचते हैं, भोगके लिए नाचते हैं, शराब पीकर नाचते हैं। संसारमें किसके-किसके लिए क्या-क्या नाच नहीं करना पड़ता है और एक भगवान्‌के लिए नाचता है। दोनोंकी कभी बराबरी नहीं की जा सकती कि ये दोनों बराबर हैं।

हर्षकी बात है कि श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें सभी प्रकारके

सम्प्रदाय अभीतक एक मत प्राप्त होते हैं। श्रीसम्प्रदाय है, नारायण सम्प्रदय है। ब्रह्माका वैखानस सम्प्रदाय है, रुद्र सम्प्रदाय भी है और सभी सम्प्रदायोंकी किताबें मिलती हैं। यह तो प्रसंगवश मैंने कह दिया।

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम्।
फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम्॥ ७॥

श्रीधर स्वामी सीधे-सीधे परमेश्वरको कहते हैं कि कोई हमारा पाप होगा, इसलिए आप मुखारविन्दका दर्शन नहीं दे रहे हैं। रुकावट होनी चाहिए न! कोई प्रतिबन्धक होना चाहिए। प्रतिबन्धक माने रुकावट, अड़चन। तो बोले कि यदि ऐसी बात है कि कोई पाप हमारे और तुम्हारे मिलनेमें बाधा डाल रहा है, तो उस पापको मिटानेका हम उपाय बता देते हैं।

फणफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुरु। कृणुष्व कुचेषु नः।

हमारे हृदयपर अपना जो अमृतस्त्रावी चरण कमल है, उसकी स्थापना कर दो। अब बाबू लोगोंको तो कहीं-कहीं अश्लील दीखने लगता है। वे खुद जितना अश्लील करें, उसमें कुछ बिगाड़ नहीं। भगवान् कृष्णके नृत्य और रासलीलाका वर्णन हो, तो कहेंगे—अरे राम राम राम राम! यह दो गन्दा है। बाबू लोग ऐसा ही बोलते हैं। न वे संस्कृति को समझें, न सभ्यताको समझें। उनको तो गौरवका अनुभव होना चाहिए कि विलायतोंमें जो हजार दो हजार बरसके भीतर चीज आयी है, उन्नतिकी जो बात—वह अपने यहाँ पाँच हजार बरस पहले थी। हमारा देश तो बड़ा संस्कार-सम्पन्न था। उनको तो खुश होना चाहिए।

तो देखो, गोपियोंकी बड़ी करुणापूर्ण बात सुनाते हैं। कहती हैं—कि आप अपने चरणारविन्द हमारे हृदयपर स्थापित कर दो। क्यों? कि कुछ पाप हैं ऐसे, जो बीचमें आगये हैं, परदा बन गये हैं। वे हमको और तुमको मिलने नहीं देते हैं। तो जब तुम अपना चरणारविन्द हमारे वक्षःस्थलपर रखोगे, तब वे पाप नष्ट हो जायेंगे। भगवान्‌के चरणारविन्दका स्पर्श होते ही सारे पाप मिट जायेंगे।

अच्छा, अब देखो। पहले पाप मिटें, तब भगवान् मिलें कि पहले भगवान् मिलें, तब पाप मिटें? जैसे मल, विक्षेप और आवरण—ये तीन दोष होते हैं न! पहले ज्ञान हो, तब दोष मिटें, कि पहले दोष मिटें तब ज्ञान हो? मल और विक्षेप इनको जिज्ञासुको अपने प्रयत्नसे मिटाना पड़ता है। मल माने पाप-वासना और विक्षेप माने मनो-राग। तो ज्ञान होनेके पहले मल और विक्षेपको मिटाना पड़ता है। अब यह कहो कि साधक निर्दोष हो गया क्या? कि नहीं, निर्दोष नहीं हुआ। अभी तो आवरण है। तो जब ज्ञान होगा, तब आवरणका भंग होगा। ज्ञान होनेसे पहले कोई जिज्ञासु चाहे कि हम आवरणका भंग कर दें, तो ज्ञानके बिना तो आवरणका भंग होवेगा नहीं। ज्ञान होगा, तब आवरण-भंग होगा। इसका मतलब यह हुआ कि जब दूसरेकी ओर अपना मन जाता है, उसका नाम है पाप-वासना और जो चित्तमें चंचलता आती है, उसका नाम हुआ विक्षेप। इन दोनोंको मिटाकर जब ज्ञानस्वरूप भगवान् हमारे हृदयमें प्रकट होंगे, तो आवरण-भंग हो जायेगा, पर्दा मिट जायेगा। और पर्दा मिटे बिना तो वृत्ति और ब्रह्मका जो मेल है—वह नहीं होगा। रसका आस्वादन होगा ब्रह्मात्मैक्य-बोध होकर, आवरण-भंग हो जानेपर। तो ये कहती हैं—हमने तो अपना काम कर दिया है। अब तुम्हारा काम बाकी है। हमारे मनमें दूसरेको पानेकी कोई इच्छा नहीं है। और हमारे मनमें चंचलता नहीं है। वह बिलकुल दृढ़ है, स्थिर है।

नो चेद् वयं विरहजाग्न्युपमुक्तदेह
ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते।

अगर तुमने स्वीकार नहीं किया, तो विरहकी अग्निमें अपनेको जलाकर ध्यानके द्वारा हम तुम्हारी पदवी प्राप्त कर लेंगी। माने अपनी ओरसे तो कोई कच्चाई है नहीं। अब तुम्हारा काम है कि जो आवरण रूप पाप बीचमें आया हुआ है, उसको तुम दूर करो। हम तो मल और विक्षेप दूर करके आयीं। हमने माँ-बापकी शर्म छोड़कर, कुल-कानि छोड़कर,

घरका काम-धन्धा छोड़कर कात्यायनीका व्रत किया और तुमने आकर चीर-हरण किया। अब हम बंसी-ध्वनि सुनकर यहाँ आयीं हैं, तो अब तुम अपना काम करो। तुम्हारे करनेका काम है—

प्रणतदेहिनां पापकर्शनं।

एक तो कर्षन शब्द बनता है मूर्धन्य षकार से, जिसका पेट फाड़ते हैं। दूसरा तालव्य शकार है, जिसका मुँह बड़ा शानदार होता है। एक म के नीचे लकीर खींच देते हैं, तो स हो जाता है। तो पाप-कर्शनमें शानवाला शकार है। इसका अर्थ होता है, कृश करना। कर्षण करना माने होता है खींचना और कर्शन करना माने होता है दुबला-पतला कर देना।

अब देखो, पाप कैसे कृश होता है। एक बात इसकी सुनाकर फिर आगे चलेंगे। **प्रणतदेहिनां पाप-कर्शनं।** जो झुके, प्रणत हो, उसका पाप कटता है। पाप काटनेके दो ही तरीके हैं, तीसरा कोई नहीं है इस दुनियामें। एक तो इतने बड़े हो जाओ, कि पाप उछल- कूदकर तुमको छू न सके, इतने बड़े, इतने बड़े, देश-जाति-मजहब, अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड सबसे बड़े। ज्ञानियोंकी प्रणाली यह है कि वे इतने विशाल हैं, कि उनको पाप-पुण्य, कर्तापन-भोक्तापन, सुखीपना, दुःखीपना छूता नहीं। वे तो हुए ज्ञानी। और दूसरा है भक्त कि इतना छोटा इतना छोटा, कि किसी रस्सीके बन्धनमें आता ही नहीं। उसमेंसे निकल जाता है।

तो यहाँ बताया—**प्रणत देहिनां।** प्रणत कौन है? प्रणत माने नम्र हो गया। अभिमान छूट गया। पापीपने पुण्यात्मापनेका, सुखीपने, दुःखीपनेका जहाँ अभिमान छूटा, वहाँ पाप अपने आप छूटकर गिर गये। सारे पाप अभिमानमें बसते हैं, अभिमान आश्रय है, सहारा है। जैसे घरमें कोई रस्सी लटक रही हो, तो रातके समय कोई मक्खी उसपर आकर बैठ जाती है, वैसे ही महाराज, यह अभिमान जो है न, यह पाप-रूप मक्खीका आश्रय है। इसीपर आकरके ये पाप बैठते हैं। **पापकर्शनं।**

अब भगवान्‌के चरणारविन्दको वक्षःस्थलपर धारण किया, तो पाप कहाँ रहेंगे? देखो, अभिमान अपने आप ही नष्ट हो गया। चरणको वक्षःस्थलपर धारण करना—माने अभिमान नहीं होना, यह तो साफ है। जो अभिमानी होगा, वह किसीके पाँवको अपने हृदय पर काहेको रखेगा? तो अभिमान कट गया। **प्रणतदेहिनां पापकर्शनं।**

अरे भाई! गोपियोंका ऐसा क्या पाप था? बोले—गोपियोंका पाप नहीं था। कृष्ण तो सामने खड़े थे। और हँस रहे थे, नाच रहे थे, गा रहे थे, बजा रहे थे। और ये शीशा लेकर अपना-अपना मुँह देख रही थीं। भगवान्‌का मुँह नहीं, अपना मुँह देख रही थीं। अपने सौन्दर्यका, अपने माधुर्यका दर्पण उनके सामने था। दर्पण माने आईना, शीशा। **दृश्यते अनेन इति दर्पणः।** जिसको देखकर आदमीको दर्प हो जाय, घमण्ड हो जाय। चाहे मुँह टेढ़ा होवे, तो कहेगा—हमारी आँख बहुत बढ़िया है; मुँहकी बात नहीं करेगा। काला हो तो बोलेगा—हमारी कट बहुत अच्छी है। कोई-न-कोई चीज अपनेमें वह ऐसी निकालेगा, कि कहेगा—हमारे सरीखा तो दूसरा कोई है नहीं। तो यह **दृप्यति अनेन;** दर्पण कहते ही उसे हैं, जिससे आदमी चाहे अपनी मूँछ काट ले, तब भी अपनेको सुन्दर माने, बढ़ाले, तब भी सुन्दर माने, मक्खीकी तरह रखे, तब भी सुन्दर। कहीं-न-कहींसे वह उसमें फैशन निकालेगा और बोलेगा—हमारे सरीखा दूसरा कौन? इसीका नाम दर्पण है। **दृप्यति अनेन**—जिससे दर्प बढ़े, उसीका नाम दर्पण। दर्प माने अभिमान। अभिमान जो है, वह तो पाप नहीं, पापोंका आश्रय है।

बोले—अच्छा! इसको मिटाना है तो तुम भागकर मत मिटाओ। यह बात तो परायेपनकी है। अपने आदमीमें कोई गलती हो, तो उसको छोड़कर भाग जाना चाहिए। अपने घरमें कोई पागल हो जाय, तो उसको छोड़कर भागना नहीं। उसको पकड़कर बाँधना, थोड़ा पीटना और थोड़ा ठीक करना। अगर हमारे अन्दर कोई पागलपन आगया है, तो **प्रणत**

देहिनां पापकर्शनं—मार-मारकर ठीक करो न! भाग-भागकर क्यों ठीक करते हो? यह भगौड़ापन कबसे सीख लिया?

कृष्ण आये गोपीके मनमें और बोले—अरी गोपी! हम तुम्हारा पाप नहीं देखते हैं, बाबा! हमको तो हमारे ही पापका डर लगता है। मैं हूँ आजन्म ब्रह्मचारी, नन्द बाबाका बेटा। स्त्रीका स्पर्श करना तो हमारे स्वभावमें नहीं है। हमको डर लगता है; तुमको कैसे छू लूँ? तुमको छूयेंगे तो पाप लगेगा। इस डरसे मैं भागा हूँ।

गोपी बोली—**प्रणतदेहिनां पापकर्शनं**—जो तुम्हारे चरणोंमें एक बार प्रणाम कर लेता है, उसके पाप जब नष्ट हो जाते हैं, तो तुम्हें तो पाप लगेंगे ही कहाँसे? एक बार प्रणाम करने वाला, एक बार शरणागत हो जानेवाला जो है, उसके भी पाप नष्ट हो जाते हैं। फिर तुमको पाप कैसे लगेंगे?

बोले—अच्छा, तो तुम्हारे ही अन्दर अपने सौभाग्यका मद है। तुम्हारे दिलमें पाप बैठा है।

तो बोलीं—ठीक है! **प्रणतदेहिनां पापकर्शनं**। हम तुम्हें प्रणाम करती हैं। अब आओ। अपने चरणारविन्द हमारे हृदयपर रख दो और यह पाप कट जाय।

तो बोले—नहीं गोपियो! तुम्हारा हृदय बड़ा कठोर है। हमारे पाँव बड़े कोमल हैं। फिर तुम्हारी सरीखी गाँवकी गँवार, दही दूध बेचनेके लिए, पानी जमुनाजीसे लेनेके लिए, गोबर पाथनेके लिए दिनभर तुम इधर-उधर भटकनेवाली! हम अपने सुकुमार चरणारविन्दको तुम्हारे वक्षःस्थलपर नहीं रखते। हटो, दूर जाओ।

यह देखो! प्रेममें तरह-तरहकी बात निकलती है। तो गोपियोंने कहा—अच्छा, याद करो। **तृणचरानुगं**—तृणचर माने गाय, बछड़े; उनके पीछे-पीछे चलते हैं। ऐसे तो महाराज! तुम्हारे चरण हैं। तो व्रजके पशुओंसे तुम्हारा इतना प्रेम है कि उनके पीछे-पीछे कंकड़में

चलते हो, पत्थरोंपर चलते हो। क्या गौएँ रास्ते-रास्तेमें घास चरती हैं? बे-रास्ते नहीं जातीं? और तुम नंगे पाँव! भगवान् जूता पहनकर गायोंके पीछे नहीं चलते। आजकल तो महाराज, बड़े आदमियोंके घरमें जूता पहनकर खाया जाता है, जूता पहनकर परोसा जाता है। वैसे नंगे पाँव हों, तब भी जब खानेके लिए जाते हैं तो जूता पहनकर जाते हैं। ऐसा डर रहता है, कि खानेकी मेजके नीचे कोई गंदी चीज होगी, तो पाँवमें लग जायगी।

गौएँ कोई रास्ते-रास्ते नहीं चलती हैं, कोई कोमल भूमिपर नहीं चलती हैं। और तुम उनके पीछे चलते हो। पशुओंसे तुम्हारा इतना प्रेम है! आजकल तो महाराज, कोई किसीसे कह सकता है—कि जब तुम कुत्तेसे इतना प्रेम करते हो तो हमसे क्यों नहीं करते? तो कोई कह सकता है कि नहीं? यह तो आजकलकी बात हुई। अब पुरानी बात सुनें।

जब तुम गायोंसे इतना प्रेम करते हो, बछड़ोंसे इतना प्रेम करते हो, व्रजकी एक-एक चीज तुम्हें इतनी प्यारी है, तो क्या गौओंके पीछे-पीछे जिस धरतीपर तुम चलते थे—पत्थर, कंकड़, बालूसे भरी हुई—उससे भी कठोर हमारा हृदय है क्या? कि तुम वहाँ पाँव रखना पसंद नहीं करते? पत्थरोंवाली धरतीपर चरती हैं न गाएँ तो! यह तो उलाहनेकी भाषा हुई।

अब देखो, प्रेमकी भाषा क्या है। गोपियाँ कहती हैं—कि तुम्हारा हृदय इतना कोमल है, इतना दयालु है, कि तुम गायोंके भी पीछे-पीछे चलते हो। यशोदा मैयाने एक दिन कहा—कि लाला! तुम गायोंके चरानेके लिए बनमें जाते हो, तो कोई बात नहीं। पर गौएँ तो रास्तेसे नहीं चलेंगी न! तो तुम्हारे पाँवमें कहीं कंकड़ गड़ जाय, पत्थर गड़ जाय, कुशा गड़ जाय, काँटा गड़ जाय, तो? तुम जूता पहनकर जाया करो। कृष्णने कहा—कि मैया, तुम बताओ; गुरु नंगे पाँव चल रहा हो, देवता नंगे पाँव चल रहा हो, तो क्या चेले को, पुजारीको उसके पीछे-पीछे जूता

पहनकर मच्च-मच्च करके चलना चाहिए? न बेटा। ऐसा तो नहीं करना चाहिए। यह तो शिष्टाचार नहीं है। कृष्ण बोले—ये गैया मैया हमारी देवता हैं। ये नंगे पाँव जब बनमें घूमती हैं, तो इनके साथमें चरणमें पादुका पहनकर खटाखट, खटाखट कैसे चलें?

एक जगह कई संत बैठे थे ध्यान करने। कोई एक सज्जन आये, तो खड़ाऊँ पहनकर खट्-खट्-खट् करें। एक संतने कहा कि भाई, मुर्दोंकी सभामें यह जिन्दा कौन आगया? अपने गाँवमें एक बात कही जाती है, कि मूर्खोंके क्या लक्षण हैं? तो उनमें एक यह भी है, कि जो धमाधम धरतीपर पाँव रखकर चले, उसको मूर्ख ही समझना। वह ऐटीकेट नहीं जानता है। सब चीजोंकी एक मर्यादा होती है।

भगवान् गायोंके पीछे नंगे पाँव चलते हैं—**तृणचरानुगं**। भगवान्ने कहा कि अरी गोपियो! तुम तारीफ तो बहुत कर रही हो। लेकिन एक तो कह रही हो **पापकर्शनं** और दूसरे कह रही हो **तृणचरानुगं**। माने पापको तो खींच लेते हैं और गायोंकी पीछे चलते हैं। तो क्या हमारे पाँवमें लोगोंके पाप ही इकट्ठे हो गये हैं आ-आकर? और क्या गायोंके पीछे चलते-चलते हमारे पाँव कठोर हो गये हैं? जाओ। तुम हमारे चरणारविन्दको ऐसा खुरारविन्द समझती हो? तो हम तुम्हारे पास नहीं आते।

अब गोपियोंने अपनी बात बदल दी—कि नहीं-नहीं। तुम्हारे चरणोंमें तो श्री निवास करती है—**श्रीनिकेतनं**। वैसे तो भगवान् लक्ष्मीसे यही कहते हैं, किं तुम हमारी छातीपर रहो। इससे भगवान्को बड़ी राहत मिलती है, क्योंकि दर्शन करनेवाले जो लोग आते हैं न, वे भगवान्के मुखारविन्दकी ओर न देखकर छातीकी ओर ही देखकर हाथ जोड़ देते हैं और चलते बनते हैं। लोग लक्ष्मीको ही देखना ज्यादा पसंद करते हैं, भगवान्को देखना कहाँ पसन्द करते हैं? और महाराज! लक्ष्मीजी भी छातीपर आकर बैठ गयीं—कि हम देखती रहेंगी कि कौन इनके पास

आता है। हमारे सिवाय दूसरेको तो छातीसे नहीं लगाते? लक्ष्मीजी प्रेयसी हैं न! यहाँ लक्ष्मीका मतलब है सौन्दर्यकी देवी, मृदुलताकी देवी। मुदिमा माने कोमलता आकरके साक्षात् भगवान्‌के वक्षःस्थलपर बैठी हुई है। बड़ा कोमल हृदय है वह, बड़ी शोभा है। परन्तु लक्ष्मीने कहा—नहीं प्रभु! हम तो आपके चरणारविन्दमें रहेंगे, चाहे हमें भीड़में रहना पड़े, चाहे सौतके साथ रहना पड़े। तो भगवान् बोले—नहीं देवीजी! तुमको चरणारविन्दमें स्थान देना ठीक नहीं लगता है। तुम तो बराबरीकी हो, पाँवमें कैसे रहोगी? तो लक्ष्मीजी रूठकर तपस्या करने लगीं—**यद् वाञ्छया श्रीललनाऽचरत्तपो**। तो गोपियोंने कहा—नहीं-नहीं। तुम्हारे चरणारविन्द तो श्रीनिकेतन हैं।

दूसरी बात यह हुई, कि भगवान्‌ने कहा—हाँ गोपियो! तुमने बहुत बढ़िया कहा। हम तो गायोंके पीछे-पीछे चलते हैं, तो पाँवोंमें धूललगी रहती है और लोगोंके पाप जो हैं, वे बेचारे कहाँ जायँ? वे पाप भी समग्र संसारके हमारे पैरोंमें रहते हैं। भगवान्‌के एक पादमें ही तो समग्र सृष्टि रहती है न! अनैश्वर्य, अवैराग्य, अज्ञान, अधर्म—ये कहाँ जायँगे रहनेके लिए? कौन दूसरा है, जिसका आश्रय लें? तो भगवान् बोले—इसीलिए तुम्हारे वक्षःस्थलपर, तुम्हारे हृदयपर पाँव रखनेमें थोड़ी कठिनाई है।

क्या कठिनाई है?

कि तुम्हारे वक्षःस्थल बड़े सुन्दर हैं। तुम लोग तो केसर लगानेवाली, कुमकुम लगानेवाली हो। हम अपना यह धूल भरा पाँव भला कैसे रख दें तुम्हारे हृदयपर?

गोपियोंने कहा—नहीं-नहीं। तुम्हारे पाँव तो लक्ष्मीके निवास हैं—**श्री निकेतनं**। तुम जब हमारे हृदयपर अपना चरण रखोगे तो उनकी शोभा बढ़ जायगी। हमारा तो रोम-रोम चाहता है कि भगवान्‌के चरणारविन्दका स्पर्श हमें प्राप्त होवे।

बोले—कि सिर्फ शोभा बढ़ानेके लिए हमारे पाँवको चाहती हो?

अपनी शोभा बढ़ानेके लिए? न बाबा! तुम्हारे हृदयमें अभिमान बसा हुआ है। तुम्हारा हृदय बड़ा कठोर है। जाओ-जाओ! हम नहीं रखते।

जैसे साँप दाहिने, बायें दोनों ओर चलता है, वैसे प्रेमी लोगोंकी जो बोलन होती है, वह दाहिने, बायें दोनों ओर चलती है। इसका मतलब प्रेमीको अपने मनसे ही निकालना पड़ता है। प्रेमीकी जबानमें-से कोई मतलब नहीं निकलता।

तो गोपियाँ बोलीं—कि वाह! हमारे हृदयपर रखनेमें तो तुमको आपत्ति है और कालिय नागके सिरपर रखकर नाचे—**फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं। फणिफणार्पित, फणि फण अर्पितं**—वह फणी जो है, कालिय नाग, उसके सहस्र फणोंपर तुमने 'अखिलकलादिगुरुर्ननर्त' नृत्य किया है। असलमें विषय हैं विष और इन्द्रियाँ हैं कालिय तथा इनकी जो सहस्र, सहस्र वृत्तियाँ है, वे हैं मुख। तो आदमीकी जो इन्द्रियाँ हैं न, वे विषयोंकी ओर बारम्बार जाती हैं, उसके विषसे बार-बार विषैली बनती हैं और अपने विषसे हृदयको पीड़ित करती रहती हैं, हृदयको भी विषैला बनाती रहती हैं। यदि भगवान् इसपर आकर विहार करने लग जायँ, नाचने लग जायँ प्रत्येक इन्द्रियपर, तो आँखमें भगवान्‌का रूप नाचे, कानमें भगवान्‌की वंशीध्वनि नाचे, जीभपर भगवान्‌का चरणामृत, अधरामृत नाचे, नाकमें भगवान्‌के अंगकी गन्ध नाचे, त्वचापर भगवान्‌का स्पर्श नाचे। यह जो संसारका आकर्षण है, यह सब-का-सब नष्ट हो जाता है।

तुमने तो कालिय नागके सिरपर अपने चरणारविन्दको अर्पित किया है। कालिय नागमें जो विषैलापन रूप-दोष था, उसे तुमने अपने दोष-निवर्तक चरणोंसे दूर किया।

तो बोले—अच्छा गोपियो! कालिय नागमें तो विष-दोष था। उसको निवृत्त करनेके लिए वहाँ नाचना जरूरी था। तुम्हारे हृदयमें ऐसा कौन-सा दोष है?

बोलीं—महाराज! आपको मालूम नहीं है? हमारे हृदयमें तो बड़ा भारी दोष आकर बसा है। **हृच्छयः**—हृच्छयः माने काम; जो दिलमें सोवे। साँप भी सोता है और यह काम भी सोता है दिलमें। बड़े-बड़े जती-सती-संन्यासी, ब्रह्मचारी समझते हैं, कि काम मर गया। असलमें यह मरता नहीं है, यह सोता रहता है। जब छेड़छाड़ होती है, तब यह जाग जाता है। इसको तो महाराज, कालिय दहमें-से निकालके, यमुना जलमें-से निकालके रमणक द्वीपमें भेजनेका काम श्रीकृष्ण ही करते हैं। जब श्रीकृष्ण आते हैं हृदयमें, तब हृदय रूपी ह्रदसे इस कालिय नागको निकालके हृदयको स्वच्छ जल, निर्दोष बना देते हैं, अमृत बना देते हैं। तो ये कहती हैं—हाँ! जैसे कालिय नागमें विष था, वैसे हमारे हृदयमें **हृच्छय**—काम आकर बैठा हुआ है। इसको काट डालो। अपने चरणारविन्दको हमारे हृदयपर रखो। शंकरजीने भस्म किया था न कामको। यह शंकरजीसे डरकर आया और हमारे हृदयमें बस गया।

देखो! अगर इसको ज्यों-का-त्यों लिया जाय, कोई व्याख्या इसके साथ न जोड़ी जाय, तो क्या यह प्रार्थना आप नहीं कर सकते? अभागा है वह; उसके हृदयमें भक्ति नहीं है, जो यह प्रार्थना करनेमें संकोच करे। अगर आपके हृदयमें काम है और भगवान्‌से आप प्रार्थना करें—कि हे प्रभु! आप अपना चरणारविन्द हमारे हृदयपर रख दो, और हमारे हृदयमें रहनेवाली जो काम-वासना है, उसको काट दो, तो इसमें कौन-सी बात आपत्तिकी मालूम पड़ती है?

अब देखो दूसरी तरफ। इसका भाव क्या है? कि शत्रुके प्रति दया नहीं करनी चाहिए।

जहाँ राम तहाँ काम नहीं, जहाँ काम तहाँ राम।

जब हृदयमें आकर काम बैठ गया, तो ये श्यामसे कहती हैं, कि तुम आकर बैठ जाओ। इसमें एक बात यह है कि श्याम कहें—कि तुम्हारे हृदयमें काम है न! तो हम भी तुम्हारे हृदयमें आकर बैठते हैं।

हृदयमें चरणारविन्द आ जायगा, तो वहाँ बैठा हुआ जो काम है, वह मिट जायेगा। पर ये कहती हैं—कि नहीं! वह ध्यानवाला नहीं चाहिए हमको। **कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम्**में बात क्या कहती हैं वे? कि, भीतर वालेसे हमको संतोष नहीं है। हमको तो बिलकुल ठोस मसाला चाहिए। बिलकुल प्रकट होकर हमारे हृदयपर बाहर-भीतर नहीं, बाहर हमें तुम्हारे चरणारविन्दकी जरूरत है। केवल भीतरवालेसे हमको संतोष नहीं है। माने जब ईश्वर इतनी कृपा करता है कि वह निर्गुणसे सगुण हो जाय, जब वह इतनी कृपा करता है कि निराकारसे साकार हो जाय, तो क्या वह इतनी कृपा नहीं कर सकता कि मनमें-से बाहर आ जाय? जो लोग यह सोचते हैं कि भगवान् मनमें आया है। और बाहर नहीं आता है, वे क्या सोचते हैं? जो चीज मनमें आ सकती है, वह बाहर भी आ सकती है। क्योंकि जो मनमें होता है, वही तो बाहर आता है। भगवान्का दर्शन, भगवान्का मिलना बाहर भी होता है।

केवल एक श्लोक यही अगर आ जाये अपनी धारणामें कि हे प्रभु! हमारे हृदयपर अपना चरणारविन्द रखो और हमारे कामको काट दो, तो यह हृदयकी कामवासनाको मिटानेके लिए काफी है।

अब प्रेमकी बात करें। प्रेमकी बात क्या है? कि कोई आपका मित्र होवे और भूखा होवे। खाना चाहता हो वह खूब, लेकिन संकोची होवे तो आप अगर कहें, कि हमारे दोस्तको भूख लगी है, तो बेचारा सकुचा जायेगा। यह बोलनेकी पद्धति नहीं है। आप अपने साथ उसको बिठाओ और बुलाओ—ऐ, जलेबी ले आओ। रसगुल्ला ले आओ। यह मत कहो, कि यह इनको चाहिए। कहो—कि हमको चाहिए। जब पास आवे, तब थोड़ा तो तुम लो और उसको ज्यादा देनेका इशारा कर दो। तब यह भले मानुस खा लेगा खूब मजेसे। और पहले ही उसका नाम लेकर चिल्लाने लगोगे, तो वह चिढ़ जायेगा तुमसे, कि तुम लोगोंमें हमारी बदनामी कर रहे हो?

गोपियाँ चाहती हैं कि श्रीकृष्णको रस मिले, श्रीकृष्णको सुख मिले, श्रीकृष्ण हमारे पास आवें। हमारा तन, मन, धन सर्वस्व श्रीकृष्णकी सेवामें लग जावे। लेकिन वे यह कहें—कि श्रीकृष्ण! तुम्हारे मनमें बड़ी प्रबल वासना है, अभिलाषा है हमारे पास आनेकी, इसलिए आओ हमारे पास तो कृष्ण कहेंगे—कृपा करो! हमें तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है। तो ये कहती है—**कृन्धि हृच्छयं।** हमारे हृदयमें बड़ा काम है। तुम उसको मिटानेके लिए हमारे पास आओ।

तो असलमें गोपियोंके मनमें काम नहीं है।

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां
स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषाऽपि वः।
या मा भजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः
संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना॥

भगवान् कहते हैं—जन्म-जन्म ब्रह्मनिष्ठकी आयु धारण करके, ब्रह्माकी आयु धारण करके ब्रह्मरूपसे भी यदि मैं तुम लोगोंसे उऋण होना चाहूँ, तो नहीं हो सकता। बोलनेका ढंग हैं यह। ऐसी निष्काम जो गोपी हैं, उनके चित्तमें यह काम कहाँसे आकर बैठा? बोले—काम नहीं, प्रेम है। वे तो श्रीकृष्णको अच्छा भोजन देना चाहती हैं, लेकिन कहती यह हैं कि भूख हमारे हृदयमें है। यह प्रेमकी बोली है।

तो श्री गोविन्दाय नमो नमः।

❋

: ११ :

प्रेम एक अंतर्दृष्टि देता है। बाहरकी आँख बन्द होनेपर भी प्रेमी अपने प्रियतमके सम्बन्धमें सबकुछ देख लेता है। हमारे श्रीउड़िया बाबाजी महाराजके साथ एक ऐसे भक्त थे। बिलकुल पास तो नहीं रहते थे, थोड़ी दूर मील-दो-मील, चार मीलकी दूरीपर रहते थे। वह बाबाजी महाराज का ध्यान करते थे। उनसे पूछो इस समय दिन में दस बजे हैं। उडिया बाबा इस समय क्या कर रहे होंगे? तो बता देते—कि इस समय अमुक आदमीसे बात कर रहे हैं। इस समय खा रहे हैं, इस समय सो रहे हैं। ऐसी वृत्ति तन्मय हो गयी थी कि मीलोंकी दूरी उनके लिए कुछ नहीं थी। आँख बन्द की और देख लिया—कि महाराजजी क्या कर रहे हैं।

प्रेममें अपने प्रियतमके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करनेकी अद्भुत शक्ति है। इसीलिए कहते हैं कि प्रेमी सात तालोंके भीतर बन्द वस्तु को भी देख सकता है। प्रेम जरा सच्चा होना चाहिए।

तो गोपी हैं विरह अवस्थामें। जिनके लिए वे अपना भोग, कुटुम्ब, शरीर, धर्म, जाति, लोक, परलोक—सब छोड़कर आयीं, जिसके लिए उन्होंने सर्वस्व त्याग किया, वही उन्हें ठुकरा कर अंधेरी रातमें जंगलमें छिप गया। अब समझो, आजकलके प्रेमी ऐसा होनेपर क्या करते? ब्याहे होते तो तलाक दे देते। मानहानिका दावा करते—कि इन्होंने हमको डरानेकी कोशिश की। आजकलके लोग तो फालतू ही प्रेमी बनते हैं। सच्चा प्रेम तो किसी-किसीके हृदयमें उदय होता है। यह दिव्य वस्तु है। यह जो प्रेम है, भगवान्‌का प्रेम यह बाजारू चीज नहीं है।

तो देखो, कृष्णकी ओरसे इतना निष्ठुर आचरण होनेपर भी गोपीके हृदयमें ऐसा लगता है, कि श्रीकृष्ण हमारे पास आयें, हमसे प्रेम करें। हमने कहा कि हमारे सिरपर हाथ रख दो, तो रख दिया। हमने कहा कि अपना सुन्दर मुखारविन्द दिखाओ तो हमारे सामने अपना सुन्दर मुखारविन्द प्रकट कर दिया। लेकिन इतनेसे सन्तोष नहीं है, क्योंकि प्रेममें प्यास है। जैसे अपरिच्छिन्न अनन्त ब्रह्मात्मैक्यबोधकी प्राप्तिके लिए व्यक्तित्वका अपवाद करना पड़ता है, वैसे ही अपरिच्छिन्न अनन्त भगवत्प्रेम प्राप्त करनेके लिए व्यक्तित्वका हनन करना पड़ता है। जो प्रेमकी आगमें अपने व्यक्तिगत 'मैं' को, प्रतिष्ठाको, कुल को, जातिको, धर्मको, कुटुम्बको, धनको, अपनी विशेषताको होम नहीं करेगा, वह प्रेमके रास्तेमें नहीं चल सकता। श्रीकृष्णकी ओरसे इतनी निष्ठुरता, इतनी कठोरता करनेपर भी गोपियोंका मन यही कहता है कि कृष्ण हमारे सामने खड़े हैं और उन्होंने मुस्कुराकर आँखसे इशारा किया है—गोपी! हम तो तुम्हारे ही हैं।

यह है प्रेमकी लीला! बाबा, प्रेममें लड़ाई भी होती है, लेकिन कब? जब प्रेममें अपना प्रियतम बिलकुल मुट्ठीमें आ जाये, काबूमें आजाये। तब लड़ाई होती है, और उससे प्रेममें ताजगी आ जाती है। और काबूमें न हुआ, मुट्ठीमें न आया, तब लड़ाई शुरू हो गयी, तो? वह विमुख हो जायेगा न! यह देखो गोपियोंकी अनुकूलता! वे कहती हैं कि हे श्रीकृष्ण! तुम हमारे हृदयपर अपने चरणारविन्दको रखो और जो हमारे हृदयमें सो रहा है काम, उसको नष्ट कर दो।

कल मैंने सुनाया था कि यदि हम इसकी व्याख्या ज्यादा बढ़ावें नहीं, सीधा-सीधा अर्थ करें कि हमारे हृदयमें जो काम है, उसको मिटा दो तो संसारका शुरू-शुरूका जो भक्त है वह भी यह प्रार्थना कर सकता है और जो बड़ा-से-बड़ा भक्त है, वह भी यह प्रार्थना कर सकता है। कैसे? कि काम और प्रेम, ये दोनों परस्पर विरोधी चीजें हैं। जहाँ काम

है वहाँ सच्चा प्रेम नहीं है, जहाँ सच्चा प्रेम है वहाँ काम नहीं है। एक बार महात्मा गाँधीसे किसीने पूछा था, कि रामचन्द्रने सीताके साथ बड़ी निष्ठुरता बरती। उनको घरसे निकाल दिया। नलने दमयन्तीको जंगलमें छोड़ दिया और कृष्णने गोपियोंके साथ बड़ी निष्ठुरता बरती। इतने बड़े महान् पुरुष होकर इन लोगोंने ऐसी निष्ठुरताका बर्ताव क्यों किया? गाँधीजीने कहा—तुमको तो कृष्णकी, नलकी, रामकी बड़ी निष्ठुरता लगती हैं। जरा सीताजीसे पूछो कि तुम्हारे पति कैसे हैं? निष्ठुर हैं कि भलेमानुस हैं। तो सीताजीने यही कहा, कि रामके हृदयमें मेरे प्रति अतिशय प्रेम है। वह तो लौकिक परवशता है, जिसके कारण उन्होंने मुझे छोड़ा। दमयन्तीने कहा, कि नलके हृदयमें हमारे प्रति बड़ा प्रेम है। गोपीने कहा, कि कृष्णके हृदयमें हमारे प्रति बड़ा प्रेम है। यह तो महाराज, अतिरिक्त पक्षपाती लोग हैं न! अतिरिक्त पक्षपाती इसलिए कि गोपीको तो बुरा न लगे, सीताको तो बुरा न लगे, दमयन्तीको तो बुरा न लगे। जिनके हृदयमें सच्चा प्रेम प्रकट हुआ है, उनको तो बुरा नहीं लगता है और दूसरे लोग बुरा कहें! आजकल तो अदालतमें कोई मुकदमा दाखिल करता है, तो वकील लोग पूछते हैं कि तुम कौन होते हो दाखिल करने वाले? तुमको क्या हक है?

तो **हृच्छय**। हृच्छय है प्रेम, हृच्छय है काम, हृच्छय है भगवान्। हृदयमें जो रहे, हृदयमें जो सोवे—उसका नाम होता है हृच्छय। तो गोपियाँ कहती हैं, हृदयमें कृष्ण रहें, हृदयमें प्रेम रहे, लेकिन हृदयमें काम न रहे। इसका मतलब यह हुआ, कि वे यह सोचती हैं—कि हमारे अन्दर ऐसी क्या गलती है, जिसके कारण श्रीकृष्ण हमारे बीचसे अन्तर्धान हो गये?

प्रेमका स्वभाव है **तत्सुखे सुखित्वं**। अपने प्यारेके सुखमें सुखी होना। और कामका स्वभाव है—अपने सुखमें सुखी होना। **नास्त्यैव तस्मिन् तत्सुखे सुखित्वं**। काम उसको कहते हैं, जो अपनेमें-से सुख

निकालकर अपनेमें ले आता है और प्रेम उसको कहते हैं—जो अपनेमें-से सुख निकालकर उसको प्रियतममें स्थापित करता है। तो गोपियाँ कहती हैं कि ऐसा मालूम पड़ता है, कि हम सच्चे हृदयसे तुमको सुखी नहीं करना चाहतीं। हमारे हृदयमें सुख लेनेकी कामना है। इसलिए हमारे कामको देखकर शुद्ध प्रेमके प्रेमी तुम हम लोगोंके बीचमें-से अन्तर्धान हो गये हो। अच्छा तो हमारे हृदयमें काम है। तो इसको दूर करना क्या कठिन है? भक्त लोग तुम्हारे चरणारविन्दका ध्यान करते हैं और काम दूर हो जाता है। लेकिन एक बात है, और अधिकारियोंसे हमारे अधिकारमें कुछ विशेषता है। हम ध्यानके द्वारा तुम्हारे चरणारविन्दको अपने हृदयमें रखकर कामको निवृत्त नहीं करना चाहतीं। हम तो बिलकुल स्थूल शरीरवाली हैं, और तुम्हारे स्थूल चरणारविन्दको अपने हृदयपर रखकर अपनी कामनाको मिटाना चाहती हैं। माने जिस दुनियामें हम रहती हैं, उस दुनियामें हमसे मिलो। केवल मानसिक चिन्तनसे ही हमारा दुःख दूर होनेवाला नहीं है। हमें तो शारीरिक मिलन की अपेक्षा है। पर मिलना चाहिए भगवान्, मिलना चाहिए कृष्ण!

प्रेमैव गोपरामाणां काममित्यगमत् प्रथाम्।
इत्युद्धवादयोप्येनं वाञ्छन्ति भगवत्प्रियाः॥

गोपियोंका जो प्रेम है, वही संसारमें कामके नामसे विख्यात हुआ। इसीलिए उद्धव आदि जो बड़े-बड़े भगवत्-परायण, भगवत् तत्त्वज्ञानी महापुरुष हैं, वे भी चाहते हैं कि गोपियों जैसा प्रेम हमें प्राप्त हो। भागवतमें तो आया है—

वाञ्छन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च।
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य॥

ब्रह्मा होनेमें कोई फायदा नहीं है। हमें तो श्रीकृष्णका प्रेम, श्रीकृष्णका प्रेम चाहिए। प्रेममें बड़ा रस है। वह तो अमृत है और काम

विष है, क्योंकि काम जलाता है और प्रेम अमृत बना देता है। प्रेम अमर बना देता है।

गोपियाँ कहती हैं कि हमारे हृदयमें काम छिपा हुआ है। जैसे कोई पहाड़ोंकी तो बनावे चहारदीवारी और भीतर बड़ी भारी गुफा होवे, और उसमें जानेका दरवाजा कोई आस-पास न हो, सुरंग होवे बड़ी दूरपर। जरा अपने हृदयको देखो न! तो गोपीका जो हृदय है, वह तो पहाड़का दुर्ग है और दरवाजा कहीं नहीं है आसपास। आने जानेके लिए सुरंगें जो हैं—वह भी आँखकी, कानकी-बड़ी दूर हैं और यह काम रूप जो शत्रु है, वह जाकरके हृदयके भीतर छिपा हुआ है। तो गोपियाँ कहती हैं—कि यदि शत्रुको मारना हो, वशमें करना हो, तो पहले जो उसका दुर्ग है, उसका किला है, वही तोड़ना चाहिए। तो तुम अपने चरणारविन्दको हमारे वक्षःस्थलपर मारो—**कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम्।** तब इसके भीतर बैठा हुआ, किलेमें बैठा हुआ जो दुश्मन है, यह काम-यह नष्ट हो जायेगा। आप मन-ही-मन अगर यह ध्यान करें कि कृष्णका जो चरणारविन्द है, वह हमारे हृदयपर है—तो काम नहीं आवेगा। कृष्णका बेटा है काम। तो बापके सामने आनेमें थोड़ा सकुचाता है। ये दुनियाबी लोग जिस कामके चक्करमें नाचते फिरते हैं, भक्त लोग उसको ललकारते हैं।

रे कन्दर्प करं कदर्थयसि किं कोदण्ड टंकारवैः।

अरे काम! तू क्यों आपने हाथको गन्दा करता है धनुष-बाण चढ़ाकर? तुमको मालूम नहीं है?

चेतश्चुम्बित चन्द्रचूड़ चरणध्यानामृतं वर्तते।

हमारा जो चित्त है, वह **चुम्बित चन्द्रचूडचरणध्यानामृतं**— चन्द्रचूड़ भगवान् शंकरके चरणारविन्दका जो ज्ञानामृत है, उसका चुम्बन कर रहा है। क्यों तू अपना हाथ गन्दा करता है, काम!

बात यह है कि यह जो काम है, इसके पास कोई बाण नहीं, धनुष

नहीं। पुष्पधन्वा बोलते हैं इसे, फूलोंके धनुषवाला, और फूलोंके ही बाण हैं। तो इसके ऊपर कोई लोहेके धनुषके ऊपर लोहेका बाण चढ़ाकर चलावे, तो यह उचित कैसे होगा? तो गोपियोंने कहा कि जब यह फूलोंका धनुप बाण लेकर रहता है, तो **पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः**—अपने चरणोंके जो कमल हैं, खिले हुए कमल, उनको हमारे हृदयपर रख दो। फूल-से-फूलका मुकाबला हो जायेगा। भगवान्‌के चरण भी पुष्प हैं और कामदेवका धनुष-बाण भी पुष्प है।

ऐसा समझो—कि कामदेव एक हाथी है। बड़ा मतवाला हाथी है, लोगोंको परेशान करनेवाला। और भगवान्‌के जो चरण हैं, उनमें अंकुशका चिह्न बना हुआ है। अपने चरणारविन्दसे हमारे हृदयपर प्रहार करो, जिसका अर्थ है—तुम्हारे चरणोंमें जो अंकुश है, उससे इस कामरूपी मतवाले हाथीको वशमें कर लो।

आप ऐसे समझो कि भगवान्‌के दाहिने और बायें चरणमें जो सोलह-सोलह चिह्न हैं, उन सभी चिह्नोंके द्वारा कामको वशमें करना।

अब दूसरी बात। काम जरा कमजोर है और श्रीकृष्ण बड़े प्रबल हैं। यह बात आप कैसे ध्यानमें लेंगे? एक श्रुति होती है और एक स्मृति होती है, यह तो आप जानते ही हैं। श्रुति माने वेद और स्मृति माने मनु आदिकी स्मृति। यह निर्णय किया गया है कि जहाँ श्रुति और स्मृतिमें परस्पर विरोध होवे, वहाँ श्रुति प्रमाण होती है, स्मृति प्रमाण नहीं होती। यह जो कामदेव है, यह हृदयमें स्मृतिसे उदय होता है। यह स्मार्त है, स्मार्त। स्मृति, किसीके रूपकी याद करो, किसीके भोगकी याद करो, किसीके शृंगार-प्रधान रहनीकी याद करो। स्मरणसे कामका उदय होता है। इसीलिए संस्कृत भाषामें कामका एक नाम स्मर है, **स्मरः स्मृति समुद्भवः**। यह काम हृदयमें कहाँसे आता है? कि पुरानी बातें याद कर-करके यह लोगोंको ज्यादा सताता है। यह स्मृतिसे पैदा होता है और

श्रीकृष्ण स्मृतिसे नहीं, श्रुतिसे आते हैं। ये दृष्टिसे आते हैं। श्रुतिसे आना माने? सुन-सुनकर—वेदसे, शास्त्रसे, पुराणोंसे, सन्तोंसे सुन-सुनकर इनको अपने हृदयमें भरते हैं। वासनाके सम्बन्धसे हृदयमें काम आता है और साधनाके सम्बन्धसे हृदयमें कृष्ण आते हैं। स्मृतिसे काम आता है और श्रुतिसे, श्रवणसे—**श्रवणं कीर्तनं विष्णोः**—कृष्ण आते हैं। तो दर्शन है प्रत्यक्ष और श्रवण स्मृतिसे प्रबल होता है। ये कहती हैं कि स्मृतिसे हमारे हृदयमें काम आया है। अब श्रुतिसे और दृष्टिसे तुम आओ और हमारे हृदयमें जो काम है—उसको नष्ट कर दो।

असलमें काममें दोष नहीं है। कामका जो विषय है, जिसके प्रति काम है—वह अगर धर्मके विरुद्ध है, तो दोष है। अर्थके विरुद्ध है तो भी दोष है और काम, मोक्षके विरुद्ध है—तो भी दोष है।

धर्मोविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।

इसका अर्थ हुआ, कि पुरुषार्थसे अविरुद्ध जो काम है अपने हृदयमें, वह भगवान्‌का स्वरूप है। आप इसको ध्यानसे देखो; पुरुषार्थके अविरुद्ध माने? जो धर्म-अर्थ-काम-मोक्षका सत्यानाश न करे और केवल भगवत्—सम्बन्धी होवे। जब संसारके विषयोंकी कामना हम नहीं करते तो कामना जो है—वह भगवद् विषयक हो जाती है। और जब कामके अन्दर भगवान् आ जाते हैं, तो कामका चोला फट जाता है। वह दिव्य हो जाता है; कामका दिव्यीकरण हो जाता है। कायाकल्प हो जाता है कामका, जब वह भगवान्‌के साथ जुड़ता है।

असलमें ज्ञान क्या है? यह घड़ेका ज्ञान है, यह मकानका ज्ञान है और यह कपड़ेका ज्ञान है। अच्छा देखो! यह रोशनी जो हो रही है, इससे औरत भी दिख रही है, मर्द भी दिख रहा है। औरत मर्द तो जुदा-जुदा हैं, लेकिन रोशनी जुदा-जुदा है क्या? रोशनी तो एक ही है न! एक ही रोशनीमें दोनों दीखते हैं। एक ही आँखसे दोनों दीखते हैं। ऐसे ज्ञान होता है एक और विषय होते हैं जुदा-जुदा। लेकिन विषयका

जो भेद है, उसको ज्ञानपर आरोपित करके कहते हैं—**घटज्ञानं जातं घटज्ञानं नष्टं, पटज्ञानं जातं पटज्ञानं नष्टं।** विषयका जो आना-जाना है, उसका आरोप ज्ञानपर हो जाता है। इसी प्रकार प्रेम नामकी जो वस्तु है, बिलकुल आनन्द रूप, आह्लादिनी है यह। यह आनन्द रूप जो आह्लादिनी है, वह तो जैसा ज्ञान वैसा ही प्रेम, लेकिन जैसे ज्ञान जो है, वह चोरका होगा तो ज्ञान चोराकार हो जायगा और ज्ञान संतका होगा तो ज्ञान संताकार हो जायेगा। इसी प्रकार यह प्रेम जब संसारके विषयी पुरुषसे होता है, तब वह कामाकार हो जाता है और जब यही प्रेम भगवान्‌के साथ होता है, तब वह विशुद्ध प्रेमाकार हो जाता है। यह तो विषयगत जो गंदगी है, उसका आरोप प्रेममें करनेपर उसका नाम काम हो जाता है और जब विषयगत गंदगी निकलकर वह श्रीकृष्णके साथ जुड़ता है, मुरलीमनोहर पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर जब आकर हमारे वक्ष:स्थलपर क्रीड़ा करने लगते हैं, तब वह काम नहीं रहता है। वह प्रेम हो जाता है।

गोपियाँ कहती हैं कि आप इस कामको नष्ट कीजिए। अब आप कामको देखो! आजकल महाराज, लोग निष्कामताका ऐसा ढोंग करते हैं! एक ब्राह्मण आया एक सेठकी दुकानपर। बोला—सेठजी! आज एकादशी है, पूर्णिमा है, ग्रहण है। आज दान करनेसे बड़ा पुण्य होता है; स्वर्ग मिलता है। सेठजी बोले—कि बाबा, हमको स्वर्ग नहीं चाहिए। हम तो निष्काम लोग हैं। हम बड़े-बड़े महात्माओंका सत्संग करते हैं। हम कोई मामूली आदमी थोड़े ही है! जाओ तुम यहाँसे। न हम एकादशी मानते हैं, न पूर्णिमा मानते हैं। हमारे लिए कोई फर्क नहीं है एकादशी, पूर्णिमामें। रोज भगवान्‌का दिन है, सब जगह भगवान् है। इतनेमें महाराज, एक आदमी आया बाजारका। बोला—सेठजी! अगर तुम हमको पाँच हजार रुपया दे दो, तो ऐसा परमिट तुम्हें दिलावें, कि तुम्हें पाँच लाखकी आमदनी हो जावे। सेठजीने कहा—कि हाँ भाई! यह सौदा

तो बहुत बढ़िया है। लो पाँच हजार। हमें तो पाँच लाखकी आमदनी करवा दो। अब बोले—अब तुम्हारी निष्कामता, सेठजी? कि निष्काम तो है-ही-हैं। निष्काम भावसे इनके घरमें बच्चे भी होंगे, निष्काम भावसे ब्लैक भी करेंगे, निष्काम भावसे घूस भी देंगे। निष्काम भावसे पैसा भी इकट्ठा करेंगे और जब धर्मका काम आवेगा, तब कहेंगे—हम तो निष्काम हैं, हम धर्म काहेको करें? तो ये खुद धोखेमें हैं। लोग रामके गुलाम नहीं हैं, वे लोभके गुलाम हैं, वे कामके गुलाम हैं। जहाँ पैसा मिलना हो, वहाँ तो सकाम और जहाँ धर्म मिलना हो, पुण्य मिलना हो? कि वहाँ निष्काम! यह उलटी निष्कामता है।

आपने सुना होगा न! एकने आकर महात्माके पास प्रणाम किया। महात्माजीने पूछा—भाई, क्यों प्रणाम करते हो? बोले—महाराज, आप बड़े त्यागी हैं। बोले—अच्छा, त्यागीको प्रणाम किया जाता है? बोले—हाँ महाराज! जो जितना बड़ा त्यागी हो, वह उतनाही प्रणाम करनेके योग्य होता है। महात्मा बोले—सेठजी, खड़े रहो। मैं तुमको साष्टांग प्रणाम करता हूँ। सेठ बोले—अरे महाराज, यह क्या करते हो? बोले—तुम हमसे बड़े त्यागी हो। बोले—यह कैसे? कि मैंने तो ईश्वरके लिए संसार छोड़ा। मेरा त्याग तो बहुत छोटा है। और तुमने तो संसारके लिए इतने बड़े ईश्वरको छोड़ रखा है। हमसे ज्यादा त्यागी तो तुम हो। हम तुमको प्रणाम करते हैं। तुम्हारा त्याग तो धन्य है!

तो महाराज, संसारी लोगोंके हाथमें पड़करके निष्कामता कलुषित हो जाती है। निष्कामताकी भी निन्दा होती है। देखो—एक प्रेमकी बात सुनाता हूँ। एक श्रीमतीजी हैं, उनके श्रीमान् हैं। वे अपने पतिके साथ निष्काम भावसे रहती हैं। उनसे कभी साड़ी नहीं माँगती हैं, कभी घरके लिए पैसा नहीं माँगती हैं। कोई कहे—कि अपने पतिदेवसे ले लो न! तो बोलीं—मैं तो उनसे निष्काम प्रेम करती हूँ। तो घरमें जब जरूरत पड़े, तब कैसे करती हो भाई? कि वह पड़ोसी पुरुष है न! उससे जाकर

माँगकर ले आती हूँ। इसका नाम निष्कामता हुआ? अपने पतिसे निष्काम, और पराये पुरुषसें सकाम!

तो निष्कामताका ढोंग पहचानना चाहिए, जो संसारकी तो कामना करते हैं, और भगवान्‌के सामने निष्काम बननेकी कोशिश करते हैं। अरे बाबा! सुदामा कृष्णके पास माँगने न जाता, शाल्वके पास यदि माँगने चला जाता, जरासंधके पास माँगने चला जाता—तो इसमें क्या कृष्णकी इज्जत बढ़ती? नौकरी करें तुम्हारे घरमें और पैसा माँगने जायँ दूसरेके घरमें—कि हमारे मालिक तो हमको पाँच रुपया नहीं देते हैं, तुम हमको उधार दे दो—तो वह नौकर मालिकको बेइज्जत करता है न! तो निष्कामताकी बातको भी अकलमन्दीसे समझना पड़ता है।

तो असलमें अपने प्राणप्यारे श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णको छोड़करके दूसरेके प्रति कामना न आवे—यह निष्कामताका अर्थ है। निष्कामताका यह अर्थ नहीं है कि राधा कृष्णको न चाहे और कृष्ण राधाको न चाहे। श्यामसुन्दर कहें—कि मैया, मैं तुमसे निष्काम हूँ। मैं तुम्हारा दूध नहीं पीऊँगा। फिर? कि बोले—बकरीका दूध पीऊँगा। यह निष्कामता हुई। यह तो यशोदा मैयाका तिरस्कार हुआ। यशोदा मैया बोलें—बेटा, मैं तुमसे कोई काम करनेको नहीं कहती। तुम खड़ाऊँ मत लाओ—क्योंकि मैं तुमसे बिलकुल निष्काम हूँ। तो लाना होगा—तो किससे कहोगी? कि मैं नन्द बाबासे कह दूँगी—कि ले आओ। इसका नाम निष्कामता नहीं होता है।

मैंने सुना है महाराज, कि अपने हिन्दुस्तानसे कोई सज्जन विलायत गये। वहाँ किसी लड़कीका उनसे प्रेम हो गया। हो जाता है न! अकसर लोग जाते हैं,

बैरिस्टर बनने गए, लाए संग में मेम।
तितली सी उड़ती फिरे, हिय में नाहिं प्रेम॥

हो गया प्रेम लड़कीका। तो उसने थोड़े दिनोंके बाद चिट्ठी लिखी,

कि मैं तुमसे निष्काम प्रेम करती हूँ, और मुझे तुमसे कुछ नहीं चाहिए। मैंने तो अपना जीवन तुमको अर्पण कर दिया। फिर उसने लिखा—यह चिट्ठी पाते ही हमको इतना रुपया भेज देना। तो भाई, निष्कामता तबतक होती है, जबतक सम्बन्ध दृढ़ नहीं होता है। एक अपरिचित आदमीसे जाकर कोई चीज माँगना—यह दूसरी बात है और अपने पितासे, अपनी मातासे, अपने पतिसे, अपनी पत्नीसे, पुत्रसे कोई चीज माँग लेना दूसरी चीज है। आप समझो, कोई नौकरी करने आया। बोला—महाराज, हम कम-से-कम तनखाहमें आपका काम कर देंगे। वह तो यह चाहता है, कि एक बार हमको आश्रय मिल जाय, नौकरी मिल जाय। अपनेको बड़ा निष्काम दिखा रहा है। जब नौकरी लग जायगी, जान-पहचान दृढ़ हो जायगी, तब वह एक दिन बतावेगा—हमें लड़कीकी शादी करनी है। हमारे घरमें यह काम है। और आपसे ले लेगा फिर!

तो भगवान्‌के सामने भी निष्कामता कबतक चलती है? कि जबतक भगवान्‌से दूरी होती है। यह व्रजके प्रेमकी बात मैं कर रहा हूँ। यह अयोध्याका प्रेम नहीं है। अयोध्यामें तो अगर रघुनाथ भगवान्‌के पास कोई माँगनेके लिए चला जाय, तो वे कहते हैं—अच्छा भाई! एक बार आगये, तो अब आइन्दा आनेका काम नहीं है।

जेहि जानत जाचकता जरि जाय,
जाचक सकल अजाचक कीन्हें॥

माँगने एक बार गया, फिर दूसरेसे या उनसे कभी माँगनेकी जरूरत नहीं। सब कुछ दे दिया। लेकिन यह कृष्ण जो हैं, महाराज! यह कोई राजा-महाराजा तो है नहीं। यह तो है ग्वाला। यह थोड़ा-थोड़ा देता है; कहता है—रोज आओ हमारे पास। शामको भी आओ, सुबहको भी आओ, दोपहरको भी आओ। तो भाई, एक ही बार क्यों नहीं दे देते? बोले—एक ही बार लेना हो तो लक्ष्मीपति नारायणके पास जाओ, अयोध्याधिपति रामके पास जाओ। हम तो बूँद-ही-बूँद देनेवाले हैं,

क्योंकि हम ग्वाले हैं। दोनों समय दूध हमारे घरसे ले जाओ। हम दोनों समय गाय दूहते हैं। एक दिन लेकर इकट्ठा नहीं करना। तो यह प्रेमकी जो माया है, प्रेमकी जो लीला है, वह बिलकुल न्यारी है।

देखो! यह कैसे समझाया इसमें? भगवान्‌के चरणारविन्द कैसे हैं? कि चाहे तुम यह भाव करो—कि हमारे हृदयपर बाहर रखे हैं या यह भाव करो कि हमारे हृदयमें भीतर हैं। जबतक चरणारविन्दका ध्यान रहेगा, तबतक तुम्हारे हृदयमें संसारके विषयकी कामना नहीं आवेगी। तो इसीलिए बताया—**कृन्धि हृच्छयः**।

अब दूसरी बात कही। **फणफणार्पितं** का अर्थ है दोष निवर्तकं। कालिय नागके अन्दर जो विष था, दोष था, उसको इन्होंने दूर कर दिया। और **श्रीनिकेतनं** का अर्थ है सकल सौभाग्य-भाजन। **तृणचरानुगं** का अर्थ है सुगम। माने गायोंके पीछे-पीछे चलनेवाला सुगम है। और **प्रणतदेहिनां पापकर्शनं**—जो अभिमान छोड़कर आवे, उसके सारे पाप वह मिटा देता है। असलमें भगवान्‌की दृष्टिमें पाप दिखता ही नहीं है। हमारे भगवान्‌के सामने तौबा करनेकी कोई जरूरत ही नहीं होती—कि कान पकड़कर तौबा करो। वे तो बोलते हैं, कि परमात्माकी दृष्टिमें सब परमात्मा हैं। महात्माकी दृष्टिमें सब महात्मा हैं। पापीकी दृष्टिमें सब पापी हैं। जो जहाँ कुर्सी लगाकर बैठा होता है, उसको वहाँसे अपने सरीखा ही यह संसार दिखता है। दूसरेको समझना बहुत मुश्किल नहीं है। जब दूसरा कोई वर्णन करने लगता है—कि यह ऐसा है, यह ऐसा है, यह ऐसा है—तो यह मत समझना, कि वह दूसरेका वर्णन कर रहा है। यही समझना, कि वह अपना ही वर्णन कर रहा है। इसमें स्त्रीलिंग, पुंलिग बनाकर और वर्तमान-भूत-भविष्यकी जो क्रियाएँ हैं, उनको सुधार करके जरा उसको उसीकी ओरसे जोड़दो। जब कोई बोले—कि वह दुष्ट है, तो उसका अर्थ होता है—मैं दुष्ट हूँ। क्योंकि जिसके हृदयमें पाप होता है, उसीको दूसरा पापी दिखायी देता है। अपनी नजरसे

आदमी दुनियाको देखता है। खुद करेगा हजार चोरी और उसको छिपा लेगा। और दूसरा करेगा एक चोरी, तो उसको दुनियामें जाहिर कर देगा। **पापी सर्वत्र पापमाशंकते।** सबकी आत्माभिव्यक्ति होती है। यह आत्मविलास होता है, आत्म-प्रदर्शनी होती है। आत्माकी ही नुमायश होती है यह।

हमारे साईं थे वृन्दावनमें। कहते थे—महाराज, व्याख्यान तो हम बहुत सुनते हैं। कोई बड़ी ऊँची आवाजमें बोलता है। कोई गाकर बोलता है, कोई लच्छेदार भाषामें बोलता है। कोई बड़ी ऊँची-ऊँची युक्तियाँ देता है। कोई बड़े रोचक भाषण देता है। कथा-वार्ता तो बहुत सुननेको मिलती है। तो हम यह नहीं देखते कि यह क्या बोल रहा है। हम यह देखते हैं कि यह कहाँ बैठकर बोल रहा है। इसकी चौकी कहाँ है, इसका आसन कहाँ है। यह खुद परमात्मामें बैठकर सबको परमात्मा देख रहा है? खुद ब्रह्म होकर सबको ब्रह्म देख रहा है? स्वयं दोषी होकर सबको दोषी देख रहा है? स्वयं गुणी होकर सबको गुणी देख रहा है? अगर यह बात समझमें आगयी; मालूम पड़ गया—कि हाँ भाई! यह तो ब्रह्म ही में बैठकर बोल रहा है। वह कहते थे कि उड़िया बाबाजी महाराज हैं न, वे जब बोलते हैं, ब्रह्मदृष्टिसे ही बोलते हैं। उनकी वाणीमें प्रतिक्षण ब्रह्म ही की अभिव्यक्ति होती है। वहाँ दोष नहीं, गुण नहीं; अपना नहीं, पराया नहीं। देखो, कोई दवा होती है, जब उसको शक्कर लगाकर मीठी कर लेते हैं, तो वह कड़वी दवा भी मीठी लगती है। क्या तुम्हारे दिलमें इतनी शक्कर नहीं है? क्या तुम्हारी जबानमें इतनी शक्कर नहीं है, कि जो बोलो, उसको अपने दिलकी और जबानकी शक्कर लगाकर मीठी बना लो। क्या तुम्हारे घरमें कड़वाहट-ही-कड़वाहट है, मिठास नामकी कोई चीज बिलकुल है ही नहीं?

तो **प्रणतदेहिनां पापकर्शनं।** भगवान्‌के चरणारविन्द पाप मिटानेवाले हैं। पाप क्या है? अभिमान ही पाप है, जब आदमी अपनेको

सर्वज्ञ मानने लगता है—कि हम जो सोचते हैं, वह बिलकुल ठीक है, हम जो बोलते हैं, वह बिलकुल ठीक है। स्वामी विवेकानन्दजीने किसीसे कहा—कि जब आदमी ऐसा समझे कि संसार के सम्बन्धमें हमारा जो ज्ञान है, उसमें संशोधनकी कहीं गुंजायश नहीं है, तो समझना—कि वह अज्ञानी है। बुद्धिमानकी बुद्धि प्रतिक्षण विकसित होती रहती है। ब्रह्म और आत्माका जो बोध है, वह तो एकरस है। वह तो परमार्थ है, वह तो अव्यवहार्य है। 'अव्यवहार्य'—शास्त्रमें उसको बोलते हैं।

बोले—गोपियो! तुम ऐसा क्यों चाहती हो, कि मैं तुम्हारे वक्षःस्थलपर अपने चरणारविन्द रख दूँ? बोलीं—

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण।
विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः॥८॥

पहले उलटा अर्थ इसका सुनाता हूँ। जो मीठी चीज होती है, वह सीधी उलटी सारी मीठी होती है। हमारे गाँवमें कहावत है—घीका लड्डू टेढ़ा भला। है तो घीका न! टेढ़ा होय चाहे सीधा होय। तो गोपियाँ बोलीं—श्रीकृष्ण! तुमने हमें पागल बना दिया। ***विधिकरी***—हम तो तुम्हारी किंकरी हो गयीं न! तुम्हारी गुलाम हो गयीं।

बोले—राम राम! तुम हमारी गुलाम क्यों हो गयी? इतने अच्छे वंशमें पैदा हुई, इतनी सुन्दर, इतनी जवान हो। ऐसे तुम्हारे भाई, ऐसे माँ-बाप, ऐसे सास-ससुर, ऐसे पति-पुत्र! और तुम इतनी बड़ी-बड़ी होकर हमारी गुलाम बन गयी?

बोलीं—क्या बतावें! तुमने ऐसा जादू चलाया।

तीन तरहके जादू होते हैं। उनका इस श्लोकमें वर्णन है। उलटा अर्थ सुना रहा हूँ।

मधुरया गिरा। एक तो जो मधुर है, उसको मीठा बोलते हैं। **मधुरेव मधुरं**। मधु शब्दमें प्रत्यय लगाकर मधुर बनता है। एक होता है **मधुराति;**

क्षरति इति मधुरः—जिसमें-से शराब झरती है, वह। मधु माने शहद, मधु माने शराब; कड़वी नहीं, मीठी शराब। स्वादमें भी गला न जले। आदमी समझें—हम शर्बत पी रहे हैं और हो जाय नशा। तो यह तुम्हारी जो वाणी है, वह मीठी शराब है। इसने हमको मोह लिया। जैसे आदमी शराब पीकर नशेमें आ जाता है, वैसे हम तुम्हारी बातें सुनकर शराबके नशेमें आगयीं और तुम्हारी बेदामकी गुलाम हो गयीं। एक बात।

बोले—कि अरी गोपियो! तुम केवल आवाजपर, गलेपर ही जाती हो? बाँसुरी सुन ली, गाना सुन लिया, मीठी-मीठी बात सुन ली। बस, इसीमें फँस गयीं?

बोलीं—कि नहीं। **वल्गु वाक्यया**। बड़ी सुन्दर रचना है वह। इसमें यमक, अनुप्रास, रस, अलंकार, हृदयको गुदगुदानेवाले भाव हैं।

बोले—भाई! ऐसी बातोंसे भी तो मूर्ख लोग ही फँसते हैं। केवल बातोंमें आ गयीं?

तो बोलीं—**बुध मनोज्ञया**। भगवान्‌की वाणी कैसी कि भगवान्‌की वाणीमें तीन गुण हैं। एक तो मधुर है, दूसरे वाक्य-रचना रस, अलंकार, भाव आदिसे ओत-प्रोत, पाण्डित्य पूर्ण है। माने ऐसी वचनावली, जिसमें आकांक्षा, आसक्ति, योग्यता, सौष्ठव-वाणीके समूचे गुण भरे हुए हैं। वाक्य रचना ऐसी-वैसी नहीं होती है वह। पृथु बोलते थे—**सारं सुष्ठु मितं मधु**। सार-सार। एक वैद्यकके ग्रन्थमें लिखा है, कि अगर चार गुण मनुष्यकी वाणीमें होवें, तो उसको रोग न होवे। **सत्यं हितं मितं ब्रूयात् अविसंवादि पेशलम्**। वाग्भट्टने कहा, आयुर्वेदके ग्रन्थमें यह बात कही, कि सच बोलो, प्रिय बोलो, हित बोलो और थोड़ा बोलो। झगड़ेकी बात मत बोलो। और बिलकुल निश्चयात्मक बोलो, तो तुम्हारे जीवनमें बहुत उलझनें नहीं आवेंगी। और उलझने नहीं आवेंगी, तो दिमागपर जोर नहीं पड़ेगा। नसें तनेंगी नहीं और बहुतसे रोगोंसे बच जाओगे। लोग जो झूठ बोल देते हैं, एक झूठको छुपानेके लिए सौ झूठ बोलने पड़ते हैं। किसीके

लिए अहितकारी बोल देते हैं, तो बादमें फिर खौलता है दिल। बहुत बोलते हैं तो नस नाड़ियाँ श्रान्त हो जाती हैं, और झगड़ेकी बात कर लेते हैं। बीमारियाँ जो जीवनमें आती हैं, वे बहुत करके वाणीके दोषसे। जो लोग बोलनेमें सावधान रहते हैं, वे स्वस्थ रहते हैं।

अच्छा! एक तो क्या चाहते हैं आप?

जो बोल रहे हैं।

बोल तो बहुत रहे हैं, पर क्या चाह रहे हैं? जरा एक शब्दमें बतलाइये तो, कि आपकी आकांक्षा क्या है? और जो आकांक्षा आपकी है, उसको प्रकट करनेकी योग्यता आपकी शब्दावलीमें है कि नहीं? और आप प्रसंगानुसार बोल रहे हैं कि नहीं? खानेके समय मरनेकी चर्चा करने लगे। कई बार ऐसा होता है कि भोजनके लिए बैठे हैं, तो कोई आ जाते हैं न! तो बताने लगते हैं कि हमने जुलाब लिया था तो कितनी टट्टी हुई। अब बोलनेका अवसर भी तो देखना चाहिए न, कि किस समय कौन-सी बात करनी चाहिए। तो बोलनेका ढंग होता है। उसमें आकांक्षा होती है, योग्यता होती है, प्रसंग उसका होता है, आसक्ति। उसमें सौष्ठव होता है, शब्दालंकार होता है, अर्थालंकार होता है। रस होता है, भाव होता है। कृष्ण जो बोलते थे, वैसा बोलते थे।

और **बुधमनोज्ञया**। कहाँ व्यंग्यसे अर्थ निकलेगा और कहाँ लक्षणासे अर्थ निकलेगा। अभिधा वृत्तिसे, लक्षणा वृत्तिसे, व्यंजना वृत्तिसे अर्थ; कहाँ कैसे है—समझना चाहिए।

एकके घरमें मेहमान आया। खाना नहीं चाहता था वह। घरके मालिकने कहा—दो ग्रास खालो। अब मेहमान जाकर बैठ गया। दो ग्रास मुँहमें डाले, और बस! कि क्यों? कि तुमने कहा था कि सिर्फ दो ग्रास खाना। बोले—अरे बाबा! हमारा मतलब यह था कि दो ग्रास तो आप खायें ही, उसके साथ और भी थोड़ा खायें। यह कौन-सी लक्षणा है? अजहल्लक्षणा बोलते हैं इसको वेदान्ती। दो ग्रासको छोड़ो मत। थोड़ा-

सा और भी खाओ। माने जो वाक्यार्थ है—दो ग्रास, सो तो है ही। उसके साथ और ज्यादा खाओ; यह इसका मतलब है।

एक बार महाराज, काशी विद्यापीठमें एक मद्रासी लड़का पढ़ता था। उसको हिन्दीमें किसीने चिट्ठी लिखी। उसमें लिखा कि तुम्हारे पिताजीकी मृत्युका समाचार जब मैंने सुना, तो मुझे तो जैसे बिच्छू डंक मार गया! अब बेचारे मद्रासी लड़केको तो मालूम नहीं था कि 'बिच्छू डंक मार जाना'का मतलब क्या है। उसने झट हिन्दीकी डिक्शनरी निकाली। बिच्छू पढ़ा, डंक पढ़ा और मार गया पढ़ा। उसने कहा—अरे राम राम! हमारी चिट्ठ मिली और उसे बिच्छू डंक मार गया। बड़ी तकलीफ हुई बिचारेको। अब देखो, बिच्छू डंक मार गया—इसमें लक्षणा है। बिच्छूको छोड़ो, डंकको छोड़ो; बिच्छू डंक मार गया—इसके समान दुःख हुआ। केवल दुःखसे तात्पर्य है, बिच्छू और डंकसे तात्पर्य नहीं है न! तो यह क्या हुआ? कि इसका नाम जहल्लक्षणा है।

तो **बुधमनोज्ञया**। जो पंडित लोग होते हैं, वे कभी अभिधा वृत्तिसे संतुष्ट होते हैं, कभी लक्षणा वृत्तिसे और कभी व्यंजना वृत्तिसे संतुष्ट होते हैं। तो पंडित लोग जिसको सुनकर खुश हो जायँ, ऐसी वाणी है श्रीकृष्णकी।

अब बोले—नहीं। ऐसी नहीं। **मधुरया गिरा वल्गु वाक्यया**। अलगाओ, तब पता लगेगा। **अबुध मनोज्ञया**—बाबा! न तो तुम्हारी वाणीमें वाक्य-रचना अच्छी और न तो वह पण्डितोंको अच्छी लगे। बस, केवल कानमें शराब उँडेल करके हम लोगोंको बेहोश कर दिया। बेहोश करके बेदामका गुलाम बना लिया। इसीलिए तो हम बेचारी जंगल-जंगल मारी-मारी तुम्हारे लिए भटक रही हैं।

तीन चीजें चाहिए; **पुष्करेक्षण, मधुरया गिरा** और **अधर सीधुनाऽऽप्यायस्व नः**। जिस कारणसे रोग हुआ है, वह कारण दूर होना चाहिए। तो एक तो तुम्हारी आवाज इस समय सुननेको नहीं मिलती है,

तो वह सुननेको चाहिए। और तुम्हारी पुष्करेक्षण—कमलके समान जो आँखें हैं, वे देखनेको नहीं मिल रही हैं; वे चाहिए देखनेको। और तीसरे अधरामृत चाहिए। ये तीन बातें गोपियोंको चाहिए। माने जिसके बिना हम बेहोश हो रही हैं, वह चीज हमें चाहिए।

तो **दृष्टव्यः वक्तव्यः आप्यायितव्यश्च**। गोपियाँ कहती हैं कि तीन प्रकारका व्यवहार हमें तुम्हारे साथ करना पड़ेगा। अब इस गीतका पहले सीधा-सादा अर्थ जानना चाहिए।

हे पुष्करेक्षण! हे वीर! पुष्करेक्षणका अर्थ है—जिसकी आँखें कमलके समान कोमल, शीतल, सुन्दर, बड़ी-बड़ी, रंगीनी लिए हुए हों; माने सर्वांगसुन्दर इसका अभिप्राय है। आँखकी सुन्दरताके वर्णनका अर्थ है सर्वांगसुन्दरता। क्यों? कि जिसका ज्ञान सुन्दर होवे, उसका सम्पूर्ण जीवन सुन्दर हो जाता है। और शरीरमें ज्ञानका प्रतीक आँख है। जिसकी जानकारी शुद्ध है, उसका जीवन शुद्ध है। जिसकी आँख सुन्दर है, उसको सब सुन्दर ही दिखता है।

कई लोग होते हैं, अपनेको तो बड़ा सुन्दर मानते हैं, पर दूसरोंको कुरूप।

सबै गँवारिन गाँव की गईं आँख सन लेप।

बिहारीका दोहा है यह। एक गाँवमें नई बहू आयी। गाँव भरकी गँवारिन उसका मुँह देखनेके लिए आयीं। तो *मुकुर कपोलन तेज,* उसका जो कपोल था, वह शीशेकी तरह था बड़ा चमकदार। तो जो गँवारिन देखे, उसको तो अपना ही मुँह उसके चेहरेमें दीखे। तो बोलीं—ऐं! इसमें क्या रखा है! हमारे ही सरीखी तो है।

सुन्दरता वह है, जिसको देखकर मनमें वासनाका नहीं, शान्तिका उदय होता है। यह हमारी पुरानी परिभाषा है। सीता-राम दोनों विवाहके समय भाँवर दे रहे हैं।

सीय राम कल भाँवरि देहीं। उपमा कहि न जात विधि केहीं॥

वर्णन करते हैं कि—

राम सीय तनकी परछाँहीं।
जगमगाति मनि खम्भन माँहीं॥

मणियोंके खम्भे बने हैं, और उनमें सीता, राम दोनोंकी परछाईं पड़ती है। तो परछाईं कैसी है? कि—

मनहुँ मदन रति धरि बहु रूपा।
देखहिं राम विवाह अनूपा॥

सीताराम तो हैं बिम्ब। बिम्बके साथ तो रति और कामकी उपमा नहीं दी, प्रतिबिम्बके साथ दी। परछाईं कौन हैं? कि रति और काम हैं। लेकिन वे इतना सकुचाते हैं सीता और रामके सामने आनेमें, इतना संकोच है उनके मनमें कि—

दरस लालसा सकुच न थोरी।
प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी॥

सीताराम जब सामने आते हैं, तब वे छिप जाते हैं। जब दूसरी तरफ जाते हैं, तब उनकी परछाईं दिखने लगती है। माने जब सीता रामका सौन्दर्य आँखोंके सामने है, वहाँ रति और काम नहीं है।

सुन्दरता कहँ सुन्दरता करई।
छबिगृह दीपसिखा जनु बरई॥

जैसे एक छविका, सुन्दरताका गृह है और उसमें दीयेकी लौ प्रज्वलित हो रही है। ऐसी सुन्दरता!

सुन्दरता कहँ सुन्दर करई।

सुन्दरताको भी सुन्दर बनाने वाले।

*

: १२ :

सौन्दर्य उसको कहते हैं, जिसको देककर चित्तमें शान्तिका उदय होता है। **पुष्करेक्षण, पुष्करे इव अक्षि दीप्तियत्।** पुष्कर माने कमल। जो सूर्यकी किरणोंसे पुष्ट होता है। उसका नाम पुष्कर। सूर्य-विकासी कमल। तो भगवान्‌की आँखें कैसी हैं? कि पुष्टि देने-वाली हैं। पुष्टि देनेवाली माने जिसकी-जिसकी ओर भगवान् देखते हैं, उसके हृदयमें प्रेमकी पुष्टि हो जाती है। एक बार भगवान् किसीकी ओर देखें, तो उसके हृदयमें उसका प्रेम परिपुष्ट हो जाता है। इसलिए भगवान्‌के नेत्रोंको पुष्कर कहते हैं। उनका वर्णन ऐसे करते हैं—

अमिय हलाहल मद भरे।

भगवान्‌की आँखोंमें अमृत है, विष है और नशा भी है, मद भी है। ***श्वेत श्याम रतनार।*** श्वेतिमा जो है आँखोंमें, वह अमृत है। श्यामता विष है और जो रतनारे हैं, रेशमी, लाल-लाल, वह है मद। नशा।

जियत मरत झुकि झुकि परत,
जेहि चितवत इक बार।

भगवान् जिसकी ओर देख लेते हैं, वह मरा हो तो जिन्दा हो जाता है और जिन्दा हो तो मर जाता है। ***झुकि झुकि परत***—झूम-झूमके गिरने लगता है। भगवान्‌की जो आँखें हैं, अमृत उनमें-से झरता है, पुष्टि उनमेंसे गिरती है। सौन्दर्यामृतका प्रवाह उनमें-से निकलता है। और एक गुप्त बात प्रकट करता हूँ। चौकन्ने हो जाओगे न!

अगर आपका ध्यान न लगता हो, तो आप ध्यानमें भगवान्‌की आँखसे आँख मिलावें। जहाँ आँखसे आँख मिली और ध्यान लगा। भगवान्‌की भी पलकें गिरती हैं। उनकी चितवनमें भी बाँकपन है। उनकी पुतली भी घूमती है और वह बड़े प्यारसे आपको बुला रहे हैं। देखो, आपका ध्यान लग जायेगा।

गोपियाँ तो कहती हैं कि—

लाज लगाम न मानहिं, नैनाहूँ बस नाहिं।
ये मुँह तुरङ्ग लौं ऐचतहू चलि जाहिं॥

जैसे कोई मुँहजोर घोड़ा होवे और लगाम भी लगी होवे; खींचो, उधर मत जाओ, ऐचतहू चलि जाँही। खींचते रहो, फिर भी घोड़ा उधरको बढ़ जाता है। तो महाराज, जो आँखें हैं, *ये लाज लगाम न मानहिं,* लाजकी लगाम नहीं मानतीं। सूरदासने गाया है।

नैना रे, चितचोर बतायो।
तुमहिं रहत मौन रखवारे, बाँके वीर कहायो॥
घरके भेदी बैठि द्वार पर बिनहिं घर लुटवायो।

चित्तके रत्नकी चोरी हो गयी। तो जब आँखें कृष्णकी आँखोंसे मिलती हैं, तो प्रेमको पुष्टि मिलती है।

तो कृष्ण एक तो आँखोंसे चितवनसे प्रेमकी वर्षा करते हैं और दूसरे भगवान्‌की वाणी है हमें मस्त करने वाली। ऐसा वर्णन आया है कि जब श्रीकृष्ण भगवान् बोलते थे, तो उनकी जो बड़ी-बड़ी आँखें हैं, वे कुछ ऊपरको उठ जाती थीं। अमृतरससे एक-एक शब्दको पहले तर करते हैं। जैसे रसगुल्लेको चाशनीमें तर कर देते हैं, वैसे अपने शब्दरूपी रसगुल्लेको मधुकी चाशनीमें बिलकुल तर करके बोलते हैं। **मधुरया गिरा।** बोलनेसे मालूम पड़ जाता है कि इसके भीतर कड़वाहट भरी है। सब्जीमें स्वाद आता है न! हम लोग लोगोंके घरोंमें कभी भोजन करने जाते हैं। लोग बहुत झूठ बोलते हैं—हमारे

घरमें लहसुन नहीं आता, हमारे घरमें प्याज नहीं आता। लेकिन हम लोग पहचान जाते हैं। कहीं-न-कहीं तो उसकी गन्ध आ ही जाती है। तो जब दिलमें-से उबास निकलती हो, तो कितना भी छिपाओ, जबानमें कड़वापन आ जायेगा। और दिलमें मिठास होगी तो जबानमें मीठा आ जायेगा। **मधुरया गिरा।**

तो भगवान्‌की वाणी आनन्दरूपिणी है। भगवान् सच्चिदानन्द रूप हैं और उनकी वाणी भी सच्चिदानन्द रूप है—**मधुरया गिरा।** तो अपनी आँखोंसे प्रेमकी वर्षा करते हैं और अपनी वाणीसे आनन्द देते हैं। एक-एक शब्द जब कानमें उँडेलते हैं, तो वे मधुमें, शहदमें, शराबमें सराबोर कानोंके रास्ते सीधे ही दिलमें पहुँच जाते हैं।

वल्गु वाक्यया। और फिर? कि वाक्य-रचना जो है, कैसी बढ़िया है—**अमृत रसानि। पदार्थभंगी वल्गु।** और अपने दिलको जाहिर करनेके लिए उनका जो ढंग है! अरे, ढंगमें ही तो सारा रंग है। बात तो वही कही जाती है।

एकने कहा—कि देखो! तुम्हारे पतिदेव आ रहे हैं। एक दूसरीने कहा कि तुम्हारा खसम आ रहा है। बोलनेमें फर्क पड़ जाता है। **वल्गु वाक्यया।** जो रचना सुन्दर होती है, वह टिकाऊ होती है। और **बुध मनोज्ञया**—जिसको सुनकर विद्वान् भी आनन्द-मग्न हो जाये। तो भगवान् स्वयं सच्चिदानन्द हैं और उनकी वाणीमें भी आनन्द, सत्ता और ज्ञान भरपूर है। ऐसी ही भगवान्‌की यह वाणी।

अब तीसरी बात जो बोलती हैं, देखो—**विधिकरीरिमा वीर मुह्यति।** 'वीर' शब्द तो व्रजमें स्त्रियोंके लिए भी चलता है। आप तो जानते ही होंगे। वहाँ एक गोपी दूसरीको 'अरी वीर' 'अरी भटू' कहकर सम्बोधित करती है। तो वीर माने सखी, सहेली। पर यहाँ वीर शब्दका अर्थ है दयावीर, दानवीर ऐसे! दो तरहसे इसका सम्बन्ध जोड़ो। पहला; ऐसी जो परमानन्द देनेवाली परम प्रेममयी जो तुम्हारी वाणी है, उससे

हम तुम्हारी विधिकरी हो गयी हैं, आज्ञाकारिणी हो गयी हैं। तो जब कोई अपना आज्ञाकारी हो जाये, दास हो जाये, सेवक हो जाये और बेहोश हो जाये तो जैसे सेवकका धर्म होता है स्वामीकी सेवा करना, वैसे स्वामीका धर्म भी तो होता है न! सेवककी सेवा करना। तो **भज सखे भवत्किङ्करी स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय।** तो हम मोहमें पड़ गयी हैं। मोहमें पड़ गयी हैं माने बेहोश हो गयी हैं। तो तुम हम लोगोंकी सेवा करो।

अब दूसरी बात देखो!

मधुरया गिरा वल्गु वाक्यया बुधमनोज्ञया मुह्यति।

हम मोहमें पड़ गयी हैं, बेहोश हो गयी हैं।

—कि कैसे बेहोश हो गयीं?

—कि तुम्हारी वाणीने हमको बेहोश किया। इसीसे हम सब सुध-बुध भूल करके तुम्हारी आज्ञाकारिणी हो गयी हैं। ये जो वाणीके विशेषण हैं—**मधुरया गिरा।** बड़ी मीठी है। यह आनन्द देनेवाली है। लेकिन **अवल्गुवाक्यया।** देखो, गोपियोंने क्या कहा? कि अरे, तुमको अभी बोलनेका ढंग नहीं आता, यही मतलब निकला।

अबुध मनोज्ञया। प्रेमीलोग ऐसे ही बोलते हैं। जिस दिन वे कह दें—कि तुमको बोलनेका शऊर नहीं है, उस दिन समझना कि आज किसी बातपर वे बिलकुल रीझ गये हैं। अब यह बात भी कोई कहनेकी है? राम राम राम! **अबुध मनोज्ञया** का अर्थ है—इससे तो अज्ञानी भी मोहित हो जाते हैं, तो ज्ञानियोंकी तो कथा ही क्या! अरे बाबा! अज्ञानी मोहित होते हैं, ज्ञानी लोग थोड़े ही मोहित होते हैं तुम्हारी बातोंसे। बेवकूफोंको बेवकूफ बनाते हो तुम। समझदार लोग तुम्हारी बातोंमें थोड़ेही आ सकते हैं।

अब इसका व्यंग्य बता देता हूँ। **बुधानामपि मनोज्ञया ज्ञानिनाऽपि।** ज्ञानी लोग भी जब इसको बहुत सुन्दर अनुभव करते हैं, तो जो प्रेमी हैं, भक्त हैं, उनको मीठी लगे—इसमें क्या सन्देह है?

तो बोलीं—न न! **अबुध मनोज्ञया।** हम तुम्हारी नस-नस पहचानती हैं। जो न जानते हों तुम्हें उनको यह अच्छी लगेगी।

—तो आखिर आप चाहती क्या हैं?

जब आदमी बेहोश हो जाता है, तब मन्त्र पढ़ते हैं, कि यह होशमें आ जाये। तो **मधुरया गिरा, वल्गुवाक्यया।** गोपियाँ कहती हैं, कि अब हम नशेमें बेंहोश हो रही हैं। आओ, तुम हमारे कानमें कोई मंत्र पढ़कर हमको जिन्दा करो। एक बात!

पुष्करेक्षणः—जब आदमी बेहोश होने लगता है तो उसके हृदयपर कमल वगैरह ठंडी चीज रखते हैं। तुम अपनी चितवनका कमल हमारे हृदयपर रख दो। और फिर कोई दवा पिलाते हैं, तो **अधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः।** कभी-कभी अमृत पिलाना पड़ता है। कभी-कभी बड़ा गुप्त जो रसायन होता है, वह भी देना पड़ता है। श्री वल्लभाचार्यजी महाराजकी व्याख्याका समूचा भाव मैंने करीब-करीब सुना दिया।

अधरसीधुना—अधरामृत। एक धरामृत होता है, धरतीपर जो अमृत है। और यह भगवद्रूप अमृत है। इसको ऐसा नहीं समझना कि यह कोई मुँहका लार, लौकिक अमृत है। यह तो अधर है। यह धर्मसे ऊपर है, इसलिये इसका नाम अधर है। यह धरतीसे ऊपर है, इसलिये इसका नाम अधर है। यह स्वर्गीय अमृतसे भी श्रेष्ठ है। तो यह दवा हमको पिलाओ।

तो कुछ पिलाओ, कुछ लेप करो और कुछ मंत्र पढ़ो। ये तीन बातें करनेसे हमारी जो बेहोशी है, वह दूर हो सकती है और इसमें उदारता करो, कंजूसीसे काम नहीं चलेगा। इसके लिए 'वीर' सम्बोधन है।

अब आपको **तव कथामृतं** सुनाता हूँ।

तव कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥ ९॥

बोले—भाई, देखो! यह सब बात होती है वहाँ, जहाँ प्रेम होवे। जहाँ प्रेम नहीं है, उसके लिए हृदयमें मिठास कैसे आवे? जैसे देखो, जल देखकर जल बढ़ता है। मैंन सुना है कि समुद्रमें जितनी वर्षा होती है, उतनी वर्षा धरतीपर नहीं होती है। धरतीपर भी जहाँ पेड़ोंकी, पत्तोंकी हरियाली होती है न, वहाँ जितनी वर्षा होती है, उतनी सूखी धरतीपर नहीं होंती। तो जल देखकर जल बढ़ता है। प्रेम देखकर प्रेम बढ़ता है। कोई डंडा लेकर तो प्रेम नहीं करा सकता।

एक राजा था पुराने जमानेमें। उसने पाँच-सात जनोंको कैद कर रखा था। स्वतन्त्र थे न राजा लोग अंग्रेजोंके जमानेमें। जेलमें डाल दिया—कि तुम्हें हमसे प्रेम करना पड़ेगा। रोज अपने सामने हाजिर करवावे और लेकर कोड़ा तैयार! अब भला बताओ, कहीं कोड़ा मारकर प्रेम किया जाता है?

बोले—भाई! दुःख देखकर प्रेम आवे? तो दुःख देखकर दया आती है, प्रेम नहीं आता। प्रेम खींचनेका तरीका है प्रेम। मीठा करनेका तरीका है मिठास। तो अब गोपीके मनमें फिर कृष्ण प्रकट हुए। बोले—कि तुम प्रेमकी बात तो बहुत करती हो। डाँट रही हो, फटकार रही हो। लेकिन प्रेमीका एक जो लक्षण है, वह तो तुम्हारे अन्दर दिखता नहीं। कि क्या? कि यह बताओ! मेरा इतना प्रबल विरह होनेके बाद भी तुम जिन्दा हो। और बनती हो प्रेमी!

बोलीं—कि हाँ, यह तो हमारे प्रेमका कलंक ही मालूम पड़ता है। लेकिन इसमें हमारा दोष नहीं। तब कथा माने तुम्हारी वाणी, **तव कथा अमृतं भवति इति अत्र वक्तव्यं। तव सम्बन्धिनी अन्य कर्तृका तथापि अमृतं भवति।** तुम अगर बोलते रहो और कानमें तुम्हारी आवाज पड़ती रहे, तो कानके रास्ते वह अमृत पी-पीकर हम जिन्दा हैं। इसके बारेमें तो कहना ही क्या है! अगर तुम्हारे बारेमें दूसरा भी कोई बोलता है, तो ऐसा अमृत, ऐसा अमृत उसमेंसे निकलता है, कि

वह पी-पीकर हम जिन्दा रहती हैं। **तव विरहे प्राप्त एव मरणं किन्तु त्वत्कथां पाययद्भिः वञ्चिता वयम्।** उसने हमारी मौत को ठग लिया। मौत आयी थी हमको मारनेके लिए, लेकिन बड़े-बड़े महात्मा लोग हैं, ये तुम्हारी कथा सुनाने लगे। कथा सुनते-सुनते हम तन्मय हो गयीं। कभी एक गोपी ही दूसरीको सुना रही है। कभी पौर्णमासी ही सुना रही हैं। तुम्हारी चर्चा चल गयी और विरहका समय कैसे बीत गया—इसका पता ही नहीं चला।

बोले—गोपियो! मेरी कथा अमृत है?

—कि अमृत नहीं है, अमृतसे बढ़ कर है।

अब अमृतसे जो व्यतिरेक है कथाका, वह हम पहले श्रीधर स्वामीके अभिप्रायके अनुसार बताते हैं। बादमें और भी बताते हैं कि गौड़ेश्वर सम्प्रदायमें कैसे मानते हैं और वल्लभाचार्यजी सम्प्रदायमें कैसे मानते हैं।

तो 'कथा' माने क्या है? जो थकानके विपरीत हो। अगर कथा नहीं सुनोगे, तो बैठे-बैठे थक जाओगे, काम करते-करते थक जाओगे। **हरि कथा-कथा, और सब वृथा व्यथा।** भगवान्‌की जो कथा है, वह तो कथा है। और सब व्यर्थ है, वृथा है। व्यथा है, व्यथा, पीड़ा। संसारमें जो ताप है, उसको मिटानेवाली तो यही है। कथा अमृत है, **नास्ति मृतं मृयुर्यस्मात् तत् अमृतं।** जिसका सेवन कटनेसे मृत्यु नहीं होती। आदमी मरता नहीं। प्राचीन कालमें एक हजार बरसका एक यज्ञ किया गया था, ऐसा वर्णन मिलता है। कथा सुननेके लिए जो लोग संकल्प करके बैठे थे, वे कथाके अन्दर नहीं मरे, माने जबतक कथाका संक्लप पूरा नहीं हुआ, तबतक उनकी मृत्यु नहीं हुई।

असलमें मर गया वह, जो दुनियाके प्रेममें फँस गया और अपने दिल-दिमाग और खोपड़ीको छोड़ दिया अलग। मरना तभी कहते हैं न—कि खोपड़ी तो पड़ी हो बालू में और जीवात्मा निकलकर चला

जाये नरकमें या स्वर्गमें या दूसरे जन्ममें। वह आदमी मरा हुआ है, जो अपनी खोपड़ीमें बैठे हुए अपने परम प्रियतम परमात्माका चिन्तन छोड़कर निकल गया, बाहर गया। कहाँ घूम रहा है? बाजारमें, चौपाटीपर गया है चाट खाने। चौपट हो गया, चौपाटी माने चौपट। तो यही मृत्यु है। इससे बचाती है कथा। प्रेम लोग कथा सुन-सुनकर प्रियतमकी लीलामें, उनके रूपमें, उनके गुणमें, उनके सौन्दर्यमें मग्न हो जाते हैं। यही उनका जीवन है। अरे देखो भाई! जुएमें कभी तुम्हारा समय बीत जाता है। गप्प हाँकनेमें, अमेरिका-रूसकी चिन्ता करनेमें आजकल मनुष्यका दिमाग खराब होता है न! सारा समय बर्बाद हो जाता है। करना कुछ नहीं।

मैंने पढ़ा था, एक मित्र-मित्रमें संवाद हुआ। एकने दूसरेसे पूछा—कहो मित्र! तुम्हारे घरमें लड़ाई-झगड़ा नहीं होता है? बड़े प्रेमसे तुम लोग रहते हो। इसका कारण क्या है? दूसरे ने कहा—भाई! हम लोगोंने बँटवारा कर लिया है कि किस विषयमें किसकी चले। कुछ विषय ऐसे हैं, जिनमें पत्नीकी चलती है और कुछ विषय घरमें ऐसे हैं, जिनमें हमारी चलती है। तो बोले—कैसे बँटवारा किया? हमको भी तो बताओ, तो हमारे घरमें झगड़ा न हो। बोले—हमलोगोंने बँटवारा ऐसे किया है, कि जो रुपये-पैसेका मामला है—बजट, कैसे पैसा खर्च किया जाय घरमें, कैसे बच्चेको पढ़ाया जाये, कपड़े, पलंग, मक़ान सब कैसा हो, कब घरमें आवें, कब जावें—यह सारा विभाग हमारे जो होम-गवर्नमेंट हैं उनके हाथमें है। तो बोले—भाई, तुम्हारे हाथमें क्या विभाग है? बोले—विदेश विभाग हमारे हाथमें है। रूस और अमेरिकामें लड़ाई होनी चाहिए कि दोस्ती होनी चाहिए। यह निर्णय मैं करता हूँ। इसका मतलब यह हुआ कि श्रीमान्‌जी जो हैं, वे बिलकुल ठनठनपाल हैं। आजकलके लोगोंकी बुद्धि इसका निर्णय करनेमें लगी रहती हैं कि जॉनसनको क्या करना चाहिए, और

खुश्चेवको **क्या** करना चाहिए। दूसरेका कर्तव्य सोचनेमें अपना कर्तव्य भूल जाता है। मनुष्यका दिमाग बिलकुल खराब हो रहा है। इसीका नाम है मृत्यु। **प्रमादं वै मृत्युमहं ब्रवीमि**। मैं प्रमादको मृत्यु कहता हूँ। **न वै मृत्युर्व्याघ्र इवात्ति जन्तून्**। मौत कोई व्याघ्रकी तरह आकर मनुष्यको नहीं खाती। वह प्रमाद बनकर आती है।

आदमी अपने घरको भूलकर, दिलको भूलकर, दिमागको भूलकर दूसरेके बारेमें सोचने लगता है—तो मृत्यु हो गयी। इस मृत्युसे बचानेवाली कोई चीज है, तो उसका नाम कथा है। कैसे? कि वह मनुष्यके बिखरे हुए दिमागको एक सहज, शीतल, कोमल, सरस, अमृतमय सरोवरके तट पर ले आती है। दुनियामें-से परे करके अपने हृदयमें जो परमानन्द कन्द, मुरलीमनोहर, श्यामसुन्दर, यशोदा-नन्दन, सच्चिदानन्दघन, प्रत्यक्ष चैतन्यभिन्न अपने स्वरूप मूल परमात्मा जो बैठे हैं, उनमें लाकर यह कथा बैठा देती है। इसलिए यह अमृत है, अमृत।

अब देखो, यह स्वर्गके अमृतसे श्रेष्ठ है, भागवतामृत है। कैसे? बोले—**तप्तजीवनं**। जैसे तृप्त लोग जो हैं—कोई धूपमें-से, लूमें-से आवे, सूर्यके तापमें-से आवे और उसे ठंडा-ठंडा जल मिल जाये पीनेके लिये कि अरे भाई! जी गये! ऐसा आनन्द मिलता है। **तप्तानां जीवनं तप्त जीवनं**। जिनको संसारमें ताप मिलता है, आँच मिली है, बेवफाई मिली है, विश्वासघात मिला है, बिछोह मिला है, जलन मिली है—उन लोगोंके लिये यह जीवन रूप है। बोले—नहीं संसारियोंके लिये जीवन है—यह बात तो गलत कही है। जो भगवान्‌के विरहमें तप्त हैं, उनके लिये यह जीवन है। संसारमें तो दुःख-सुख आता ही रहता है। जो आज जीवनमें दुःखी नहीं हैं, उनके जीवनमें आगे भी दुःख नहीं आवेगा—ऐसा नहीं समझना। यह तो **नीचैर्गच्छति उपरि च दशा चक्रमेव क्रमेण**—जैसे रथका पहिया कभी नीचे कभी ऊपर घूमता है,

वैसे आज नशेमें मतवाले होकर समझ रहे हो, तुम्हारे पास चार पैसे हैं, जवानी है, मकान है, रिश्तेदार है, औरत है, मर्द है, ऊँची कुर्सी है—तो समझते हो कि हम बड़े सुखी हैं। लेकिन आगे क्या होगा, समझते हो? तो सावधान हो जाओ। तप्त जीवनं—यह तो सब लोगोंकी बात हुई। लेकिन जिसके हृदयमें भगवान्के विरहकी पीड़ा हैं, प्रेमकी पीड़ा है, वे तो मर जायेंगे न! ऐसे विरह-ताप तप्त जो प्रेमी हैं, उनको यह तुम्हारी कथा जीवन-दान देती है।

तो इसमें अमृतसे और भी कोई विशेषता है? बोले—हाँ! जो लोग खूब पुण्य करके, धर्म करके देवता बनते हैं, जिनकी बग़लमें अप्सरा है, सामने विमान खड़ा है, नन्दन वनमें बैठे हैं, उनको वह अमृत पीनेको मिलता है। और यह अमृत तो जो संसारकी आगमें घुटते हुए जीव हैं, उनको जीवन-दान करता है। वह अमृत अमीरोंका अमृत, अमरोंका अमृत अमेरिकाका अमृत, ऐसा कहते हैं इसको। सब एक ही चीज है ना! अगर शब्द जो संस्कृतका है, वह उर्दू-फारसीमें जाकर अमीर बन गया, अमरीका बन गया। तो वह अमृत अमीर-उमरा जो हैं, उनके कामकी तो है, गरीबोंके कामकी भी है।

अमृतकी एक दूसरी विशेषता सुनायें। भागवतमें ध्रुवजी बोलते हैं—

या निर्वृत्तिस्तनुभृतां तवपादपद्म-
ध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात्।
सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ माभूत्
किंत्वन्तकासिलुलितात्पततां विमानात्॥

अगर तुम्हारे भक्तके मुखसे तुम्हारी कथा सुनानेको मिले। सुनानेवाला भक्त हो, प्रेमी अपने प्रियतमका वर्णन करे तो जो स्वाद, जो परमानन्द मिलता है, उसका स्वाद दुनियादारको क्या मालूम! एक आदमी कहता है—भगवान्का चरित्र ही क्यों? तो और किसका चरित्र?

तुम्हारा! अच्छा, हम उसके लिए भी तैयार हैं इस शर्त पर, कि तुम अपने चरित्रकी कोई बात छिपाओ मत, जरा जाहिर कर दो। अरे नारायण! धोतीके नीचे सब नंगे हैं।

तो चरित्र वर्णन करने योग्य यदि कोई है, तो भगवान्का ही है। ध्रुवजी कहते हैं कि तुम्हारे प्रेमीके मुखसे तुम्हारी कथा सुननेमें जो आनन्द जो निर्वृत्ति, जो शान्ति मिलती है, वह ब्रह्मानन्दमें भी नहीं है।

सा ब्रह्मणि स्वमहिमनि अपि नाथ माभूत।

बोले—ध्रुवजी, तुम ऐसा क्यों कहते हो? बोले—वह ब्रह्मानन्द निष्क्रिय आनन्द है। और यह सक्रिय आनन्द है। यहाँ हँसते हैं, बोलते हैं, चलते हैं, खेलते हैं। तो **कविभिरीडितं**। व्यास, वसिष्ठ, नारद, प्रह्लाद, ध्रुव, बड़े-बड़े जो मनीषि महानुभाव हैं, वे इसकी स्तुति करते हैं। और **स्वर्गीयामृतं तु तैः तुच्छीकृतम्**—स्वर्गके अमृतको तो बिलकुल तुच्छ समझते हैं। क्या रखा है स्वर्गके अमृतमें! गोस्वामी तुलसीदासजीने लिखा--

जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान।

ब्रह्मपरायण जो जीवन्मुक्त हैं, वे ध्यान छोड़ करके चरित्रका श्रवण करते हैं। श्रीमद्भागवतमें आया है कि सारी दुनियाके मैलको धोकर बहा देनेकी ताकत है इस अमृतके समुद्रमें।

दुरवगमात्म - तत्त्व - निगमाय तवान्ततनो-
श्चरितमहामृताब्धिपरिवर्तपरिश्रमणाः ।
न परिलषन्ति केचिदपवर्गमपीश्वर ते
चरणसरोज - हंसकुल - संगविसृष्टगृहाः॥

नहीं चाहिए हमको मोक्ष। हम जिन्दगी भर रहेंगे बन्धनमें लेकिन सुनेंगे कथा। कथामृतमें स्नान करेंगे, कथामृतका पान करेंगे, कथामृतमें डुबकी लगावेंगे।

अच्छा, आओ! स्वर्गके अमृतकी एक और विशेषता सुनाएँ।

भगवान्‌में छह विशेषताएँ हैं, इसलिए अमृतमें भी छह विशेषताएँ बताई हैं। कथामृत तो भगवद्रूप है। कानके रास्ते ही भगवान् घुसते हैं शरीरमें। दिलमें ईश्वरको ले जानेका रास्ता आँख नहीं है, दिलमें ईश्वरको ले जानेका रास्ता कान है। कल्मषापहं--कल्मषं माने कर्मठ। कर्मठको ही संस्कृत भाषामें कर्मठ बोलते हैं। कर्मकी जो स्याही है न, वह पुत जाती है दिल पर। काम करते-करते एक ऐसी स्याही लग जाती है आदमीको, उस रंगमें इतना डूब जाता है, कि उसको पता ही नहीं चलता कि अच्छाई क्या है, बुराई क्या है। वह जिसमें डूब गया, डूब गया। एक डाकूसे ही पूछो कि तुम डाका क्यों मारते हो? वह बोलेगा कि हमारे बाप-दादा ऐसा करते थे। हम ऐसे बहुतसे धनियोंको जानते हैं, जिनको यह बिलकुल ख्याल नहीं है कि हमारा कमाया हुआ पैसा क्या होगा! एक दिन महाराज, साँस ऐसे ही बाहर जायगी तो बाहर ही रह जाएगी। हाथ-पाँव फैल जायेंगे। जिन्दगीभरकी गाढ़ी कमाई किसके हाथ लगेगी—इसका इनको कुछ पता नहीं है। उससे जो सुख लेना चाहिए था, वह नहीं लिया। कमाते जाओ, कमाते जाओ! यह क्या हुआ? कल्मष हो गया यह। कल्मष माने कर्मकी स्याही चेहरे पर पुत गयी। तो यह कथाका जो अमृत है, वह इस कल्मषको धो डालता है। दिल और दिमागको बिलकुल साफ कर देता है। स्वर्गके अमृतको पीनेके लिए तो कितना ही पुण्य जमा करना पड़ता है। जैसे किसी होटलमें जाकर ठहरते हैं, तो पहले पैसे जमा कर देते हैं। अब जितने दिन वह पैसा चले, उतने दिन तक वहाँ खाओ, पीओ, मौज करो। और पैसा खतम, तो खेल खतम होटलका। खेल खतम, पैसा हजम! इसी तरह जो लोग यहाँ जितना पुण्य करके जाते हैं, स्वर्गमें उनको उतना सुख मिलता है। जब कर्म समाप्त हो जाता है, पुण्य क्षीण हो जाता है, तो **क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति**, गिरना पड़ता है। और यह भगवान्‌की जो कथा है, मुरलीमनोहर, पीताम्बरधारी, श्यामसुन्दर, नन्दनन्दन, माधवकी कथा, इसमें क्या होता

है? इस कथामृतका यदि पान करोगे तो पुण्य क्षीण नहीं होगा। तुम्हारे घरका खजाना इससे खतम नहीं होगा। यह तो—

हर्रे लगे न फिटकरी, रंग चोखा आवे।

कल्मष, पाप क्षीण होगा। बेकारीमें, निकम्मेपनमें जो तुम बुराईकी ओर जाते हो, उससे यह कथा बचा लेगी।

देखो, जो लोग बुरा काम करते होंगे न! गप्प हाँकते होंगे, जुआ खेलते होंगे, चोरी करते होंगे, शराब पीते होंगे, उनको घंटे भर कथामें बैठना कितना मुश्किल पड़ेगा। उनके पापानुष्ठानमें बाधा पड़ती होगी। वह दिल नहीं, पत्थर है, जो भगवान्‌की लीला-कथा सुनकर पिघल नहीं जाता। तो स्वर्गका अमृत पुण्यका नाश करता है और वासनाको बढ़ाता है, यह जो भगवान्‌की कथाका अमृत है, वह भगवान्‌के प्रति प्रेमका जो अमृत है, प्रेम रस है, वह देता है। स्वर्गका अमृत बड़ी मुश्किलसे मिलता है। तपस्या करो, दान करो, धर्म करो, व्रत करो। आगके सामने बैठो, होम करो और कथाका अमृत इतना सुगम है, कि न आग जलाओ, न कुशकंडिका करो, न होम करो। **श्रवण मंगलं**—केवल श्रवण मात्रसे ही यह मंगल देनेवाला है।

वेदमें दो तरहकी विद्या बतायी है, एक परा विद्या और एक अपरा विद्या। जो दुनियाके बारेमें जानकारी है, उसको अपरा विद्या बोलते हैं और जो ब्रह्मके विषयमें जानकारी होती है, उसको परा विद्या बोलते हैं। तो ऐसा है, कि दूसरेके बारेमें जब जानकारी प्राप्त करनी होती है, तब उसको पानेकी जरूरत होती है, प्रयत्न करना पड़ता है। और अपने बारेमें जानकारीके लिए उसको पानेका प्रयत्न नहीं करना पड़ता। यह जो अपने बारेमें जानकारी है, इसके लिए, अनुष्ठानकी जरूरत नहीं पड़ती है। अपनेको छोड़ा भी नहीं जा सकता, अपनेको पकड़ा भी नहीं जा सकता।

यह जो परमात्माकी विद्या है, इसमें श्रवणकी प्रधानता है। पहली

भक्ति कौन सी है? वेदान्तियोंका पहला साधन कौन-सा है? **श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः। श्रवणः**—सुनो-सुनो! माने कानके रास्तेसे परमात्माको, परमात्माके प्रेमको अपने हृदयमें भरो। तो गोपियाँ कहती हैं—कि यह जो हम तुम्हारी कथा सुनती हैं न दूसरोंके मुँहसे तुम्हारी चर्चा सुनती हैं, उसमें ही हमको मौतसे बचानेकी ताकत है, और अबतक हम जिन्दा हैं। माने उससे आशा बँधती है कि तुम बड़े प्रेमी हो बड़े रसिक-शिरोमणि हो। तुम हमारी आशा तोड़ोगे नहीं, हमको जरूर मिलोगे। असलमें प्रेममें जो मिलनेकी आशा जुड़ी हुई है, वही मरने नहीं देती है। जब आशा छूट जायगी तो जीवन नहीं रहेगा। तुम्हारी कथा ऐसी है कि आशा टूटने नहीं देती, बारम्बार-बारम्बार आशाको जोड़ देती है। इसलिए अब मिल जाओ। **दृश्यतां**—हमारे सामने प्रकट हो जाओ!

: १३ :

गोपीके मनमें कृष्ण प्रकट हुए; मुरलीमनोहर, पीताम्बरधारी, श्यामसुन्दर! उन्होंने जरा धक्का देकर पूछा—कि प्रेमी तो तुम बनती हो इतनी और मेरे विरहमें जी रही हो? किसी गोपीके मनमें कृष्ण प्रकट तो नहीं हुए, लेकिन उलझन उसके मनमें थी—कि कृष्ण अगर ऐसा पूछ लें, तो? तो कहती हैं—ये कुछ महात्मा लोग हैं ऐसे संसारमें, जो बारम्बार तुम्हारी कथाका अमृत पिलाते रहते हैं। वह अमृत पीनेसे ही हम तुम्हारे विरहमें जीवित रहती हैं। अब इसमें कथामृतका वर्णन है। श्रीकृष्णकी कथा क्या है? अमृत है।

श्रीधरस्वामीने वेदस्तुतिके एक श्लोककी व्याख्यामें एक श्लोक लिखा है :

त्वत्कथामृत - पाथोधौ विहरन्ते महामुदः।
कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्ग - तृणोपमम्॥

कोई-कोई धन्य, सुकृती पुण्यात्मा ऐसे होते हैं, जो आपके कथाके अमृत-समुद्रमें विहार करते रहते हैं और बड़ा आनन्द लेते हैं। उनको न तो धन सूझता है, न धर्म सूझता है, न भोग सूझता है, न मोक्ष सूझता है। चारों पुरुषार्थ तृणके समान छोड़कर वे तो दिन-रात कथाके अमृत-समुद्रमें ही डूबते-उतराते रहते हैं। सुनानेवाला मिले तो सुनें, सुननेवाला मिले तो सुनावें और दोनों न मिलें, तो गुनगुनावें। दुनियाकी किसी चीजकी जरूरत नहीं! बस कृष्णकी यादमें मग्न।

यह बात कल सुनायी, कि छह तरहकी विषेषताएँ कथामृतमें हैं। उनमेंसे एक बात तो यह, कि **तप्त जीवनं**; स्वर्गका अमृत तो देवताओंके काम आता है। यह कथाका अमृत संसारके तापसे, दुःखसे, विरहसे तपे हुए जो प्राणी हैं—उनके काम आता है। **तप्तानां जीवनं तप्तजीवनं।** स्वर्गके अमृतसे इस कथामृतकी एक विशेषता हो गयी यह।

दूसरी बात; जीवन्मुक्त ज्ञानी महापुरुष स्वर्गके अमृतको तुच्छ समझते हैं। श्रीमद्भागवतमें भी यह प्रसंग आया है :

स्वप्नोपममभुं लोकं असन्तं श्रवणप्रियम्।
आशिषो हृदि सङ्कल्प्य त्यजन्त्यर्थाः यथा वणिक्॥

जैसे व्यापारी सोचता है कि दस लगावेंगे तो बीस मिलेंगे, तो दस लगा देता है; ऐसे ही दुनियाके ये जो सौदागर हैं, वे सोचते हैं कि यहाँ दसका दान करेंगे, तो स्वर्गमें बीसकी सम्पत्ति मिलेगी। वे तो समझते हैं कि दो पैसेकी फूल-माला चढ़ावेंगे तो पाँच लाखकी आमदनी हो जायगी। तो ज्ञानी पुरुष, जीवन्मुक्त पुरुष स्वर्गके अमृतका कोई आदर नहीं करते। वे तो इस कथारूप अमृतका आदर करते हैं *चरित सुनहिं तजि ध्यान।* इसलिए स्वर्गके अमृतसे कथाका अमृत बड़ा है।

तीसरी बात बतायी, कि स्वर्गका अमृत पुण्यका नाश करता है। जैसे होटलमें रहो, तो थोड़ा मजा मिलता है, लेकिन पैसेका नाश होता है, वैसे ही स्वर्गका अमृत पियो तो तुम्हारे पुण्यका क्षय होगा। वह पुण्यके फलस्वरूप मिलता है और कथा रूप अमृत पीओ, तो पापका क्षय होगा, पुण्यका क्षय नहीं होगा।

तो ये तीन विशेषताएँ थीं। अब तीन और विशेषताएँ बताते हैं।

श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः।

श्रवणमङ्गलं—ज्ञानकी कथा सुनो तो शम-दमादि सम्पत्ति चाहिए, नित्यानित्य वस्तु-विवेक आदि जो साधन-चतुष्टय हैं, वे चाहिए। योगाभ्यास करो तो आसन, प्राणायाम आदि करनेमें बरसों लगें

और धर्म-साधन करना हो तो आगके सामने बैठो। घी-बूरा आगमें डालो। काम भी करो और वस्तु भी लगाओ, तब धर्म होता है। उसमें कुछ गड़बड़ी हो जाय, तो वह भी चला जाय। लेकिन यह जो भगवान्‌की कथा है, वह तो श्रवणमङ्गल है। केवल कानसे सुनो और मंगल होवे, **श्रवणेनैव मङ्गलं**। मंगल शब्दका संस्कृतमें अर्थ होता है आगे बढ़ना। यह 'मगि गतौ' धातु है, प्रगतिके अर्थमें मंगल शब्द बनता है। जिससे हम ऊपर उठें, जिससे हम आगे बढ़ें, उसका नाम मंगल होता है। तो आओ, भगवान्‌की कथा सुनें।

अच्छा, भगवान्‌की कथा सुननेसे इतना तो होगा ही, कि उतनी देर संसारकी कथा सुननेको नहीं मिलेगी और लाभ तो छोड़ दो!

लेहिं न बासन बसन चुराई।
यह हमार अति बड़ सेवकाई।

इतनी देर जुएकी चर्चा नहीं होगी, औरत-मर्दकी चर्चा नहीं होगी, पैसेकी चर्चा नहीं होगी। इतनी देर इस दुःखदायी दुनियासे चित्तवृत्तिको हटा करके एक सुन्दर, मधुर देशमें, साजनके देशमें रहेंगे। ***साजन चल उस देशमें री!*** जहाँ जमुना बहती है, जहाँ कदम्बके वृक्ष हैं, लताएँ हैं। गौएँ चरती हैं, हरिन छलांग भरते हैं। जहाँ गोपियाँ पानी भरती हैं। जहाँ मुरलीमनोहर पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर अपने ग्वालबालोंके साथ मंद-मंद मुस्कुराते हुए, प्रेम भरी चितवनसे देखते हुए क्रीड़ा करते हैं। चलो, थोड़ी देरके लिए इस दुःखदायी दुनियासे तुम्हारा मन हटा न! और जिसकी तारीफ सुनोगे, जिसका गुण सुनोगे, जिसका रूप सुनोगे—उसमें मन लगेगा। उससे प्रेम होगा। भगवान्‌की भक्ति आवेगी हृदयमें। इतना तो कल्याण होगा न!

एक बात आपको याद दिला दें। सुननेसे भक्ति होती है, सुनना साधना है और भक्ति फल है—यह बात नहीं है। इसको संसारके लोग कम समझते हैं। असलमें सुनना ही भक्ति है। एक तो घर-घरकी

ओरसे मनको हटाया; दूसरे आये और नीचे धरतीपर बैठ गये। थोड़ी तकलीफ हुई न, तपस्या तो हुई न! अच्छा, वह गद्दा कहाँ है यहाँ, जिसपर घरमें बैठते हैं? टाटपर बैठते हैं। चुप बैठते हैं; मौन तो रहा न! मौन भी तो एक तपस्या है न! दुनियाकी चर्चा नहीं। भले ही बीच-बीचमें संसारकी याद आती रहे, पर बीचमें भगवान्‌की याद भी तो आती रही न! **श्रवणं भक्तिः**। भगवान्‌की कथाको सुनना ही भक्ति है।

एक बात है, कि अगर आपके सामने हाथमें नोट होते गिननेके लिए, तो आप जरा सावधानीसे गिनते—कि कोई भूल न हो जाय। लाटरीका नम्बर निकलता हो तो अगर वह रेडियोपर सुनाया जा रहा हो, तो ऐसा कान लगा रहेगा—कि हमारा नम्बर आया कि नहीं। यह बात जरूर है कि कथा सुनते समय आपके कान ऐसे नहीं लगेंगे। यह तो—

जिनके श्रवण समुद्र समाना।
कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे।
तिनके हृदय सदन तव रूरे॥

कान तो वैसे लगे न! *लोभिहि प्रिय जिमि दाम*। ऐसे कान लगें! तो श्रवण मंगलं।

प्रथम भगति संतन कर संगा।
दूसरी रति मम कथा प्रसंगा॥
गुरु पद पंकज सेवा तीसरी भगति अमान।
चौथी भगति मम गुन गन करई कपट तजि गान॥

तो *दूजे रति मम कथा प्रसंगा*। कथा-प्रसंगका श्रवण करना ही भक्ति है। भागवतमें तो इसके लिए दृष्टान्त दिया गया है कि जैसे चार लम्पट इकट्ठे होकर स्त्रीकी चर्चा करते हैं, वैसे ये भक्त लोग इकट्ठे होकर भगवत्-चर्चा करते हैं। **स्त्रिया विटानामिव साधुवार्ताः**।

अब इस अमृतकी पाँचवी बात; **श्रीमदं सुशान्तं।** दुनियाकी बात सुनोगे तो वासना बढ़ेगी और भगवान्‌की कथा सुनोगे, तो वासना शान्त होगी। स्वर्गका अमृत पीनेसे वासना बढ़ती है। वह मादक है, मादक। उसमें नशा है और इसमें नशा उतारनेकी शक्ति है।

अब छठी बात बतायी; **आततं।** आततंका अर्थ क्या है? स्वर्गका अमृत बहुत थोड़ा-सा है। एक बार गरुड़जीको अमृतकी जरूरत हुई— ऐसी पुराणोंमें कथा आती है। गरुड़जीकी माता दासी बना ली गयी थीं और शर्त यह थी कि जब गरुड़जी अमृत लाकर दें, तब वह दासीपनेसे छूटेंगी। तो गरुड़जी गये देवताओंके पास—भाई! हमारी माता दासी बन गयी हैं। छुड़ानेके लिए अमृत चाहिए। वैसे तो देवताओंने दिया नहीं; सात तालोंमें बन्द करके एक घड़ा अमृत रखा हुआ! देवता लोग इतने कंजूस, कि पीयें नहीं, सूँघें उसको। सूँघकर सन्तोष करें।

कहते हैं कि दो कंजूस एक बार एक-एक शीशी घीका ले आये। एक बरसके बाद जब दोनों मिले, तो एकने बताया, कि देखो! अभी हमारा वह घी चल रहा है। कि कितना है भाई? कि अभी तो एक चौथाई खर्च हुआ है। कि तुम कैसे खर्च करते हो? तो बोले—जब खाना होता है, तो उसमें एक सींक बोरकर दालमें गिरा लेते हैं। तो दूसरेने कहा— कि भलेमानुस! मैंने तो शीशी खोली ही नहीं। मैं तो आँखसे देखकर सूँघ लेता हूँ! बस!

ये देवता लोग जो हैं, वे अमृत पीते नहीं हैं, सूँघ-सूँघकर संतोष कर लेते हैं—कि बहुत थोड़ा है। और यह भगवान्‌की जो कथा-रूप अमृत है, यह तो सारी सृष्टिमें फैला हुआ है—**आततं।** सर्वव्यापक है। वेदमें, रामायणमें, महाभारतमें, इतिहासमें; अरे, गाँवमें भी! गाँव-से-गाँवमें जाओ न! वहाँ भी थोड़ी रामकी कथा, थोड़ी कृष्णकी कथा सुननेको मिलेगी। यह तो बड़ी व्यापक है।

ये छह विशेषताएँ भगवान्‌की कथामें स्वर्गकी कथासे ज्यादा हैं।

इसलिए सबसे बड़ा दाता कौन है? **भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः।** लोगोंको भगवान्‌की कथा सुननेको मिले—ऐसी व्यवस्था जिसने कर दी, वह वक्ता धन्य है। एकने अन्न दान किया, एकने वस्त्र दान किया, एकने रोगीके लिए दवा दान किया। आजकल तो धर्मकी भावना थोड़ी कम हो गयी है न! आजकल तो मिनिस्टर जिससे खुश हों, उसको धर्म मानते हैं। धर्म वह होता है, जिससे हृदयमें बैठा हुआ जो भगवान् है न, भगवान्! अपना इष्टदेव, अपना प्राणप्यारा, वह प्रसन्न हो। आजकल लोगोंको अ आ इ ई उ ऊ की शिक्षा सरकार देती है। जो टैक्स वसूल होता है, वह इसीलिए कि लोगोंको प्राथमिक शिक्षा दी जाय, सड़कें बनायी जायँ, अस्पताल बनाये जायँ, नहरें खोदी जायँ। दुनिया भरकी सारी व्यवस्था हो। तो धर्म कहाँसे आवे? जिससे हृदय शुद्ध हो मनुष्यका—ऐसा ज्ञान मिले? तो सबसे बड़ा दाता कौन? अन्नका दाता? वस्त्रका दाता? स्वर्णका दाता? कि नहीं। सबसे बड़ा भगवान्‌का दाता। ऐसी व्यवस्था करो, जिससे लोगोंके हृदयमें भगवान् आवें। और भगवान्‌का दाता कौन? बोले—जो कथाका दाता, सो भगवान्‌का दाता। जो भगवान्‌के गुणानुवादका दान करते हैं, वे तो भगवान्‌का ही दान करते हैं। भगवान्‌का चरित्र उदार है।

मैंने कभी सुनाया होगा; अपने आश्रममें काम करनेवाला एक आदमी है। कहार है, पानी भरता है। बीस-तीस बरससे है, उड़िया बाबाजीके समयसे है। उसको पैसा दिया—कि जाओ, बाजारसे सब्जी ले आओ। तो खाली हाथ लौट आया। कि अरे भाई, पैसेका क्या हुआ? तो बोले—भाई एक गरीब आदमी था, भूखों मर रहा था। हमने तो वह पैसा उसको दे दिया। वह तो महात्मा था। आश्रममें उसका बड़ा आदर था। तो बोला—पैसा हमारी तनखाहमें-से काट लेना। तो यह जो भगवान् हैं न अपने, इन्होंने भक्तोंको, सेवकोंको यह हक दे दिया है, कि वह चाहे तो भगवान्‌को बेच आवे। सत्यभामाने तो एक दिन कुश और जल और

अक्षत हाथमें लिया और श्रीकृष्ण भगवान्‌का दान कर दिया नारदजीको। अब नारदजीने हाथ पकड़ा श्रीकृष्णजीका कि चलो अब हमारे साथ। महाराज, कुहराम मचा द्वारकामें। सब लोग इकट्ठे हुए, अरे राम राम! यह क्या हुआ? कि कृष्ण भगवान्‌का दान कर दिया सत्यभामाने। अब नारदजी पकड़कर ले जा रहे हैं—कि हम बजावेंगे वीणा, तुम बजाओगे बाँसुरी। और मौजसे दोनों गाँव-गाँव घूमेंगे और भीख माँगेंगे। सब रानियाँ—रुक्मणी और फलानी और ढिंगानी, सब इकट्ठी हुईं। बोलीं—अरे बाबा! हम तो मर जावेंगी। क्या करें? नारदजीने अन्तमें कहा—कि अच्छा, इनके बराबरकी कोई चीज दो। यह कथा आती है। ***बेचे तो बिक जाऊँ।*** अगर भगवान्‌का भक्त बेचे, तो भगवान् उसके हाथ बिक जाते हैं। तो जो लोगोंके हृदयमें भगवान्‌को बैठाता है, वह सबसे बड़ा दाता है।

ऐसे दाता लोगोंने तुम्हारी चर्चा कर-करके बारम्बार हमारे हृदयमें ला-लाकर तुमको बैठा दिया और हमारे प्राणोंकी रक्षा हो गयी, नहीं तो हम तो अबतक मर ही गये होते।

श्रीवल्लभाचार्यजी महाराजने इस प्रसंगमें दूसरा भाव कहा है। वे कहते हैं कि जो भगवान् हैं, सो ही भगवान्‌की कथा है। भगवान्‌में और भगवान्‌की कथामें कोई फर्क नहीं है।

छह विशेषण भगवान्‌के कहे हैं और यहाँ छह ही विशेषण कथामृतके दिये हैं; **तप्तजीवनं कविभिरीडितं, कल्मषापहं, श्रवणमङ्गलं, श्रीमदं** और **आततं**। भगवान्‌की कथा कैसी? अमृत है, भागवतामृत है। एक अमृत वह है, जो चन्द्रमा बरसाता है और जौमें, गेहूँमें, आममें, अनार, अंगूरमें आता है, और लोग उसको खाकर जिन्दा होते हैं। एक अमृत वह है, जो समुद्र-मन्थनसे निकला, जिसे देवता लोग स्वर्गमें पीते हैं और एक अमृत वह है—स्वयं भगवान् उसका आस्वादन करते हैं। तो यह कथा क्या है? कथा माने भगवान्‌के प्रेमी किस-किस दृष्टिकोणसे भगवान्‌को देखते हैं, अपनी आँखका कैसा कोण बनाकर भगवान्‌को देखते हैं। यही न? कि

कैमरेसे जैसे फोटो लेते हैं। अरे, नीचेसे लो तो लम्बा हो जाये और ऊपरसे लो तो छोटा हो जाये। इसी प्रकार ये भक्त लोग अपने दिलका जो कैमरा है, उसका ऐसा-ऐसा कोण बनाते हैं कि किसीको मालिक मालूम पड़े, किसीको मित्र मालूम पड़े, किसीको पति मालूम पड़े, किसीको पुत्र मालूम पड़े, तो किसीको आत्मा मालूम पड़े। यह कैमरेका फर्क है असलमें। भगवान् तो एक ही है। भक्तोंके दिलका जो कैमरा है, उसीसे भगवान् अलग-अलग मालूम पड़ते हैं। एक बात जरूर है। **तप्तजीवनं,** जैसे भगवान् दुःखीपर कृपा करते हैं, विरह-तप्त—जो संसारमें भगवान्के विरहमें व्याकुल होते हैं, उनके सामने प्रकट हो जाते हैं, वैसे ही यह कथा भी भगवान्के विरह-तापसे तप्तको जीवन देनेवाली है। जैसे महात्मा लोग भगवान्की स्तुति करते हैं, वैसे ही इसकी भी स्तुति करते हैं। जैसे भगवान्के नामसे, गुणानुवादसे पापका नाश होता है, वैसे ही कथासे भी। जैसे भगवान्के श्रवणसे मंगल होता है, वैसे इस कथाके श्रवणसे और जैसे उनसे शान्ति मिलती है, वैसे इससे। जैसे भगवान् सर्वव्यापी हैं, वैसे ही यह भी सर्वव्यापी है।

अब दोनोंमें जो थोड़ा अन्तर है, वह भी देखो। भगवान् देखो, अवतार लेकर आते हैं, फिर चले जाते हैं। छिपा लेते हैं न अपनेको। लेकिन कथा जो अवतार लेकर आती है, तो फिर जाती नहीं है। अच्छा, भगवान् जो हैं, वे अवतार लेनेके बाद भी स्वतन्त्र ही रहते हैं और कथा अवतार लेनेके बाद परतन्त्र हो जाती है, तुम्हारी जुबानके अधीन हो जाती है। तुम्हारे जीवनमें, तुम्हारे दिलमें आकर बैठ जाती है। जब बोलो तब बोली जाये, जब सुनो तब सुनी जाये, जब सोचो तब सोची जाये। बिलकुल तुम्हारी हो जाती है। तो **भुविगृणन्ति ते भूरिदा जनाः।** जो पृथिवीमें इसका वितरण करते हैं, उन्होंने **भूरिदा जनाः**के बदले **भूरिदा अजनाः** बना लिया। **अजनाः** माने भगवद्रूपा। एक भगवान् तो वे होते हैं, जो साक्षीरूप टुकुर-टुकुर देखते रहते हैं। यह अधिष्ठान रूप सबके

मरने-जीनेको अपनेमें धारण करते रहते हैं। और ये अजन्मा भगवान् ऐसे हैं जो जन्म लेकर आये हैं। तो भगवान्‌के कथामृतको पिलानेवाला वह साकी कैसा? बोले—वह बहुत देनेवाला भगवद्रूप है। भगवान्‌ने वक्ताका ऐसा रूप धारण किया है, जिससे वे बड़ी-से-बड़ी वस्तुका दान कर रहे हैं। **भूरिदा जनाः।**

अच्छा! गोपियोंकी ओरसे इसकी थोड़ी चर्चा करें। प्रेमी लोग तरह-तरहसे बोलते हैं। एक बात और भी है, कि गोपी कोई एक तो नहीं है, अनेक हैं। जब अनेक गोपियाँ बोलती हैं, तो किसीके मनमें कोई भाव होता है, किसीके मनमें कोई भाव होता है। एक ही बात दो जने बोलते हैं, दो भावसे बोलते हैं। तो एक गोपी बोल रही है—कि कृष्ण! जब तुम हम लोगोंके पास आते हो, तो बड़ी मीठी-मीठी बातें करते हो।

अब संस्कृत बोलनेका थोड़ा मजा लो। श्रीकृष्ण कहते हैं—

भो भो मत्प्राणैकवल्लभाः रत्नवल्लभाः जीवात्मभूतासु भवतीसु नाहमुदासे दासे मयि सततं प्रेम हेमशृङ्खलानिबद्धे कथमविश्वस्ता विश्वस्ताः भवतु भवत्कङ्कणमिव करासक्तं हस्तान्तर्गतमिव मां जानीत।

कृष्ण बोलते हैं—कि मेरी प्राणप्यारी गोपियो! तुम तो हमारी हृदयकी रत्न हो। तुम हमारे जीवनकी अमृतवल्ली हो। तुमसे मैं कभी उदास नहीं हो सकता। मैं तो तुम लोगोंका दास हूँ। तुमने अपने प्रेमकी स्वर्णमयी जंजीरसे हमेशाके लिए मुझे बाँध लिया है। तुम मेरे ऊपर विश्वास क्यों नहीं करती हो? विश्वास करो। जैसे तुम्हारा कंगन तुम्हारे हाथमें रहता है, वैसे ही मैं बिलकुल तुम्हारे हाथमें बँधा हुआ हूँ और बिलकुल तुमको छोड़कर कहीं जानेवाला नहीं।

तो गोपी कहती है—कि बस बस! चुप रहो। बोलो मत। कृष्ण—जो गोपीके हृदयमें प्रकट हुए थे, मानो बोले—कि अरी गोपी! क्यों न बोलें?

गोपी बोली—बस! तुम्हारी ऐसी-ऐसी बातें सुनकर तो हम मर गयीं। **तव कथा अमृतं न भवति किन्तु मृतं मृत्युरेव भवति।** ये तुम्हारी जो बातें हैं, ये अमृत नहीं हैं। ये तो बिलकुल मृत्यु हैं। बाँसुरीसे फूँक मार-मारकर, उसमें चितवनकी शहद डालकर, उसमें मुसकानका घी डाल करके हमारे दिलमें वह आग तुमने जलायी, कि हमारी रग-रग, रोम-रोम उसमें भस्म हो रहा है। **तप्तजीवनं**—अभीतक यह राख नहीं हो गया है, जिन्दा है।

अरी गोपियो! तुमने नहीं सुना? महात्मा लोग हमारी कथाकी कितनी प्रशंसा करते हैं?

बोलीं—**कविभिरीडितं**। सब-के-सब भार हैं। जैसे राजा लोग, सेठ लोग अपनी तारीफ करनेवालोंको पैसा देते हैं और अपनी तारीफ करवाते हैं, वैसे ही तुमने महाराज, इन बड़े-बड़े कवीश्वर लोगोंको घूस देकरके, कुछ रिश्वत देकर अपनी कथाकी तारीफ करवायी होगी।

कल्मषापहं—बोले—इससे पाप मिटता है न!

बोलीं—हाँ! एक बात हम सच्ची मानती हैं। इससे पाप तो मिटता है, लेकिन कैसे मिटता है? जब बहुत दुःख भोगना होता है तो पाप मिट जाता है। तो तुम्हारी बातें सुन-सुनकर इतना ताप हमें मिला, हमारे दिलमें इतनी जलन हुई, कि सचमुच अब हमारे पाप तो जरूर मिट गये होंगे! पापोंका फल होता है दुःख और तुमने गा-बजाकर, बाँसुरी सुनाकर, मीठी-मीठी बातें बना-बनाकर जला दिया हमको। **कल्मषापहं**।

बोले—नहीं गोपियो! इससे बड़ा कल्याण होता है, पापका नाश तो होता ही है।

कि अच्छा! होता होगा महाराज! जो पापी हों, सो सुनें। हम ऐसे पापी नहीं हैं। हम नहीं सुनेंगे तुम्हारी कथा।

श्रवणमङ्गलं—बड़ा मंगल होता है सुननेसे।

बोलीं—हाँ! सुननेसे ही मंगल होता है। काममें मंगल नहीं है।

मङ्गलं भगवान् विष्णुः मङ्गलं गरुडध्वजः। बोल दो मंगल, मंगल, मंगल। श्रवणं मङ्गलं—केवल कानोंमें ही मंगल है।

कि अरी गोपियो! तुम तो ऐसा बताती हो, मानो हमारी कथा कोई जहर हो, और तुम्हारी चले तो तुम उसको समुद्रमें डलवा दो। अगर यह बुरी चीज होती, तो दुनियामें फैलती क्यों?

बोलीं—**श्रीमदाततं।** तुम्हारे साथ लक्ष्मी जो रहती है। तुम लक्ष्मीपति हो। तुमको बड़ा भारी श्रीमद है। दुनियामें और भी बहुतसे श्रीमद हैं। तो महाराज, उन्होंने पैसा खर्च करके, पुस्तकें छपवाकर, दान-दक्षिणा देकर, भेंट-पूजा देकर यह तुम्हारी कथा फैलवायी है। कोई अच्छाईके कारण थोड़ी फैली है। यह तो जैसे विज्ञापन होता है। आदमी बहुत पैसा खर्च करके बहुत विज्ञापन करे, तो दुनियामें वह चीज मशहूर हो जाती है। ऐसे तुम्हारी कथा मशहूर हो गयी! और तुम्हारी कथाने बहुत लोगोंके घर-द्वारका नाश कर दिया—भूरिदा जनाः। भूरिदा माने बहुत मारनेवाले, बहुत काटनेवाले। **बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति।**

मदनुचरित - लीला कर्णपीयूष - विप्रुट्
सकृददनविधूता द्वन्द्वधर्मा विनष्टाः।
सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना
बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति॥

देखो न! ये बाबाजी लोग जो दुनियामें डोलते हैं। घर-घर भीख माँगकर तो खायें, पेड़के नीचे रहें। पहननेके लिए कपड़ा नहीं। बहू नहीं, बेटा नहीं। माँ-बाप घरमें रो रहे हैं, कि हमारा बेटा तो साधु हो गया। तो ये जो इतने बाबाजी दुनियामें भिखमंगे होकर घूमते हैं, इनको भिखमंगा किसने बनाया? इस समस्यापर विचार करो। क्या वे सब तुम्हारे गुण, तुम्हारी विशेषताओंको देखकर सब बाबाजी बने हैं? उनको क्या पता महाराज, कि तुम्हारे भीतर कितने गुण भरे हैं। तुम्हारी तारीफ करनेवालोंने ऐसा बहकाया, ऐसे कान भरे उनके, कि माँ-बाप रोते ही रह गये—कि

हम बुड्ढे हैं, अब हमारी जीविका कैसे चलेगी। उनको छोड़कर लड़के अब बाबाजी बन गये। किसने बनाया? उन बेचारे माँ-बापका सत्यानाश किसने किया? एक जवान आदमीको काम-धन्धेसे किसने वंचित किया? तुम्हारी कथाने न! तो यह जो तुम्हारी कथा है, **भूरिदा**, बहुतोंका नाश इसने किया है। हमारी चले तो तुम्हारी चर्चा अपने कानमें न आने दें। इसीके कारण हम भी तो अपना धर्म छोड़कर, धन छोड़कर, कुटुम्ब छोड़-कर, जात-पाँत छोड़कर, अपने शरीरका ख्याल छोड़कर रातको मारी-मारी बनमें भटकती फिर रही हैं। यह तुम्हारी कथाका ही तो दोष है!

देखो! देखनेमें तो यह निन्दा है, लेकिन इसके भीतर बड़ी भारी तारीफ छिपी हुई है। सम्पूर्ण विश्व-सुखसे बढ़कर संसारमें जितने सुख होते हैं, उन सुखोंसे बढ़कर अगर इस कथामें सुख न होता, तो इसके लिए लोग संसारको छोड़ते क्यों? संसारके सुखको छुड़ानेवाली यह सबसे अधिक सुख रूप है—यह बात गोपियाँ कहती हैं।

अब देखो जरा। हमारे बंगाली भाई इसमें बहुत मजा निकालते हैं—**तव कथामृतं तप्त जीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहं। श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गणन्ति ते भूरिदाजनाः।** इस श्लोकको पहले श्लोकके साथ देखो—**अधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः**—यह गोपीने कहा। गोपीने कहा कि प्रेमभरी चितवनसे हमारी ओर देखो। मीठी-मीठी हमसे बात करो और हमको अपने अधर-मधुका पान कराओ। माने हम बेहोश हैं। तो मन्त्र पढ़ो हमारे लिए, ठंडी चीज हमारे कलेजेपर रखो और दवा पिलाओ। तब हमारी बेहोशी दूर होगी। तो श्रीकृष्णने कहा—जरा ठहरो। क्षण भरमें तुमको जो चाहिए, सो हम किये देते हैं। **क्षणं विलम्ब क्रियताम्**—एक क्षणके लिए विलम्ब करो। **एवमेव करिष्यामि**—तुम जैसा कहती हो गोपियो, हम वैसा ही करेंगे। गोपियोंने कहा—**तव कथायां अस्माकं प्रतीतिर्नास्ति**—हम तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं करते। बहुत झूठ कहते हो।

देखो, यह प्रेमकी बोली है। ऐसा नहीं समझना, कि ब्रह्माजी जाकर भगवान् कृष्णसे कह दें—कि तुम झूठे हो। नारायण कहो! हिम्मत नहीं पड़ सकती। यह शंकरजीका काम नहीं है। यह सनकादिका, व्यासादिका, नारदादिका काम नहीं है, कि भगवान्से जाकर कहें—कि हमको तुम्हारे वचनमें प्रतीति नहीं है। यह तो महाराज, जो मुँहलगी है न! गोपियाँ जो हैं; कोई पाँवलगे होते हैं, कोई छातीलगे होते हैं, कोई कानलगे होते हैं और ये गोपियाँ जो हैं, ये तो कृष्णकी मुँहलगी हैं।

गोपियोंने कहा—हमें तुम्हारी कथापर विश्वास नहीं है। कथा माने बातचीत; हम तुम्हारी बातपर विश्वास नहीं करतीं। कि क्यों? कि **कथैव अमृतं न तु कार्यम्।** तुम्हारी जो बातचीत है, वह बड़ी मीठी-मीठी होती है, परन्तु तुम्हारा काम मीठा नहीं होता है। **कथया यथा तर्पयति न तथा कार्येण।** तुम बातसे जितना सन्तुष्ट कर देते हो, खुश कर देते हो, काममें उतना खुश करनेवाले तुम नहीं हो।

बोले—यह अनुभव तुमको कैसे हुआ?

कि **तप्त जीवनं यस्मात्।** काम तो कभी तुमने मीठा कुछ किया नहीं और बात सुनते-सुनते हमारा दिल तप गया। इसीसे **कविभिरीडितं,** जो बड़े-बड़े विद्वान् हैं, शास्त्रज्ञ हैं, वे तो बड़ी प्रशंसा करते हैं, लेकिन **न तु प्रेमज्ञैः। शास्त्रज्ञैः प्रशस्यते न तु प्रेमज्ञैः।** कवि लोग, शास्त्रज्ञ लोग उसकी तारीफ करते हैं। प्रेमी लोग उसकी तारीफ नहीं करते हैं।

बोले—अरी गोपियो! पाप तो मिटता है न! बोलीं—पाप तो मिटता है, लेकिन हृत्ताप नहीं मिटता है। **कल्मषापहमस्ति किन्तु हृत्तापघ्नं नास्ति।** और ताप: **श्रवणमङ्गलं न तु चेतस्तुताम्**—कानको तो बहुत सुख होता है तुम्हारी बात सुनकर, बाबा! लेकिन दिल जलता है। दिलको सुख नहीं मिलता। और **श्रीमदेन ऐश्वर्यमदेन स्वाच्छन्देन आततं।** हर समय तुम्हारी छातीपर लक्ष्मी चढ़ी रहे, पाँवमें लक्ष्मी लोटती रहे: तो श्रीमदका

दोष, मालूम होता है तुम्हारे अन्दर आगया है। इसीसे जो मनमें आता है अनाप-शनाप, वह बोल देते हो।

तो महाराज! इस आक्षेपको कहते हैं अप्रस्तुत-प्रशंसा; दूसरे ढंगसे प्रशंसा करना। श्रीकृष्णकी इसमें बड़ी भारी प्रशंसा है।

श्रीकृष्ण बोले—अच्छा गोपियो! जब कथाका तुम्हारे ऊपर इतना असर पड़ता है, तो फिर कथा ही सुनती रहो। चलो, दूर बैठ जाओ और हम सिंहासिनपर बैठते हैं। हम कथा सुनाते हैं, तुम सुनो या दान-दक्षिणा देकर कोई बड़ा भारी विद्वान् ब्राह्मण बुला लो, कोई बाबाजी बुला लो और उनसे तुम कथा सुन लिया करो। हमारी तुमको क्या जरूरत है? हम प्रकट रहें कि गुप्त रहें—इससे क्या मतलब? तुम तो बस, कथा सुनो और आनन्दका, शान्तिका अनुभव करो।

गोपियोंने कहा—कि तुमने ऐसा कर रखा है, कि हम कथा भी शान्तिसे नहीं सुन सकतीं।

बोले—गोपियो! हमने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? क्यों कोसती हो?

बोलीं—कि नहीं, हम तुमको नहीं कोसती हैं। यह तुम्हारी जो हँसी है, इसने हमारा बँटाधार किया है। जब कथा सुनने बैठती हैं, तो तुम्हारी हँसीकी याद आती है, कि कैसे हँसते हैं।

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम्।
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि॥ १०॥

देखो, भागवतके प्रारम्भमें यह बात कही गयी है कि परब्रह्म परमात्मा ऐसा प्रकाशमान है, वह अपने स्वरूपमें ऐसा प्रकाशमान है कि कोई छल, कोई कपट, कोई माया, कोई कुहक उसके पास फटकता तक नहीं है। पर उसी परमात्माके लिए गोपियाँ 'कुहक' सम्बोधन करती हैं; निरस्त कुहकं। कि अरे ओ कपटी। वेदान्ती लोग 'मायावी' बोलते हैं! ब्रह्ममें माया है न, माया! वही कपट है, माने अपने आपको ढक लिया; जैसा है वैसा मालूम नहीं पड़ता। तो यह कुहक शब्द जो है—माने छली,

कपटी, यह बड़े प्रेमका शब्द है। एकने पुकारा—ओ कपटी! अरे, वह तो नाचने लगा। खुशीके फव्वारे छूटने लगे। उसने आकर कहा—कि मैंने तो कपटी कहा, और तुम नाच रहे हो। बात क्या है? बोले—कि बस! जिन्दगी भरमें आज मुझे सच्चा नाम सुननेको मिला है, नहीं तो 'महात्माजी', 'महात्माजी' कहकर हाथ जोड़नेवाले तो बहुत मिलते हैं। यह मेरा सच्चा नाम लेनेवाला तो कभी-कभी कोई मिलता है! गोपाल सहस्र नाम आप लोग पढ़ते हैं न! देखो, क्या-क्या नाम हैं कृष्णके! **रङ्गी रङ्गमहीरुहः। कामः कामारि।**

प्रहसितं प्रिय—प्यारे, प्रिय शब्द है। संस्कृतमें प्रिय उसको कहते हैं जिसकी गंधसे नाम तृप्त हो जाय, जिसके दर्शनसे आँख तृप्त हो जाय, जिसके श्रवणसे कान तृप्त हो जाय, जिसकी यादसे हृदय तृप्त हो जाय! जिसके लिए कोई काम करनेसे हाथ तृप्त हो जाय, जिसकी ओर चलनेसे पाँव तृप्त हो जाय। जो तृप्ति देवे, निरन्तर तृप्ति देवे, उसका नाम होता है प्रिय। **प्रिय तर्पणे** धातु है। **प्रीणाति इति प्रियः। प्रयति इति प्रियः। प्रियते इति प्रियः।** जो तृप्तिकी वर्षा करे। जैसे पूर्णिमाके चन्द्रको देखकर समुद्र उछलने लगता है, वैसे जिसको देखकर अपना दिल उछलने लगे—उसका नाम होता है प्यारे, प्रिय।

तो बोलीं—वैसे कथा तो हम सुनती हैं बैठकर, लेकिन जब बैठती हैं, तब मन क्षुब्ध हो जाता है। यह प्रेम है प्रेम, यह कोई समाधि नहीं है। प्रेम माने ज्ञान नहीं। ज्ञान तो अच्छाई-बुराई दोनोंका होता है। अच्छेको अच्छा समझते हैं, बुरेको बुरा समझते हैं। मिथ्याको मिथ्या समझते हैं, सत्यको सत्य समझते हैं—इसका नाम ज्ञान होता है। ज्ञान दोनोंका होता है, लेकिन प्रेम दोनोंसे नहीं होता। प्रेम तो केवल अपने प्यारेसे होता है। अद्भुत है न! प्यारेसे दुःख होता है, किन्तु प्यारेसे द्वेष नहीं होता। तृप्ति देता है, प्रिय।

बोले—कि बाबा! कथा सुननेमें क्या बाधा है?

कि बाधा है **प्रहसितं। प्रेम वीक्षणं विहरणं ध्यान-मङ्गलं।** ध्यान देनेकी बात है इसमें। एक तो देखो, सुस्मित होता है, मुसकाना। फिर उससे ज्यादा होता है हसित। फिर उससे बड़ा होता है **प्रहसित**। ये हँसीके भेद होते हैं। सुस्मित, हसित, प्रहसित, विहसित, उपहसित, परिहसित, अतिहसित और अट्टहास। तो यह प्रहसित विहसित है। भगवान् कृष्ण निकले—बाँसुरी बजाते हुए, पाँवमें रुनझुन-रुनझुन नूपुर बजता हुआ, पीताम्बर फहराता हुआ। गोपीने देखा कि आ रहा है, तो कुछ-न-कुछ छेड़छाड़ करेगा। तो महाराज, अपने काममें उसने अपना मन लगाया। आँख नीची करली। बोली—जाओ, देखेंगे ही नहीं, चाहे तुम पाँव पटककर रुनझुन करो, चाहे बाँसुरी बजाओ, चाहे पीताम्बर फहराओ। वृन्दावनमें—

गोविन्दाख्यं हरितनुमितः कोऽपि तीर्थोऽपकण्ठे।
मा प्रेक्षिष्ठास्त्वं यदि सखे बन्धुसंगेऽतिरङ्ग॥

यदि घरका काम-धन्धा करना चाहते हो, यदि परिवारको मजेमें रखना चाहते हो, तो दर्शन मत करना कृष्णका। नहीं तो दर्शन करनेके बाद महाराज, सब ठनठनपाल हो जायगा। वृन्दावनमें ऐसा बोलते हैं।

कृष्णने देखा—कि गोपी तो अपनी नजर अपने काममें जमाकर बैठी है। न हमारी रुनझुन सुनती है, न पीताम्बरकी फहरान, न चितवन, न मुसकान। थोड़ी मुस्कुराहट आयी, सुस्मित आया। फिर बाँसुरी बजायी, तो भी नहीं देखा। फिर जरा जोरसे हँसे तब भी नहीं देखा। तो प्रहसिता। ठठाके हँस पड़े। अरे, क्या हो गया? गोपीने कहा—अरे, क्या गजब हो गया! इतने जोरसे क्यों हँस रहे हो?

आँख नीचेसे ऊपर उठी। उनकी ओर देखा और बस, सारा काम छूट गया! कृष्ण-ही-कृष्ण रह गये गोपीकी आँखमें, उसके सामने!

*

: १४ :

अच्छा, देखो! गोपियोंकी आँखसे भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन नहीं हो रहा है, लेकिन वे बात उन्हींसे कर रही हैं। ये जो गीत हैं, इनमें वे ऐसे बोल रही हैं, जैसे कृष्ण सामने खड़े हों। उनकी बात सुन रहे हों, जवाब दे रहे हों। मध्यम पुरुष जिसको बोलते हैं—त्वं, तू, तुम ऐसा करते हो, तुम ऐसा करते हो—ऐसे बोल रही हैं, वह ऐसा करे, वह ऐसा करे—ऐसा नहीं कहती हैं। इसका मतलब हुआ कि एक प्रेमीके लिए इस बातका कुछ ज्यादा महत्त्व नहीं है कि हमारा प्रियतम बाहरकी आँखोंसे दीख रहा है कि नहीं। उसके लिए महत्त्व इस बातका है कि उसका दिल अपने प्रियतममको हाजिर-नाजिर जानकर व्यहार कर रहा है कि नहीं। अगर तुमको यह मालूम पड़ता है कि हमारा प्यारा श्रीकृष्ण हमारी आँखोंके सामने है, तो करो न उससे बात!

वृन्दावनमें एक महात्मा थे। वे आठ-नौ बजे अपनी कुटियासे बाहर निकल जाते जंगलमें। फिर एक-एक पेड़से जाकर बातचीत करते—तुम्हारी तपस्या कैसी चल रही है? तुम्हारा भजन कैसा हो रहा है? भगवान्‌का ध्यान होता है? रातको भगवान् आकर तुमसे मिलते हैं? उनको विश्वास था कि असलमें ये पेड़ नहीं हैं, महात्मा हैं। दिन भर पेड़के रूपमें दीखते हैं और रातको सखीके रूपमें, सखाके रूपमें भगवान्‌के साथ मिलते हैं। प्रेमकी जड़ विश्वास है, प्रेमका माँ-बाप विश्वास है। विश्वासमें-से प्रेम निकलता है। गोपीका यह विश्वास है कि कृष्ण इस समय हमको छोड़कर कहीं अलग जा ही नहीं सकते। वह यहीं हैं और हमारी बात सुन रहे हैं।

देखो भाई! **प्रहसितं प्रिय** श्लोक तो बहुत सीधा सादा है। कोई इसमें दाँव-पेंचकी बात नहीं है। कहते हैं कि जैसे छह ऐश्वर्यके गुण भगवान्में हैं—समग्र ऐश्वर्य, समग्र धर्म, समग्र यश, समग्र लक्ष्मी, समग्र ज्ञान और समग्र वैराग्य; तो कथामृतमें भी छह गुण हैं। भगवान्में चित्तको क्षुब्ध करनेवाले भी छह गुण हैं। जब बच्चा खिलौनोंसे इतना ज्यादा खेलने लगे, कि खाना भूल जाय, माँ भूल जाय, बाप भूल जाय, घर भूल जाय और वह धूल-माटीमें ही खेलता रहे, तो कभी-कभी जाकर उसको चपत लगाकर भी वहाँसे उठाना पड़ता है। तो दुनियाके लोग तो संसारमें ऐसे फँस गये हैं, कि यहाँसे मार-मारकर भी अगर इनको निकाला जाय, तो उसमें कोई दोष नहीं है। लेकिन भगवान् कोड़ा नहीं लगाते हैं। वाचिक, मानसिक, शारीरिक विहार ऐसे-ऐसे करते हैं कि अगर उनको आदमी अपने ध्यानमें ले आवे, तो उसका कल्याण हो जावे; क्योंकि उनकी एक-एक चेष्टा हृदय-स्पर्शी होती है, दिलको छूनेवाली। देखो, आपके जीवनमें कुछ थोड़ी-सी घटनाएँ ऐसी घटी होंगी, जो दिलको छू गयी हों, दिलमें गढ़ गयी हों और भुलाये न भूलती हो।

अब देखो, कृष्ण भी अपने भक्तके जीवनमें आते हैं, उसके हृदयमें घुसते हैं। ज्ञानी जो होता है, वह खुद परमात्मामें घुसता है; परमात्मा चुपचाप बैठा रहता है और भक्तके हृदयमें परमात्मा स्वयं घुसते हैं। यह दोनोंमें भेद है। पहले वे छह बातें सुनाता हूँ, जिनको लेकर भगवान् जीवके हृदयमें प्रवेश करते हैं।

प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमङ्गलं।
रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥

पहले तो 'प्रिय' सम्बोधन है। भगवान्के साथ प्रियताका सम्बन्ध होना ही मनको क्षुब्ध करनेवाला है; पहली बात तो यह है। तुम्हारा प्रिय कौन है? लोग भगवान्-भगवान्-भगवान् बोलते रहते हैं। दो आनेका

फर्क पड़ जाय तो भगवान्‌को छोड़ जायेंगे। कई लोगोंके घरमें भगवान्‌को भोग लगता है। हम जानते हैं कि भगवान् अगर लगातार चार दिन खा जायें लगाया हुआ भोग, तो पाँचवें दिन वे भोग ही न जगायें। वे तो जानते हैं, कि खायेंगे नहीं। इसलिए सामने जाकर रखते हैं।

एक सेठ थे। वह किसीको कुछ देते नहीं थे। एक बाबाजीसे लोगोंने कहा—कि महाराज! इससे कुछ निकलवाना चाहिए जरूर। बाबाजी गाँवमें गया, बैठ गया। अब कोई चार आने ले आया और सामने रखा; कि हटाओ हटाओ! हम छूते नहीं हैं। कोई एक रुपया ले आया, कोई दस रुपये ले आया, कोई सौ रुपये ले आया, हजार रुपये ले आया। बाबाजी छूते नहीं। शास्त्रमें लिखा है कि दम्भ बहुतसे होते हैं, पर उनमें सब-से बड़ा दम्भ है त्यागका, जिसकी बराबरीका दूसरा कोई दम्भ नहीं होता। **जप दम्भाः तपोदम्भाः ध्यानदभाः तथैव च**। बहुतसे लोग लोगोंके बीचमें आते हैं तो माला फेरते हैं। बहुतसे लोग आते हैं तो खाना-पीना छोड़ देते हैं; लोग कहते हैं कि बड़े भारी महात्मा आगये। कई लोग हैं, वे घरमें तो मजेसे सोवेंगे, हँसेंगे, खेलेंगे, लेकिन लोगोंके बीचमें आवेंगे तो पीठकी रीढ़ सीधी करके बैठ जावेंगे। सभाध्यानी उसको बोलते हैं; वे सभामें आकर ध्यान करते हैं, **ध्यानदम्भः तथैव च**। परन्तु **सर्वे निःस्पृहदम्भस्य कलां नार्हन्ति षेडशीम्**। निस्पृहताका जो दम्भ है, उसके सोलहवें हिस्सेके बराबर भी दूसरा कोई दम्भ नहीं होता। ये जिनको बड़े चतुर कहते हैं न दुनियामें, वे बेवकूफ तब बनते हैं, जब उनके सामने कोई बड़ा दम्भी आये।

अब बाबाजीने हजार लौटा दिये, महाराज! गाँवमें बात फैल गयी। सेठजीने सुना, तो बोले—कि भाई! यह तो बड़ा अच्छा मौका है। दाता भी बन जायें, और कुछ निकले भी नहीं। एक बड़ी पोटली लेकर बाबाजीके पास गये। उन्होंने सोचा था कि बाबाजी कहेंगे—नहीं-नहीं सेठ! हटाओ यहाँसे। हम छूते नहीं हैं, देखते नहीं हैं। अब दस

हजारतक तो बाबाजीने मना कर दिया था। देखा, कि पोटली सेठजीकी बड़ी है, तो जरा ध्यान लगाकर बैठ गये। सेठने रखा, तो सोचा—कि जब बाबाजी ध्यान खोलेंगे, तब मना करेंगे—कि ले जाओ। थोड़ी देर बैठे रहे। आँख खुली तो बाबाजी दूसरी बात करने लगे। वह पोटलीको मानो देखते ही न थे। फिर सेठजीने इशारा किया—कि महाराज! मैं आपके लिए यह ले आया हूँ। वे बोले कुछ नहीं। अब तो सेठजी जानेके समय जब प्रणाम करने लगे, तो दोनों हाथोंसे पोटलीको छूआ—कि महाराज, इसको यहाँ रहने दे न? वे सोचते थे, कि अब भी बाबाजी कह दें—कि ले जा। अब बाबाजीको तो डकार ही न आवे। फँस गया सेठ! आकर उसने अपना सिर पीट लिया—हाय-हाय! आज हम चक्करमें आगये!

देखो, भगवान्‌के साथ प्रियताका जो सम्बन्ध है, यह कोई मामूली नहीं है। दुनियामें कहाँ-कहाँ प्यारे-प्यारेका सम्बन्ध जोड़ते फिरते हैं! काशीके पण्डित दिल्लीमें गये और बादशाहके सामने हाथ जोड़कर बोले—*दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा।* यह दिल्लीका बादशाह है, कि खुद ईश्वर है! तो जहाँ लोगोंका स्वार्थ सिद्ध होता है, वहाँ रिश्ता जोड़ते हैं और जहाँ स्वार्थ सिद्ध नहीं होता है, वहाँ रिश्ता नहीं जोड़ते हैं। पहले उम्मीद होती है कि हमारा स्वार्थ सिद्ध होगा—तो रिश्ता जोड़ते हैं। जब उम्मीद टूट जाती है तो छोड़ देते हैं। भगवान्‌के मार्गमें बहुत आगे बढ़कर भी एक पलटू बाबा हुए हैं, उनका पद है—

बीच में माया मिली रही लपटाय के।
हाँ हाँ रे पलटू। परे नरक में जाय महंती पाय के॥

चलते हैं ईश्वरकी ओर और फँस जाते हैं संसारमें। अपना प्यार ईश्वरसे नहीं जुड़ता है। जब एक बार ईश्वरसे जुड़ जाता है महाराज, तो

जिन आँखिन में वह रूप बस्यौ,
उन आँखिन ते अब देखिये का॥

जिन आँखोंमें प्यारे श्यामसुन्दरका रूप बस गया, उन आँखोंसे अब दुनियामें देखने लायक कोई चीज नहीं मालूम पड़ती। ईश्वरके साथ प्यारका सम्बन्ध होना चाहिए। आत्मा जान लेना दूसरी चीज है और मालिक जानकर हाथ जोड़ लेना दूसरी चीज है। अपना प्यारा वही है। न मरनेका डर है, न बिछुड़नेका डर है। दुनियाका व्यवहार सब निभाते चलो, लेकिन अपना प्यार जो है, वह परमेश्वरसे रखो। अगर तुम चौपाटीपर या पार्कमें या सड़कपर अपना प्यार लुटा दोगे, तो सिवाय दु:खके और कुछ सृष्टिमें मिलनेवाला नहीं है।

यह तो हुई प्रियता। अब दूसरी ओर देखो।

प्रहसितं प्रेमवीक्षणं। फिर वह उन्मुक्त हँसी। भगवान् खुलकर हँसते हैं। खास करके जब भक्त रोने लगता है, जब उसकी आँखोंसे आँसू गिरते हैं और वह घिघियाता है, तब भगवान् आकर सामने खड़े हो जाते हैं और अंगूठा दिखाते हैं—क्यों बाबू! बस, इतनेमें ही रो गये? और अगर पूछ लें—क्योंजी, किसके लिए रो रहे हो? मेरे लिए रो रहे हो क्या? सौ घड़ा पानी पड़ जाय न, उस भक्तके सिरपर, जो प्यार करे भगवान्से, और रोवे दूसरेके लिए। आकर भगवान् सामने खड़े हो जावें तो क्या बतावेंगे? बोलो! वे जब पूछेंगे—क्यों भगतजी! मेरे लिए रो रहे हो? तो क्या कहोगे? कि लुगाईके लिए रो रहे हैं? उस मुटियारके लिए रो रहे हैं? मारवाड़ी भाषामें मर्दको मुटियार बोलते हैं। सोना-चाँदीके लिए रो रहे हो? तो भगवान् हँसते हैं, खास करके उस समय—जब भक्त दूसरेको पाकर खुश हो जाता है और भक्त दूसरेके लिए रोने लगता है। भगवान्की वह प्रेमसे भरी हुई हँसी!

तो भगवान्के साथ प्रियतमका सम्बन्ध; वे हमारे पति हैं, प्रियतम हैं, मित्र हैं, पुत्र हैं, सर्वस्व हैं—ऐसा रिश्ता! जिस समय भगवान् हँसते हैं न, उस समय शोकके जो आँसू हैं, वे सूख जाते हैं। भक्त भी उनकी हँसीमें हँसी मिलाकर हँस देता है।

और **प्रेमवीक्षणं**। प्रेमसे भरी नजर! ये तीन बातें हो गयीं। **विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम्**—और उनका विहार; जो वे खेलते हैं। एक ग्वालके कंधेपर हाथ रख लिया, दूसरे हाथमें कमल ले लिया।

श्यामं हिरण्यपरिधि वनमाल्यवर्हधातु-प्रवाल-नटवेशमनुव्रतांसे।
विन्यस्त हस्तमितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलाल-कपोल-मुखाब्ज-हासं॥

यह वही श्लोक है, जिसको चैतन्य महाप्रभु जब-जब सुनते थे न, बेहोश हो जाते थे। जितनी बार उन्होंने अपने जीवनमें यह श्लोक किसीके मुँहसे अचानक सुन लिया, उतनी बार बेहोश होकर गिर पड़े। साँवरा तो रंग है उसके बदनका और पीताम्बर ओढ़े हुए। गलेमें बनमाला, सिरपर मोरमुकुट। शरीरमें जगह-जगह धातुएँ लगी हुई, और वृक्षोंके पत्ते जगह-जगह शरीरमें लगे हुए। नटके समान वेश। एक ग्वालेके कंधेपर अपना हाथ रख दिया। दाहिने हाथमें लिया कमल और हिला रहे हैं। मुख-कमलपर हँसी है, अलकें कपोलों-पर लटकी हुई हैं। कुण्डलकी जो चमक है, उससे कपोल जगमग जगमग हो रहे हैं। चैतन्य महाप्रभु सुनते थे, बेहोश हो जाते थे। सुनते तो हम लोग भी हैं और बेहोशी हम लोगोंको भी होती है, लेकिन भगवान्‌के लिए बेहोशी नहीं होती। वह तो महाराज, ऐसी माया फैलायी है दुनियामें!

मायाका वर्णन है—

वेश्या किया सिंगार है, बैठी बीच बजार।
बैठी बीच बजार नजारा सब सौं मारे।
लेती खसम की नाम, खसम सों परिचय नाहीं॥

ईश्वरका नाम लेते हैं, पर ईश्वरको पहचानते नहीं। बड़ी भारी माया फैली है। इस मायाकी ओरसे मनुष्यका मन खींचनेके लिए भगवान् विहार करते हैं।

अब देखो! प्रेम भरी हँसी और चितवन ये तो हैं चेष्टारूप। जो विहार है, वह है क्रिया रूप। जो बातचीत है, वह है वाणीरूप। तो चेष्टा

है, क्रिया है, वाणी है। और मन भी है--**प्रेमवीक्षणं**। भगवान् हँसकर देखते हैं।

अब थोड़ी चर्चा ध्यानकी कर लेते हैं। वैसे जिससे प्रेम होता है, उसका ध्यान होता है। जिससे द्वेष होता है, उसका भी ध्यान होता है। लेकिन द्वेष जिससे होता है, उसका ध्यान होनेपर दिलमें जलन होती है, शान्ति नहीं मिलती। जिससे प्रेम होता है, उसका ध्यान होनेपर विकार होता है चित्तमें। वह विकार क्या होता है? कि जिसका हम ध्यान कर रहे हैं, वह हमको बाहर मिलना चाहिए, आँखसे दिखना चाहिए, जबानसे उससे बात होनी चाहिए। वह हमारे शरीरसे सट जाना चाहिए। संसारमें यही होता है। द्वेष होनेसे दिलमें जलन होगी, और जिससे प्रेम होगा, उसकी याद आवेगी। तो थोड़ा दिल गीला होगा, चित्तमें विकार आवेगा। आँखसे देखनेका मन होगा, बाँहसे लपेटनेका मन होगा, बात करनेका मन होगा, सटनेका मन होगा। संसारमें किसीसे प्रेम होगा, तो विकार होगा।

अब भगवान्‌के प्रेमकी बात देखो। प्रेम, शुद्ध प्रेम तो जो आपके हृदयमें बैठा हुआ ईश्वर है, उसीसे हो सकता है। एक बात! और उसीका सम्बन्ध अटूट हो सकता है। उसके लिए जो हृदय द्रवित होता है, उससे जो हृदयमें मैल होती है, वह छूट जाती है। जो मिठास होती है, चिकनाई होती है, स्निग्धता होती है, वह हृदयमें रह जाती है। प्रेममें लड़ो तो भी वही और खेलो तो भी वही। लड़ाई भी करना, तो ईश्वरसे और प्यार भी करना, दुलार भी करना, तो ईश्वरसे। ईश्वरसे प्रेम करना निर्भय होकर, उसमें डरना नहीं। झेंपना भी और प्रेम भी करना? निर्भयता आनी चाहिए जीवनमें। ईश्वर चाहे हमारे मनके अनुसार करे कि मनके प्रतिकूल करे, दोनों स्थितियोंमें उसके प्रेमको पहचानना, सबसे कठिन बात यही होती है। जो हो रहा है, क्या वह उसके हाथसे नहीं हो रहा है?

सालिग्रामकी बटिया होती है। एक आदमीका उससे प्रेम हो गया और उसने सालिग्रामसे ब्याह कर लिया। साालिग्राम तो साक्षात् नारायण हैं। अब एक दिन नारायणने सोचा कि भाई! यह हमारी पत्थरकी बटियासे इतना प्रेम करता है, इससे तो साक्षात् मिलना चाहिए। बटिया उन्होंने हटा दी और उसकी जगहपर खुद आकर खड़े हो गये। अब वह रोवे कि नहीं, हमको तो बटिया ही चाहिए, हमारे जो गोल-मटोल ठाकुरजी हैं, हमको तो वही चाहिए। अरे भाई! पहचानो। वह जो बटिया थी, वह तो नारायणकी प्रतिनिधि थी। साक्षात् नारायण तुम्हारे सामने खड़े हैं, उनको पहचानो। संसारमें जो सोना है, चाँदी है, सगे-सम्बन्धी हैं, रिश्तेदार हैं, नातेदार हैं—ये सब सालिग्रामकी बटिया ही हैं। असली जो नारायण हैं, वे जब मिलते हैं, तो कभी-कभी तुम्हारी जो प्रिय लगनेवाली चीज है, उसको हटा देते हैं। उसमें रोनेका कोई कारण नहीं है।

एक बुढ़िया थी। गुरुजीने उसको पत्थरका एक टुकड़ा दिया और कहा—देख, ये गोपालजी हैं। इनकी सेवा करना। अब महाराज, बुढ़िया उनको सबेरे नहलावे, बालभोग करावे, उनको सुलावे, उनको पंखा झले। एक बार गाँवमें हल्ला हुआ—कि भेड़िया आया, भेड़िया आया। तो लेकर डंडा बैठ गयी दरवाजेपर—कि हमारा बाल-गोपाल अभी छोटा है न! कहीं भेड़ियेके नामसे डर न जाये। अब वह न खाये, न पीये, दरवाजे पर डंडा लेकर बैठी। दो तीन-दिन जब हो गये, तो गोपालके मनमें आया—कि यह बेचारी भूखी कब तक रहेगी? मुकुट धारण किया, पीताम्बर ओढ़ा, बाँसुरी हाथमें ली और चमचम चमकते हुए वे उसके पास गये। बोले—कि ओ मैया! दरवाज़ेपर काहेको बैठी है? चल घरमें। खा-पी। बोली—हटो-हटो! तुम कौन हो? हमारा गोपालजी है भीतर। भेड़िया आया है गाँवमें, कहीं वह डर न जाये। कहीं भेड़िया हमारे गोपालजीको छू न दे। वह बोले—अरी मैया! मैं ही तेरा गोपाल हूँ। देख,

आया हूँ तेरे पास। बोली—हट! तेरे जैसे चमकने सौ वार दें अपने गोल मटोल भगवान् पर। गोपालजीने कहा—कि देखो! अब यह जो पत्थरकी बनी हुई मूर्ति है, उसके साथ रहने लायक तुम नहीं हो। अब यह तो हमारे साथ रहेगी। चल मैया! चल हमारे साथ। हम तुमको अपने घर ले चलते हैं। उठा ले गये वह।

प्रेमकी रूपरेखा दूसरी होती है, बिलकुल निर्भय! और अपने मनके खिलाफ भी कोई काम होवे न, तो उसीके हाथसे हो रहा है, यह पहचान होती है। इसमें उसका ही हाथ है कि नहीं? जीवनको दिव्य बनाने वाली वस्तुका नाम भगवान्‌का प्रेम है। और यह पुराना कभी नहीं पड़ता, बिलकुल नया-नया मालूम पड़ता है। ऐसे नहीं—कि अरे, वही है यह। जो कल था सो आज है। बिलकुल नयी-नयी मधु, नया-नया रस इसमें उत्पन्न होता है।

तो यह भगवान्‌की आँख देखो। **प्रेमवीक्षणं**—प्रेमकी आँखसे देखते हैं। माने उनकी दृष्टि हमेशा प्रेमीपर रहती है। एक बात नोट कर लेवें; प्रेमकी दृष्टिसे देखते हैं—माने उनकी आँख हमेशा प्रेमीपर रहती है और उनकी आँखमें-से स्नेहकी वर्षा होती है। जब वह आँख टेढ़ी करते हैं, तब भी प्रेम ही रहता है। जब वह डराते हैं, तब भी प्रेम ही रहता है। जब वह आँख फेर लेते हैं, आँख बन्द कर लेते हैं, तब भी प्रेम ही रहता है। बाबा! घीका लड्डू बना हो, तो चाहे टेढ़ा हो, चाहे सीधा हो, घी तो रहेगा न! ऐसे प्रेमसे बने गोपालजी, वे टेढ़े हों चाहे सीधे, उनकी सब वस्तु प्रेममयी होती है। उनका विहार, उनकी चितवन, उनकी हँसी, उनकी बातचीत—सब प्रेममय है। श्री वल्लभाचार्यजी महाराजने इसके छह विभाग किये हैं और श्रीजीव गोस्वामीजी महाराजने तीन विभाग किये हैं। तो देखो, तीन विभागवाला बताते हैं।

हे प्रिय! **तव प्रहसितं कथं भूतं? प्रेम्णा वीक्षणं यस्मिन् तत्।** तुम्हारा वह हँसना, जिसमें प्रेमभरी चितवन भी शामिल है—माने

प्रेम भरी चितवनके साथ हँसना। देखते भी जाना हमारी ओर और हँसना भी!

गोपी खिन्न होकर बैठी हुई थी—कि अबतक भगवान् नहीं आये। अबतक कृष्ण नहीं आये। कहाँ गये? कहाँ गये? और कृष्ण तो दूसरेके घर चले गये थे। जब उसको मालूम पड़ा, तो और खिन्न हुई। इतनेमें आगये महाराज! आगये और प्रेमकी आँखसे देखकर वहाँ ठठाकर हँसे—बस! तुम्हारे हृदयमें इतना ही सार है? **प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं**। प्यारे! वह तुम्हारी प्रेमकी चितवनसे युक्त जोर-जोरकी हँसी! एक बात।

विहरणं च ते ध्यानमङ्गलं। ते तव ध्यानमङ्गलं विहरणं च—यह दूसरा विभाग। पहलेमें कहते हैं कि देखो, हँसीमें और वीक्षणमें, दोनोंमें मनका भाव प्रगट होता है। मनमें जो परमानन्द भरा हुआ है, वह प्रकट होता है। भगवान् कृष्ण जब प्रेमभरी चितवनसे देखकर हँसते हैं, तब मानो अपने हृदयके प्रेम-भावको दरसाते हैं। और **विहरणं च ते**—भगवान्‌का जो विहार है, क्रीड़ा-खेलना। गोपी उधरसे झाँक रही, इधरसे झाँक रही। वह तो नन्द बाबाके सामने जानेसे डर रही। इतनेमें आगया श्रीदामा। तो दोनों हाथोंसे पकड़कर भगवान् कृष्णने उसको ऐसा लगाया अपने सीनेसे! और देखा गोपीकी तरफ, जो आड़में छिपकर देख रही थी। **ध्यानमङ्गलं** गोपीकी आँख बन्द हो गयी और ध्यानमें श्रीकृष्णका आलिंगन उसको प्राप्त हो गया। यह दूसरा भाव। तो यह क्या है? कि यह क्रिया है। कैसी क्रिया है? कि ध्यानमंगल क्रिया है। आप देखो; ध्यान ध्यानकी बात बहुत कहते हैं लोग। वेदान्ती लोग तो कहते हैं—**ध्यानं निर्विषयं मनः**। वेदान्तियोंके अन्दर दो प्रकारका ध्यान प्रचलित है। जैसे उत्तर ध्रुव है न, शास्त्रमें लिखा है कि वहाँ एक अवीची नामका पर्वत है। जब उस पर आदमी खड़ा हो जाता है, तो उसको न पूरब दिखे, न पश्चिम दिखे, न उत्तर दिखे। उसको सिर्फ दक्षिण-ही-दक्षिण दीखता

है। तो बोलें—देखो, हम समुद्रसे भी उत्तर हैं, देशसे भी उत्तर हैं, हिमालयसे भी उत्तर हैं, हम ब्रह्माण्ड गोलमें बिलकुल उत्तर सिरेपर खड़े हैं। और जो भी है, सब हमारे दक्षिण है। माने हम सबके पीछे खड़े होकर सबके द्रष्टा, सबको देख रहे हैं। तो मनका निर्विषय हो जाना वेदान्तियोंमें एक ध्यान है और मनकी ब्रह्माकार वृत्ति, यह दूसरा ध्यान है। योगी लोग अपने लक्ष्यमें एकाग्रताको ध्यान मानते हैं। सांख्यवादी लोग असंगताको ध्यान मानते है। कर्मकाण्डी लोग जो हैं, वे जब जिस देवताके लिए आहुति देना हो, तब उस देवताके ध्यानको ध्यान मानते हैं। भक्त लोग ध्यान मानते हैं अपने प्रियतम मुरली मनोहर, पीताम्बरधारी श्यामसुन्दरके ध्यानको; यह जमुना, यह गोवर्धन, यह वृन्दावन, यह कदम्बका वृक्ष—

यमुनातटनिकटस्थितवृन्दावनकानने महारम्ये।
कल्पद्रुमतलभूमौ चरणोपरि चरणं स्थाप्य।
तिष्ठन्तं घननीलं रवते यथा भासयन्तम्।
यः विश्वं पीताम्बरपरिधानं चन्दनसंलिप्त सर्वाङ्गम्।

जमुनाजीके किनारे एक वृन्दावन है। वहाँ एक कल्पवृक्ष है। उसकी जड़में एक कल्पवेदी है। उसके ऊपर एक पाँवपर दूसरा पाँव जमाकर, त्रिभंग ललित भावसे खड़े, मन्द-मन्द मुस्कुराते हुए जो बाँसुरी बजा रहे हैं, ये मुरली-मनोहर हैं।

तो नामका ध्यान, रूपका ध्यान, वेषका ध्यान, गुणका ध्यान, लीलाका ध्यान, सम्बन्धका ध्यान, धामका ध्यान, ये भक्तलोग जो हैं न, वे भगवत् सम्बन्धी वस्तुओंका ध्यान करते हैं। **विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम्।**

मैयाने कहा—कि लाला, वह देखो, आलेमें मक्खन मैंने निकालकर रखा है। जरा तुम्हीं उठाकर ले तो आओ। अब लाला गये। हाथ नहीं पहुँचा आलेतक। मैयाको अन्दाज नहीं था। इतनेमें एक बछड़ा

आगया गायका, तो उसके ऊपर चढ़ गये। चढ़कर हाथ बढ़ाया आलेमें मक्खन उतारनेके लिए। इतनेमें बछड़ा वहाँसे हटा। एक हाथमें तो मक्खन लिया, और एक हाथसे आलेको पकड़ा। बछड़ा हट गया, लटक गये। अरी मैया, मैया, मैया—अब चिल्ला रहे हैं। यह क्या है? कि इसका नाम विहार है।

श्रीराधारानी आयीं। बैठे हैं आनन्दमें। उस दिन एक ऐसा हार पहन लिया था वक्ष:स्थलपर कि सामनेवालेकी परछाईं उसमें दिखे। श्री राधारानीने देखा, उन्हींकी परछाईं। पहचाना नहीं। बोलीं—क्यों श्यामसुन्दर! यह आज अपने हृदयमें तुमने किसको बिठा रखा है? बोले—वह तो बहुत सुन्दरी है, जिसको मैंने बिठा रखा है। वह तो बड़े बापकी बेटी है, हमसे बहुत प्रेम करती है। हम तो उससे बहुत प्रेम करते हैं? उसके बिना एक क्षण नहीं रह सकते हैं। अब राधारानी चिढ़ें—यह कौन? वे बेहोश होकर गिरने लगीं, तब जाकर उठाया कि प्रियाजी, यह तो और कोई नहीं, देखो न, तुम्हारी परछाईं है। यह तो मैंने एक ऐसा शीशा अपने हृदयपर लगा रखा है, जिसमें तुम्हारी परछाईं दिखती है। यह तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई नहीं है। यह तुम्हारा ही चित्र है, तुम्हारी ही परछाईं है। तो यह सब क्या है? कि यह क्रीड़ा है। भक्त लोग जब भगवान्‌की एक क्रीड़ा याद करते हैं, तो उनका भगवान्‌में ध्यान लग जाता है। असलमें जहाँ नाम न हो, रूप न हो, क्रिया न हो, वस्तु न हो—वहाँ ध्यान लगेगा क्या? जो ध्यानमें आवेगा, वह तो ध्येय बन जायेगा।

एक बारकी बात है—मैंने आप लोगोंको कई बार सुनाया होगा, गंगा किनारे हम लोग थे तो एक सज्जन आये। बोले—ईश्वर तो निराकार-ही-निराकार है। तो मैंने पूछा—कि आखिर कभी किसीने उस निराकारको अनुभव किया है कि नहीं? यह बताओ। जो अनुभवमें आया, उसकी तो कोई-न-कोई रूपरेखा बनेगी—ऐसा अनुभवमें आया,

ऐसा अनुभवमें आया। बोले—भाई! देखा। तब तो साकार हो गया और नहीं देखा, तो? बोले—तब तो केवल कल्पना हो गयी। बोले—तुम वेदान्ती लोग क्या करते हो? कि आओ, फिर वेदान्तियोंकी तरह देखें। आत्माके रूपमें परमात्माको देखना—इसका नाम वेदान्त है और सम्पूर्ण विश्वमें अपने प्रियतमको देखना—इसका नाम भक्ति है। या तो वेदान्त कि जो तू सो मैं, और या भक्ति कि तू ही तू, तू ही तू, दूसरा रास्ता कहाँ है? तो ध्यानमङ्गलं—यह जो परमेश्वरका रूप है, वह ध्यानमंगल रूप है।

अब तीसरा देखो विभाग। एक तो प्रेमवीक्षणं प्रहसितं, दूसरा हुआ ध्यानमङ्गलं विहरणं, यह क्रिया है। और तीसरा है रहसि संविद:—एकान्तमें बातचीत करना। तो वह कैसी है बातचीत? कि **हृदिस्पृशः**—हृदयको गुदगुदानेवाली है, हृदय-स्पर्शी है। भगवान् एकान्तमें बात करते हैं। *लंगर मारि गागर फोरि गयो।* गोपी पानी भरनेके लिए जमुनाजी गयीं। जब लौटी, तो रास्तेमें मिले श्यामसुन्दर और उन्होंने महाराज, वह निशाना ढेलेका लगाया दूरसे! मिट्टीकी गगरी, ढेला लगा और फूट गयी।

लंगर मारि गागर फोरि गयो।
नई चुनरिया टूक-टूक करि।
निपट ढीठ मोहि आँख दिखायो।

और फिर

मोसो कहें अरी ऐरी सुन्दरी!
तो समान ब्रज सुघर न कोऊ।

रहसि संविदो या हृदिस्पृशः—एकान्तमें आकर ऐसी-ऐसी बातें कहता है, जो दिलको छू जाती है, गड़ जाती हैं हृदयमें। ***उरमें सुन्दर स्याम गड़े।*** आकर हृदयमें श्यामसुन्दर गड़ गया, उसकी बातें गड़ गयीं। यह तीसरा विभाग हुआ। **कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि**—अरे ओ

कपटी! वह तेरी प्रेमभरी हँसी, वह ध्यानमंगल विहार और वे एकान्तमें कही हुई मीठी-मीठी हृदय स्पर्शी बातें, सब कपट हैं। पर यह तो अब मालूम पड़ा है। जब हम कथा सुनने बैठती हैं, कि आओ, श्रीकृष्णकी चर्चा करें और सुनें, तो उस समय वे बातें याद आती हैं। तो कथामें-से ध्यान हट जाता है और हम पहुँच जाती हैं जमुना किनारे।

अरे कपटी! सबको ईश्वर मिलता है तो शान्ति देता है। और तू नन्दका लाला, ऐसा ईश्वर हमको मिला है, जिसने हमारे हृदयको क्षुब्ध कर दिया, अशान्त कर दिया।

अच्छा देखो! अब एक तीसरी बात आपको सुनाते हैं। यह **प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं** जो है, प्रेम भरी चितवनसे युक्त हँसी, यह आनन्द-है-आनन्द। और **विहरणं च ते ध्यानमङ्गलं**—यह क्रियाका जो प्राकट्य है, यह सत्ता है। और **रहसि संविदो या हृदिस्पृशः**, यह चेतन है, चिद्भाव है। संविद् शब्दका ही प्रयोग किया, वाणीसे ज्ञान होता है। यह जो तुम्हारी सच्चिदानन्द रूपिणी अभिव्यक्ति हो रही है, जाहिर हो रहे हैं क्षण-क्षण, क्षण-क्षण सच्चिदानन्द रूपमें, वह हमारे हृदयको क्षुब्ध कर रहे हैं।

अच्छा लो! एक दूसरी बात सुनाता हूँ। श्रीकृष्णने गोपियोंसे कहा—गोपियो! तुम क्या आँख बन्द करके बैठी हो। देखो न, मैं आकर तुम्हारे सामने खड़ा हूँ और तुम आँख बन्द करके ध्यान कर रही हो। मेरे बिना जी नहीं सकती हो न! तुमको मालूम नहीं, तुम्हारा प्राण मैं हूँ। गोपीने कहा—जाओ, जाओ! हम आँख बन्द करके बैठी हैं। तुम्हारी कथा सुन लेंगी और तुम्हारा ध्यान कर लेंगी। हमें तुमसे मिलनेकी कोई जरूरत नहीं है। जहाँ गये थे, वहीं जाओ।

एक बार बाँधपर लीला हुई भगवान् श्रीकृष्ण राधारानीसे मिलनेके लिए आये। तो राधारानीने कहा—*सखी! नन्दलाल न आवन पावे।* यह हमारे घरमें न आने पाये, निकाल दो इसे। अब दो सखियाँ दरवाजेपर

खड़ी हो गयीं। कृष्ण उनके पाँव छूयें और विनती करें, चिरौरी करें। वे तो भीतर जाने ही न दें। अब तो वहाँ जो लोग लीला देख रहे थे, उनमें-से कइयोंको ऐसा खराब लगा—हमारे कृष्णका, हमारे भगवान्‌का इतना अपमान, इतना तिरस्कार? अरे बाबा! ऐसा प्रेम भी तो हो। बिना प्रेमके ऐसा कैसे होगा?

श्रीकृष्ण हँसे और बड़े प्रेमकी आँखसे उन्होंने गोपीकी तरफ देखा—उन्हीं गोपियोंमें-से, जो वहाँ बैठी थीं। तो गोपी ने कहा—कि कृष्ण! तुम सारे व्रजके प्यारे हो, इसलिए हमारे भी प्यारे हो। यह बात तो हम मानती हैं; लेकिन लाला, चाहे जितना हँसो, **प्रहसितं प्रेम वीक्षणं विहरणं**, यह तो तुम हँसते हो हमारे आसपास बारम्बार और यह जो तुम प्रेमकी नजरसे देखते हो हमारी ओर, यह जो यहाँ खेल-कूद, ऊधम मचाते हो ग्वाल बालोंके साथ और जब कभी हम एकान्तमें मिल जाती हैं, तब जो मीठी-मीठी बातें करते हो, अरे कपटी! हम तेरी बात समझती हैं। तेरे झाँसेमें आनेवाली नहीं हैं।

नो मनः क्षोभयन्ति हि। नो माने नहीं। सारी दुनियामें नो माने नहीं होता है। संस्कृत में 'नो' अव्यय है, निषेधके अर्थमें, नहींके अर्थमें। संस्कृतमें तो है-ही-है, संस्कृत तो मैं बोल ही रहा हूँ; दुनियामें जितनी भाषाएँ हैं—चाहे अंग्रेजी हो चाहे फारसी, सबमें उसको चाहे 'नो' बोलो चाहे 'न' बोलो चाहे 'नहिं' बोलो। बोलनेमें फर्क हो जाता है, लेकिन हर जगह 'नो' माने 'नहीं' होता है। तो कहती हैं—चलो-चलो! तुम्हारी हँसी हमारे ऊपर नहीं चलेगी। हँसीका जादू हमारे ऊपर नहीं चलेगा। यह तुम्हारी आँखोंका जादू हमारे ऊपर नहीं चलेगा। हटो यहाँसे। **विहरणं**—क्या खेल-कूद मचा रखा है? और ये क्या मीठी-मीठी बातें कर रहे हो? **कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि**। अगर तुम सच्चे होते, तो तुम्हारी ये बातें हमारे मनको क्षुब्ध करतीं। हम मोहित हो जातीं। लेकिन अब तो हम ध्यान करके बैठी हैं। अपने आपमें मग्न हैं।

हम किसी ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी चेली हो गयी हैं। अब तुम्हारे चक्करमें आनेवाली नहीं। **कुहक नो मनः। मनः नो क्षोभयन्ति**। नो माने नहीं। हमारे मनको ये क्षुब्ध करनेमें समर्थ नहीं हैं। अब क्यों आये हो हमारी चिरौरी, विनती करने? हमें तुम्हारी जरूरत नहीं है। अब यह तुम्हारी हँसी, तुम्हारी मुस्कान, और यह तुम्हारी चितवन, यह चलना, यह बोलना—**ध्यानमङ्गलं**। हमको जरूरत होगी तो हम ध्यान कर लेंगी। तुम जहाँ गये थे, वहीं जाओ।

अब तो महाराज, भगवान्‌की बात तो ऐसी—कि उल्टी गति है उनकी। 'न' कहो, तो आकर सामने खड़े हो जायँ। स्त्रियोंमें ज्यादा रहनेसे कुछ असर तो पड़ता ही है भाई! जैसे लोगोंमें रहो, वैसा बन जाते हैं।

अब श्रीकृष्ण अंतर्धान हो गये, तब गोपियाँ ढूँढ़ती हैं उनको। जब गोपियाँ मान करके बैठती हैं, तब श्रीकृष्ण आकर छेड़-छाड़ करते हैं। तो जो रूठकर बैठी हैं, वे छेड़-छाड़ करनेसे जल्दी मानेंगी थोड़े ही। तो कहती है—**नो मनः क्षोभयन्ति हि**। हटो-हटो! मान करके बैठी हैं और कृष्ण कहते हैं—नहीं गोपी! अपने मुँहपरसे यह कपड़ा हटा दो। जरा आँख खोलकर देखो। मैं तुम्हारा प्यारा! तुम्हारा प्रीतम—कितने प्रेमसे तुम्हारे सामने आया हूँ।

: १५ :

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून् नलिन सुन्दरं नाथ ते पदम्।
शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति॥ ११॥

आओ! एक बार अपने मनको ले चलें वृन्दावनमें। यह राधाके नाममें पहले र है और कृष्णके नाममें पहले क है। तो र जो है, वह अग्निबीज है, और क जो है, यह सुखका, रसका, जलका बीज है। वैसे जलका बीज व मानते हैं, लेकिन क माने जल होता है, क माने सुख होता है, क माने सिर होता है।

राधा जो हैं—वह प्यास हैं, पिपासा तत्त्व हैं वह। **प्यास ही को रूप मानौ प्यारी जू को रूप है।** प्यारीजीका स्वरूप क्या है? प्यास। और कृष्णका स्वरूप क्या है? बोले—तृप्ति। क माने सुख, क माने तृप्ति, क माने रस। और र माने प्यास। तो जब दोनों एक साथ मिलते हैं न, राधा-कृष्ण, राधा-कृष्ण! तब प्यास और तृप्ति, इन दोनोंको मिलाकर प्रेम पूरा होता है। खाली तृप्तिका नाम प्रेम नहीं है। क्यों? कि जहाँ तृप्ति हो गयी, वहाँ आगे बढ़नेकी गुंजायश नहीं रही। और जहाँ प्यास-ही-प्यास है, तृप्ति नहीं है—वहाँ पुरुषार्थ नहीं है। पुरुषार्थ नहीं है माने उसको कोई चाहेगा नहीं। दुनियामें कोई प्यासको नहीं चाहता। लोग पानीको चाहते हैं, प्यासको नहीं चाहते। अकेली प्यास रहे तो वह पुरुषार्थ नहीं होगा और अकेली तृप्ति रहे तो बासी पड़ जायेगी। इसलिए प्यास और तृप्ति दोनोंके मिलनका नाम प्रेम है। इसीसे राधिका और कृष्ण—दोनोंको मिला करके प्रेमकी पूर्णताका वर्णन किया जाता है।

अब देखो! कोई भक्त चाहता है कि हमारे हृदयमें प्रीति आवे। तो वह ध्यान करे कि श्रीकृष्ण हमारे सिरपर हाथ रख रहे हैं। श्रीकृष्ण हमको हृदयसे लगा रहे हैं, श्रीकृष्ण हमको बड़ी तृप्ति दे रहे हैं। यह ध्यान तो हो गया और यह ध्यान न होवे कि हमारा हृदय उनके बिना फट रहा है, तो? **क्षणं च क्षणंयुग शतमिव याषां येन बिना भवत्।** श्रीकृष्णके बिना गोपीका एक क्षण सौ युगके समान है। तो इतनी व्याकुलता, इतनी पीड़ा आवे हृदयमें, आओ प्राणनाथ!

अब प्राण लगे सिहरान।

हमारे प्राणेश्वर! आओ, आओ, आओ! अब तुम्हारे बिना हमारी साँस शिथिल पड़ गयी है। यही प्यास और तृप्ति—इन्हीं दोनोंको मिलाकर यह प्रीतिका मार्ग, प्रेमका मार्ग चलता है। गोपीके बिना कृष्ण बासी पड़ जायेंगे और कृष्णके बिना गोपी केवल प्यासी-ही-प्यासी रह जायगी। इसलिए जब गोपी और कृष्ण दोनों मिलते हैं, तब यह प्रेमका नवीन मार्ग चलता है और मन इसमें फँसता है। इसीसे देखो, घर-गृहस्थीमें भी क्या करते हैं? कि अपने प्रेमको नया करनेके लिए बीच-बीचमें लड़ाई कर लेते हैं। फिर प्यास प्रेमकी होती है, फिर ताजगी आती है। बिना लड़ाईके प्रेममें ताजगी नहीं आती। बिना विरहके मिलनका जो सुख है ना, वह नहीं आता।

श्रीकृष्ण छिपकर बैठे हैं और गोपियाँ उनके लिए व्याकुल हो रही हैं। अब यदि गोपीके हृदयका ध्यान करें—कि उसके हृदयमें कितनी व्याकुलता है, उसकी आँखसे आँसू गिरते हैं, उसके शरीरमें रोमांच होता है, उसकी वाणीमें विकलता फूट पड़ती है, उसका कण्ठ गद्गद हो जाता है, उसका हृदय फटने लगता है। यह जो कृष्णके विरहमें गोपीकी विकलता है, वह अगर अपने ध्यानमें आवे, तो देखो! तुम्हारे हृदयमें प्रेमकी भूमिका बँध जाती है। तो यह ऐसे लोगोंके लिए है। अब कोई यह चाहता हो कि हमको कथा में धन कमानेकी बात ही मिलनी

चाहिए, तो वह तो निन्दा ही करके जायेगा न—कि उसमें तो गोपी-कृष्णकी चर्चा कर रहे थे। वहाँ तो पैसा कमानेकी कोई बात ही नहीं थी। कोई महाराज, समाज-सेवी हों, समाज-सुधारक हों तो यही कहेंगे ना—कि समाज सुधारकी तो कोई बात ही नहीं थी। और वेदान्ती हों तो कहेंगे—कि अधिष्ठान और अध्यस्तकी तो चर्चा ही नहीं हुई। घटाकाश और मठाकाश तो आया ही नहीं, कथा क्या हुई? यह तो जिसके कानको जैसी आदत पड़ जाती है! और जिसको जो चीज चाहिए, उसके लिए वह चीज़ होती है। असलमें जो राधा-कृष्णके प्रेमके प्यासे हैं, उनके लिए यह चर्चा है।

आपको क्या बतावें! पहले हमारे महापुरुष थे श्रीजीवगोस्वामी, उन्होंने एक ग्रन्थ लिखा। बड़ा भारी ग्रन्थ है, 'षट्सन्दर्भ' उसको बोलते हैं। हजारों पृष्ठकी पुस्तक है। उन्होंने ग्रन्थके पहले एक श्लोक लिखा है। उसमें लिखा है, कि—**यः श्रीकृष्ण - पदाम्भोज भजनैकाभिलाषवान् तेनैव दृष्यतां एतत् अन्यस्मै शपथोर्पिताः**। जिसके मनमें एक ही लालसा हो—कि हम श्रीकृष्णके चरण-कमलका भजन करें, वही इस ग्रन्थको पढ़े। दूसरेके लिए मैं सौगन्ध दिलाता हूँ। ग्रन्थके प्रारम्भमें **अन्यस्मै शपथोर्पिताः**—दूसरेको मैं सौगन्ध दिलाता हूँ—बाबा! तुम जाओ, समाज-सेवा करो! अपना धन कमाओ, अपना वेदान्तका ज्ञान प्राप्त करो। होम करो। हम तुम्हारे लिए पुस्तक नहीं लिख रहे हैं। जिसको राधाकृष्णका, श्रीकृष्णका प्रेम चाहिए, उसके लिए यह पुस्तक है। अधिकारी होते हैं सब विषयके। तो जिनकी इस विषयमें रुचि हो न, जिनकी प्रीति हो, उनको इसकी एक-एक बातमें आनन्द आवेगा।

गोपियोंने कहा—कि प्यारे श्यामसुन्दर! हम तो तुमसे इतना प्रेम करती हैं। देखो, रातके समय तुम्हारे लिए बन-बन भटक रही हैं और तुम हमारे साथ कपटका व्यवहार करते हो। क्या यही प्रीतिकी रीति है?

कपट माने है सुख पर पर्दा; क माने सुख और पट माने पर्दा। जो सुखका झरना था, उसको ढँक दिया। इसका नाम हो गया कपट। तुम कपट करते हो। हमारे हृदयमें तुम्हारे प्रति कितना प्रेम है!

अगले जो दो श्लोक हैं, उनमें यह बात कही गयी है कि प्रातः-कालसे लेकर सायंकालतक हमारा मन तुम्हारे लिए व्याकुल रहता है। ये रातमें बैठी हैं यमुना किनारे और याद कर ही हैं प्रातःकालको!

चलसि यद् व्रजाच्चारयन् पशून्
नलिन - सुन्दरं नाथ ते पदम्।

नाथ माने स्वामी। हे नाथ! तुम हमारे प्राणनाथ हो, हृदयेश्वर हो। जब तुम व्रजसे निकलकर जाते हो गोचारणके लिए वनमें, तब हमें कितना कष्ट होता है, इसको हम ही जानती हैं। तुम नहीं जान सकते, बाबा!

बाँझ कि जाने प्रसूति की पीरा।

प्रेमीके हृदयमें प्रियतमसे मिलनेके लिए कितनी पीड़ा होती है, इसको प्रियतम क्या समझे? और अगर समझे, तो छोड़कर जाय क्यों?

तो **चलसि यद् व्रजात्**। अब यह देखो! वह जो श्लोक हम बोलते हैं न वेणुगीतका, **बरहापीडं नटवरवपु**; उस श्लोकमें जो बात कही गयी है, वह सब इसमें गोपियाँ याद कर रही हैं। वहाँ शुकदेवजीने कहा है और यहाँ गोपियाँ अपने मुँहसे कह रही हैं। फर्क इतना ही है कि **चलसि यद् व्रजात्**—जब तुम व्रजसे निकलते हो गायोंको चराते हुए—**चारयन् पशून्**, तो इसमें जो ध्वनि है, उसको सुनाता हूँ।

गोपियाँ कहती हैं—कि तुम्हारे पाँव तो हमसे दूर नहीं जाना चाहते। वे यही चाहते हैं कि हम गोपियोंके आस-पास रहें और उनके कानमें हमारे पाँवकी जो ध्वनि है, वह पड़ती रहे। मैं तुम्हारे चरणोंकी ध्वनि पहचानती हूँ। तुम जबरदस्ती ज़ाते हो। **चलसिका अर्थ है** कि

बलात् अपने पाँव उठाकर चले जाते हो। जानेकी कोई जरूरत नहीं वैसे। गौओंके रहनेकी जो जगह है—उसका नाम व्रज है और जहाँ चरने जाती हैं—उसका नाम वन है। तो व्रज छोड़कर बनमें जाना, यह तुम्हारे पाँवको तो नहीं भाता है। तुम्हारे पाँव हमारे वक्षःस्थल छोड़कर, हमारे हाथोंका स्पर्श छोड़कर क्यों जाना चाहेंगे? परन्तु तुम यह सोचते हो कि जब हम जायेंगे नहीं वनमें, तो गोपियोंको दुःख कैसे होगा? और गोपियोंको दुःख नहीं होगा, तो हमको मजा कैसे आवेगा? तुम हमको दुःख दे-देकर मजा लेना चाहते हो। हम तुम्हें सुख देकर मजा लेना चाहती हैं, सुख देकर सुखी होना चाहती हैं। हमारे हृदयमें सच्चा प्रेम है, और तुम अपने प्रेमीको दुखाते हो। इसलिए तुम्हारे हृदयमें कपट है।

अच्छा देखो! जाते कैसे हो? एक बातपर ध्यान दें। **पशून् चारयन्**। जसोदा मैया बनमें गयी होतीं और तुम कहते—कि मैं नहीं जाऊँगा तो मैयाको दुःख होगा, तो चले जाते उनके लिए। नन्दबाबा बुलाकर गये हैं, तो जा रहे हैं; ठीक है। देवताकी पूजा करनेके लिए जा रहे हैं। यह भी ठीक है। जाते किनके लिए हो? इन निर्बुद्धि पशुओंके लिए। यहाँ गाय शब्दका प्रयोग होता, तब आदरके लिए होता। गाय तो आदर करने योग्य है; अच्छा भाई! गायके पीछे जाते हो। **पशून् चारयन्**—यह भेड़-बकरी चरानेके लिए जाते हो। इन बेवकूफोंको प्रेमका क्या पता—कि तुम्हारे विरहमें हमारी कितनी दुर्दशा होती है! ये तो आगे-आगे प्रेमसे चलती हैं तुम्हारी तरफ पीठ करके। तुम भी ऐसे—कि इनके पीछे-पीछे चलते हो और जिनकी आँखें तरस रही हैं, जिनका दिल फट रहा है—उनको छोड़कर जाते हो इन निर्बुद्धि पशुओंको चरानेके लिए।

पशून् चारयन्-**चारयन्**में यह भी ध्वनि है कि वे भी जाना नहीं चाहती हैं। उनको तुम जबरदस्ती हाँक-हाँककर ले जाना चाहते हो। माने, जब भगवान् गायोंको चरानेके लिए उनके पीछे-पीछे चलते हैं,

तो गौएँ घूम-घूमकर पीछे देखती हैं। वे अपनी आँखोंको श्रीकृष्णकी तरफ कर देती हैं। जाना है जमुनाजीकी तरफ और गायका मुँह घूम गया; वे अपने पीछे आनेवाले श्रीकृष्णका मुँह देखना चाहती हैं। वे चलती नहीं हैं, उनका चलना रुक जाता है। तब श्रीकृष्ण जबरदस्ती उनको धकेलते हैं—कि आगे चलो। तो लो! गायोंका भी दोष नहीं है। ये बेचारे अबोध पशु, उनको तुम जबदस्ती हाँककर ले जाते हो! क्यों? सिर्फ इसलिए—कि गोपियोंको तकलीफ हो। हमें कष्ट देनेके लिए ऐसा करते हो।

अगर कहो, कि गौएँ अच्छे रास्तेसे चलती होंगी; वहाँ बढ़िया सड़क बनायी हुई है और बालू बिछाया हुआ है, तो फिर वे चरेंगी क्या? चरनेके लिए तो रास्ता छोड़कर जहाँ घास होवे, वहाँ जाना पड़ता है। तुमको इसका ख्याल है? जब हमारे दिमागमें यह बात आती है, कि गाय रास्ता छोड़कर चली गयीं और उसके पीछे-पीछे श्यामसुन्दर भी रास्ता छोड़कर जा रहे हैं, तो हमारे दिमागकी क्या हालत होती है—मालूम है?

नलिन सुन्दरं नाथ ते पदम्। देखो, पाँवपर दृष्टि गयी। **चलसिमें** चालपर दृष्टि है। भगवान् कृष्णकी चाल कैसी है? ठुमुक-ठुमुकके पाद-विन्यास करते हुए नृत्यकी गतिपर, तालपर चलते हैं। यह उनकी चालपर नजर है। और **चारयन् पशून्,** ओ जमुने! गंगे! धौरी! कारी! ऐसे कहकर जब गायोंको पुकारते हैं, तो कैसे हाथसे इशारा करते हैं और कैसे बोलते हैं—उसपर नजर है।

अब देखो पाँव! चल रहे हैं, तो तलवोंपर नजर गयी। **नलिन सुन्दरं नाथ ते पदम्।** प्यारे स्वामी! तुम्हारा नलिन—सुन्दर पद। नलिन कहते हैं कमलको। नाल ही से इसका सम्बन्ध है। भगवान्के चरण कैसे? कि नलिनसे भी सुन्दर, कमलसे भी सुन्दर! कमलके समान सुन्दर—यह तो साधारण अर्थ है; **नलिनवत्**

सुन्दरं नलिनसुन्दरं। और **नलिनादपि सुन्दरं नलिनसुन्दरं**। कमलसे भी सुन्दर हैं।

देखो, कमलको कहाँ रहना चाहिए? सरोवरमें। उसको सूखी धरतीपर कहाँ घसीटा जाता है। हमारे हृदयके सरोवरमें खिलनेवाली जो चीज है, उसको तुम धरतीपर क्यों घसीटते हो? क्या हक है तुमको उसको तकलीफ देनेका? बस, इसीलिए न—कि गोपियाँ देखें कि तुम्हारे चरणोंको कष्ट हो रहा है! अपने चरणोंको कष्ट देकर भी तुम गोपियोंको कष्ट देना चाहते हो। कहाँ हमारा प्रेम और कहाँ तुम्हारा प्रेम! ये प्रेमी लोग ऐसे बात करते हैं।

मेरो मुँह नीको कि तेरो राधा प्यारी?

राधाप्यारी बोलती हैं, कि मेरा मुँह तो चन्द्रमाकी चाँदनी सरीखा है और तुम्हारा मुँह अमावसकी अन्धेरी रातके समान है।

तो तुम्हारे चरण; तुम कहो—कि हमारे हैं, हम अपने पाँव तो जहाँ चाहें वहाँ रखें। बरत लो अधिकार! हम बेबस हैं, व्रजमें बैठी हैं। चाहे जैसी मौज हो, वैसा करो।

देखो, पदम्‌में एकवचन है। **नासते पदं। एकमपि पदं किं पुनर्द्वयमपि**। तुम्हारा एक पाँव भी इतना सुन्दर है। दोनों पाँवोंकी सुन्दरताका वर्णन कहाँसे करें! अब हमारे मनकी क्या दशा होती है—सो सुनो—

शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः
कलिलतां मनः कान्त गच्छति॥

उस धरतीपर दृष्टि गयी, जहाँ श्रीकृष्णके चरण पड़ते हैं। माने प्रेमीकी नजर वही है जो अपने प्रियतमके आसपास मँडराती रहे। कभी उसके मुकुटपर गयी, कभी उसके मुखारविन्दपर गयी, कभी उसकी चालपर गयी, कभी उसकी स्वरलहरीपर गयी और कभी उस धरतीपर गयी, जहाँ उसके चरण-चिह्न पड़ते हैं। वहाँ गयी, तो **शिलतृणाङ्कुरैः**

सीदतीति नः। तो भाई, वृन्दावनकी भूमि। अभी थोड़े दिन हुए—पाँच-दस बरस हुए होंगे; कुछ लोग गिरिराजकी परिक्रमा कर रहे थे। उनको कुछ पत्थर मिले, जिनपर चरणके चिह्न उभड़े हुए तो लोग उठाकर ले आये। वे बिहारीजीके आँगनमें रखे हुए हैं। जो लोग वृन्दावन जाते हैं, उनका दर्शन करते हैं।

अब प्रश्न यह हुआ—कि कहाँ कठोर पत्थर और कहाँ उसमें चरण-चिह्न? भला पत्थरमें चरण-चिह्न कैसे? तो बात यह होती है कि जब श्यामसुन्दर अपने चरणारविन्द रखते हैं न, तो पृथिवी पत्थरको भी मक्खनसे ज्यादा कोमल बनाकर उनके पाँवके नीचे रख देती है, कि उनके चरणोंमें गड़े नहीं। अब भगवान्‌के चरणारविन्दके स्पर्शसे पृथिवी कोमल हो जाती है—यह बात आजकल बीसवीं शताब्दीमें कोई विश्वास करे, न करे!

हमने एक भक्त ऐसा देखा है; बात तो चमत्कारकी है, और चमत्कारकी बात जरा कम करते हैं, क्योंकि चमत्कारमें लौकिक दृष्टि हो जाती है। लोग चमत्कारसे फायदा उठानेकी कोशिश करते हैं। वह सकाम भावना हो जाती है, कि यह बड़ा सिद्ध है। इससे कुछ फायदा उठाओ। तो मैंने एक ऐसा भक्त देखा, कि एक दिन वे स्नान करनेके लिए गये। स्नान करनेसे पहले वह भगवान्‌का ध्यान करते—कि आओ, हम तुम दोनों एक साथ ही नहायें। ऐसे पहले भगवान्‌को बुलाकर तब स्नान करते थे। फर्श था सीमेंटका और पानी अपने शरीर पर डाले बिना वह भगवान्‌को पुकारने लगे—इस भावसे, कि भगवान् आजायँ पहले और उनके ऊपर पानी डाल दें, तब नहायें। अब भगवान् आये नहीं, देर कर दी। देर कर दी उन्होंने, तो ऐसा उनको रोना आया, कि वह सीमेंट—जिसपर उनका पाँव रखा हुआ था—धँस गया। फिर बादमें ध्यान आया, स्नान किया। उठे, तो देखा—वहाँ बिलकुल उनके पाँवका चिह्न हो गया। उन्होंने कोशिश की कि इसको मिटा दें। पत्थरसे रगड़ा उसको, पर वह

तो मिटे ही नहीं। बादमें लोगोंने आकर पूछा, कि आज यह क्या हो गया घरमें? तो वहाँसे काटकर सीमेंट निकाल लिया। वे चरणचिह्न अभी सुरक्षित हैं।

भक्तोंके हृदयमें जो भावका उदय होता है, वह जड़-चेतन—सबको प्रभावित करता है, केवल चेतनको ही नहीं। जिस समय सीताजीके बिरहमें रामचन्द्र भगवान् रोने लगे थे, तो वर्णन आया है—

अपि ग्रावारोदीदपि दलति वज्रस्य हृदयम्।

पत्थरके जो टुकड़े थे, वे गलने लग गये। **अपि ग्रावा रोदति**—रोने लग गये। **अपि दलति वज्रस्य हृदयं**—हीरे फट गये उनकी विरह वेदनामें।

भक्त लोगोंका प्रेम जब उमड़ता है न, तो सारा चराचर, सारी सृष्टि उससे प्रभावित हो जाती है। श्रीकृष्ण भगवान्, जो प्रेमके मूर्तिमान हैं; आनन्दका नाम कृष्ण, प्रेमका नाम कृष्ण, उसकी एक मूर्ति चलती-फिरती; आनन्द चल रहा है; तो श्रीकृष्णके चरण जहाँ-जहाँ पड़ते हैं, वहाँ पृथिवी पिघल जाती है। परन्तु गोपियोंका प्रेम देखो! उनको ऐसा दिखता है कि घासमें कोई शिलका बीज बड़ा होगा। शिल माने दाने, गेहूँके दाने, जौके दाने जैसे होते हैं—ऐसे। पहले ब्राह्मण शिलवृत्ति और उञ्छ वृत्तिसे रहते थे। खेतमें पड़े हुए दानोंको खाकर जो रहते थे, वे शिलवृत्ति थे और बाजारमें पड़े हुए दानोंको खाकर रहनेवाले उञ्छवृत्ति कहलाते थे। बनमें घासके, लताके, वृक्षके जो फल हैं—तरह-तरहके फल, बीज सहित गिरकर पड़े रहते हैं, शिल; तो कहीं उनके पड़े हुए वे दाने कृष्णके पाँवमें गड़ न जायँ। और तृण माने सूखी हुई घास और अंकुर माने हरे-हरे जो अंकुर निकलते हैं धरतीमें-से, वे काँटेसे भी ज्यादा तेज होते हैं और पाँवमें गड़ जायँ तो आर-पार हो जायँ। इतने तीक्ष्ण होते हैं।

तो बोले—श्रीकृष्ण जब चलते हैं, तो वैसे तो धरती कोमल हो

जाती है उनके लिए। परन्तु प्रेमीको क्या इस बातसे संतोष होगा—कि उनके लिए धरती कोमल हो जाती है? प्रेम और ऐश्वर्य—ये दोनों एक साथ नहीं चलते। हमने उड़िया बाबाजीको देखा एक दिन; बुखार चढ़ गया। शिवरात्रिका दिन। अब भगतलोग क्या करें—कि जटा बना दी, फूल रख दिया और गंगाजल चढ़ावें और बाबा चुपचाप बैठे हुए। तो किसीने कहा—कि क्या करते हो तुम लोग? उनको बुखार है और तुम जल चढ़ा रहे हो। भक्त बोले—अरे, ये तो परमेश्वर हैं। साक्षात् शंकर भगवान् हैं। पानीसे इनका कुछ नुकसान थोड़े ही होनेवाला है। अब महाराज, हरिबाबाजी आये और उन्होंने आकर पहरा लगा दिया—कि नहीं-नहीं, इतने बुखारमें सिरपर पानी मत डालो। अब प्रेमी कौन? जो उनको परमेश्वर मानकर उनके सिरपर पानी चढ़ाये, वह प्रेमी? नहीं, वह प्रेमी नहीं है। वे श्रद्धालु हैं, भक्त हैं, पर प्रेमी नहीं हैं।

कितना भी ऐश्वर्य होवे, लेकिन प्रेममें ईश्वरता नहीं सूझती है। प्रेममें तो अपने प्रियतमको सुख पहुँचाना सूझता है। प्रियतमका एक कणिका भर दुःख दूर करनेके लिए प्रेमी अपने सिरपर पहाड़-सा बोझ लेनेको तैयार रहता है। प्रियतमके शरीरपर आगकी एक चिनगारी उड़कर न पड़ जाय—इसके लिए प्रेमी हमेशाके लिए नरककी आगमें कूद पड़नेको तैयार रहता है। प्रेमीका जीवन अपने लिए नहीं होता, अपने प्रियतमके लिए होता है।

तो **शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति।** बाबा! कहीं शिल न जग जाय, कहीं तृण न लग जाय, कहीं अंकुर न लग जाय। और हमारे प्रियतमके चरणोंको कहीं दुःख न पहुँच जाय। इसके लिए हे कान्त! मेरा मन हमेशा व्याकुल रहता है। **कलिलतां**—माने उसमें स्वच्छता नहीं रहती। गँदलापन बना रहता है। हर समय वह दुःखसे व्याकुल रहता है। तुम मिलते हो, तब भी हमारा मन तृप्त

नहीं होता। और तुम बिछुड़ते हो, तब भी हमारे मनको शान्ति नहीं मिलती।

अब देखो! दो सम्बोधन हैं इस गीतमें; एक नाथ और एक कान्त। सारे व्रजवासियोंके तो नाथ हो सामान्य रूपसे और हमारे कान्त हो। विशेष रूपसे हमारे प्राइवेट कान्त हो।

अब दूसरा देखो! कान्त माने कपटी। अरे बाबा, यह कौन-सा व्याकरण निकल आया—कि कान्त माने कपटी हो जाय? तो पहले श्लोकमें संबोधन है न—कुहक; अरे ओ कुहक! तेरी हँसी, तेरी चितवन, और तेरी ये बातें मेरे मनको क्षुब्ध कर रही हैं। तो कान्त माने क हो जिसके अन्तमें। तो क किसके अन्तमें हैं? कुहकके अन्तमें। इसलिए कुहक माने हो गया कपटी। अरे बाबा! बक है, काक है, अन्तक है! यह अंतक कौन है? कि कान्त है न! अंतक माने यमराज। काक कौन है? बोले—कान्त है, ककारान्त है। बक क्या है? बगुला। वह भी कपटी है न! प्रेमी लोग ऐसा बोलते हैं। उसमें उन्हें बहुत मजा आता है, जो बात भगवान्‌को कभी किसीने नहीं कही। जसोदा मैया डाँटती हैं न! **चौरेति धृष्टेति समादुभावः**। ऐसे-ऐसे नाम रखे व्रजवासियोंने, जिनका पता वेदोंको भी नहीं था।

अच्छा! कान्त शब्दका अर्थ है—जिसमें कान्ति बहुत हो। कान्तिमानको कान्त बोलेंगे। शरीरके चामपर छलकती हुई सौन्दर्यकी जो ज्योति होती है, उसको कान्ति बोलते हैं। क अन्ति; क माने सुख, उसका अन्त माने पराकाष्ठा। जिससे बढ़कर और कोई सुख न हो। **नः मनः कलिलतान् गच्छति**। हमारा मन जो है, वह कैसा होता है? तो बोले—उसमें कलियुगकी कलिकी एक लता—कलिलता है। कलि माने कलह और लता माने आप जानते हैं—जैसे पेड़पर लता चढ़ती है। यह रता है, माने वृक्षसे प्रीति करने वाली है। वृक्षके प्रति रता होनेके कारण रताको लता बोलते हैं। संस्कृतमें रताको ही लता बोलते

हैं। वह पेड़से चिपटी रहती है, बिना उसके सहारेके नहीं रहती। बल्कि कई लताएँ तो ऐसी होती हैं, कि धरती भी नहीं छूती हैं, केवल पेड़के ऊपर-ही-ऊपर अपना जीवन निर्वाह कर लेती हैं। स्वर्ण लता—अमर बेल जिसको बोलते हैं—वह तो वृक्षोंके ऊपर ही रहती है, धरती छूती ही नहीं है। अब यह कलि लता, माने मनमें हमारे बड़ा कलह होने लगता है।

देखो, इस मनके कलहका कारण क्या है? कि बाबा, वह क्यों जाते हैं बनमें? अरे मेरे मन! यदि बनमें जानेमें उनको कोई तकलीफ होती है, थक जाते हैं तो क्यों यह व्रजसे निकल करके रोज-रोज बनमें जाते हैं? बनमें उनकी कौन-सी प्यारी रखी हुई है? कौन-सी प्यारी रहती है बनमें, जिससे मिलनेके लिए हम लोगोंको छोड़कर वे रोज बनमें जाते हैं? जरूर कोई-न-कोई बात होगी!

ये प्रेमी लोग जो हैं न, वे अस्थाने शंका करते हैं—कि होगी कोई-न-कोई जरूर बाबा! जिससे मिलने बनमें जाते हैं। मनने कहा—कि अरी ग्वालिन! बिलकुल निर्बुद्धि है तू, बेबुद्धि है तू गोपालिका! उनके चरण-कमल गुलाबकी पंखुड़ीसे भी, कमलकी पंखुड़ीसे भी कोमल हैं। और जब वे बनमें जाते हैं, तो वहाँ शिल भी है, अंकुर भी है, तृण भी है। उनको पीड़ा तो पहुँचती होगी! तुम लोग क्या कल्पना करती हो कि कोई-न-कोई प्यारी होगी वहाँ! पीड़ा न होती होगी उनको?

कि अरे मन! तू ज्यादा चिन्ता मत कर। वे जाते भी हैं तो उनकी आँखें तो हैं न! वे कोमल रास्तेपर—जहाँ बालू बिछी हुई होगी—वहीं चलते होंगे। मार्ग-मार्ग चलते होंगे।

अरी बेवकूफ ग्वालिनो! आखिर तो गाँवकी गँवार ग्वालिन हो। गौएँ बनमें जाती हैं, तो क्या रास्ते-रास्ते घास चरती हैं! जब कृष्ण गौओंके पीछे चलते हैं, तो बेरास्ते क्यों नहीं जाते होंगे?

कि अरे प्रेमान्ध मन! उनकी आँखें तो हैं न! वह काहेको काँटोंपर अपना पाँव रखेंगे?

कि अरी गोपियो! तुम्हारे अन्दर प्रेमकी बिलकुल गन्ध नहीं है। यदि कहीं जरा-सी असावधानी हो गयी और किसी कंकड़पर, पत्थरपर, अंकुरपर उनका पाँव पड़ गया, तो? बड़ा भारी कष्ट होगा न!

कि ओ मेरे प्यारे मन! तुम बिलकुल सच बोल रहे हो। विधाताने हमको बनाया ही इसीलिए है कि हम कृष्णके बारेमें सोच करके दिन-रात बस, दुःख भोगती रहें। और कृष्ण भी ऐसे हैं, कि जिससे हमको सुख मिले—ऐसा काम करना तो उनको पसन्द ही नहीं। इसीलिए तो जो हैं न!

तो **चलसि यद् व्रजात् चारयन् पशून्!**

प्यारे! इतने मनोहर हो तुम।

कृष्ण कहते हैं—गोपियो! तुम हमारी फिकर छोड़ो। तुम पहले अपने हृदयकी पीड़ाको मिटाओ। हमारी आँखें भी ठीक हैं, हमारी बुद्धि भी ठीक है। हम अपनी मौजसे काम करते हैं। बन-बनमें बढ़िया-बढ़िया लता देखते हैं, वृक्ष देखते हैं, हरियाली देखते हैं। हरिणके साथ छलांग भरते हैं, जमुनाजीमें विहार करते हैं। तुम क्यों व्याकुल हो रही हो?

श्रीकृष्ण! तुम कहते तो ठीक हो। परन्तु प्यारे! तुमने हमारा मन हरण कर लिया है। परम मनोहर! हमारे लाख समझानेपर भी हमारा मन तुमको छोड़कर रहता ही नहीं है। ऐसी प्रेम करनेवाली गोपियोंको छोड़कर तुम रात्रिके समय बनमें चले गये हो। **दयित दृश्यताम्।**

अब यह कहो—कि अच्छा, जाते हैं तो फिर आते भी तो हैं न! श्रीकृष्णने कहा—कि अरी गोपियो! जैसे हम सबेरे जाते हैं, गाय चराते हैं तो शामको लौट आते हैं! तो जब लौटकर आते हैं, तब तुमको बहुत आनन्द आता होगा न!

गोपियाँ कहती हैं—जब तुम लौटकर आते हो, तब भी हमको आनन्द नहीं आता है। बिहारीका एक दोहा है—

इन दुखिया अंखियान को सुख सिरज्यो हि नाहिं।

हमारी इन दुखिया आँखोंके लिए विधाताने सुखकी सृष्टि ही नहीं की है।

देखत बने न देखते, बिन देखे अकुलाहिं॥

जब सामने होते हैं, तब तो देखते नहीं बनता। और जब चले जाते हैं, तब व्याकुल हो जाते हैं। तुम आते तो रोज हो, परन्तु आकर हमको क्या देते हो? कौन-सा बनमें-से हमारे लिए लड्डू लेकर आते हो? अरे, आकर भी तो हमारे मनमें आग ही जलाते हो।

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं विभ्रदावृतम्।
घनरजस्वलं दर्शयन् मुहुर्मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि॥ १२॥

स्मरन् यच्छसि—लौटकर आते हो तो हमारे दिलमें आग लगाते हो। कौन-सा आकर हमारे साथ नाचते हो? कि हमारे साथ बैठकर खाते हो? कि हमको आलिंगन करते हो? हमको कौन-सा सुख मिल जाता है? उस समय भी तो हम व्याकुल ही रहती हैं।

श्रीमद्भागवतमें इस श्लोकमें जो वर्णन है—

तं गोरजश्छुरित - कुन्तलबद्धबर्ह-
वन्य - प्रसून - रुचिरेक्षण - चारुहासम्।
वेणुं क्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं
गोप्यो दृदक्षितदृशोऽभ्यगमन् समेताः॥

सायंकाल लौटनेका जो वर्णन है—

लटकि लटकि मनमोहन आवनि।
झूमि झूमि पग धरत भूमि पर गति मातंग लजावहिं॥
नव घन पर मनु झीनी बदरिया सोभा रस बरसावनि॥

जैसे काले बादल छाये हों आकाशमें और उनके नीचे हलके-

हलके, पतले-पतले बादल उड़े जा रहे हों। तो उस समय काले बादलकी जैसी शोभा होती है, जब श्यामसुन्दर सायंकाल आते हैं; **गोरजश्छुरित कुन्तल बद्धबर्ह**—गायोंके खुरसे उड़-उड़कर धूल उनके साँवरे शरीर पर पड़ी हुई है। और—

लटकि लटकि मनमोहन आवनि।

कभी मंडल बनाकर बीचमें नाचने लगते हैं बाँसुरी बजाकर, कभी किसी सखाके कंधेपर चढ़ जाते हैं। वह श्यामसुन्दर, पीताम्बरधारी, मुरलीमनोहर जब सायंकाल लौटते हैं और सूर्यकी लाल-लाल किरणें उनके शरीरपर पड़ती हैं, जब मुकुट चमकता है और पीताम्बरका रंग बदल जाता है; उनकी जो श्यामता है, वह सूर्यकी लालिमासे मिश्रित हो जाती है—उस समयकी उनकी शोभा जो होती है! क्या हमको शान्ति मिलती है? तुम शान्ति देनेके लिए तो आये ही नहीं हो।

दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैः।

चलसि यद् व्रजात्—इसका जो सीधा सादा अर्थ है, वह आध्यात्मिक भी है, आधिदैविक भी है!

: १६ :

ईश्वरकी प्राप्तिके जितने भी मार्ग वेदमें, शास्त्रमें, ऋषियोंकी परम्परामें प्रसिद्ध हैं, उनकी अपेक्षा गोपियोंने एक नया मार्ग चलाया। यह बात भागवतमें है।

भक्तिप्रवर्तिता दृष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा।

मुनिलोग तो वेदके, शास्त्रके विद्वान् होते हैं सम्प्रदायके विद्वान् होते हैं और बड़े मननशील होते हैं। जो सम्प्रदाय सृष्टिमें न हो, वे विचार करके देख लेंगे कि ऐसा एक नया सम्प्रदाय और चल सकता है कि नहीं। परन्तु ऐसे जो महामुनीन्द्र अमलात्मा परमहंस हैं, वे भी नहीं सोच सकते थे कि भगवान्के साथ ऐसा प्यारा-प्यारा, मीठा-मीठा सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। गोपियोंने एक नया मार्ग **आविष्कृतः कोऽपि नवीनमार्गः**। चैतन्य महाप्रभुने कहा—इन गोपियोंने ईश्वरसे मिलनेका एक नया रास्ता निकाला, जिसमें आँखसे ईश्वर मिले, जिसमें नाकसे ईश्वर मिले, कानसे ईश्वर मिले, हाथसे ईश्वर मिले, पाँवसे ईश्वर मिले। खाली बुद्धिसे, खाली मनसे ईश्वर मिले—इतना काफी नहीं है। ईश्वर सर्वांगसे मिले और उससे मिलकर एकमेक हो जायँ। अगर कुछ बाकी ही रह गया, तो वह विफल हो गया।

एक अष्टयाम सेवा होती है—कि लालजी अभी प्रातःकाल सोये हुए हैं। चलकर उनको जगायें, उनका मुँह धुलायें, उनकी मुखारी करायें, दातुन करायें; यह सब है उसमें। अब ग्वालबालोंके साथ खेल रहे हैं, अब गोचारणके लिए जा रहे हैं, अब गोपियोंसे दान ले रहे हैं। अब दोपहरीमें जल-क्रीड़ा कर रहे हैं। अब विश्राम कर रहे हैं। सायंकाल गोचारण करके लौट रहे हैं। अब गोपियोंको देख रहे हैं।

रातको शयन कर रहे हैं। प्रेम वैसे तो दिलमें होता है, लेकिन वह सेवाके रूपमें प्रकट होता है। विश्वासमें-से प्रेम निकलता है। अगर किसीसे तुम्हारा प्रेम है, तो उसके ऊपर अखण्ड विश्वास होना चाहिए। जब प्रेम होगा, तब उसके प्रति सेवा प्रकट होगी। जब सेवा प्रकट होगी, तब कितनी देर सेवा रहे और कितनी देर सेवा न रहे—यह बात नहीं होती। फिर तो *आठों पहर चौबीसों घड़ी। ठाकुर पर ठकुराइन चढ़ी।* बुझौवल है यह, पहेली बोलते हैं इसको—कि बताओ—क्या है? ठकुराइन माने तुलसीजी, और ठाकुर हैं सालिग्राम। तो सालिग्रामजीपर चौबीसों घंटे तुलसीजीको रखते हैं। जब किसीके प्रति सेवाका भाव आता है, तो सम्पूर्ण जीवन ही अर्पित हो जाता है। यह प्रेम जो है, वह व्यक्तित्वको प्रियतमके प्रति समर्पित करनेमें चरितार्थ होता है। मधुर प्रेम इसको बोलते हैं, आत्म-निवेदन बोलते हैं, आत्मसमर्पण इसको बोलते हैं और यह केवल ईश्वरके प्रति होता है।

ऐसे वर को के बरूँ जो जनमे औ मर जाय।
वर वरिये गोपाल जू म्हारो चुडलो अमर हो जाय॥

ऐसे वरको क्या वरूँ, जो जन्मे और मर जाय। तो श्यामसुन्दरसे प्रेम जोड़ना उनके ऊपर विश्वास रखना। उससे प्रेम जोड़ना, उसकी सेवा करना। सेवामें तो केवल वस्तु और कर्मका अर्पण होता है। जिसको समर्पण कहते हैं, निवेदन कहते हैं, मधुर भाव कहते हैं, उसमें तो अपने आपका समर्पण होता है। तो गोपियोंने मनुष्यके मनको ईश्वरमें लगानेके लिए यह नया मार्ग निकाला।

एक बार चैतन्य महाप्रभुसे किसीने इस मतका सार पूछा। तो वे बोले—देखो, संक्षेपमें बता देता हूँ—**आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयः।** व्रजेन्द्रनन्दन, मुरलीमनोहर, पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर किशोर मूर्ति—यह हमारे आराध्य हैं। बोले—भाई, कृष्ण तो कई हैं। कोई मथुरामें रहते हैं, कोई नन्दगाँवमें, कोई द्वारका में रहते हैं। कोई गोलोकमें रहते हैं। तो

कौनसे? बोले—**तद्धाम वृन्दावनं।** उसका धाम वृन्दावन है। बोले—तुम उसकी उपासना कैसे करते हो? बोले—**रम्या।** बड़ी रमणीय, बड़ी सुन्दर। जिसमें मन अपने आप ही रम जाय, ऐसी उपासना। कि अरे, नाम तो बताओ। बोले—नहीं-नहीं। **काचिदुपासना।** नाम लेकर बताने लायक नहीं है वह; हम ऐसी पूजा करते हैं भगवान्‌की। वह बड़ी गुप्त है।

इसको चलाया किसने?

व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता। यह व्रजकी माताओंने नहीं चलाया। व्रजकी बहनोंकी चलाई हुई उपासना यह नहीं है। व्रजकी जो वधुवर्ग है, उसने इसे चलाया है।

आराध्ये भगवान् व्रजेशतनयः तद्धामवृन्दावनम्।
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता॥

श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं। बोले—इसमें प्रमाण क्या है? वेद हैं, शास्त्र है, प्रत्यक्ष है, अनुमान है, उपमान है? कुछ हैं? बोले—नहीं। हमारे तो श्रीमद्भागवत ही एक प्रमाण है। और यह निर्मल प्रमाण है—**श्रीमद्भागवतममलं।**

बोले—अच्छा, मिलेगा क्या तुमको? धन मिलेगा? धर्म मिलेगा? मोक्ष मिलेगा?

बोले—यह सब हमको चाहिए ही नहीं। जिसके लिए दुनियाके लोग भिखमंगे बने फिरते हैं, हाथ पसारते रहते हैं—वह चीज हमको नहीं चाहिए। **प्रेम पुमर्थो महान्।** हमारा परम पुरुषार्थ यह है कि जैसे रसगुल्ला चाशनीमें तर होता है, ऐसे प्रेमके मधुर मधुमें हमारा हृदय सराबोर हो जाये। बस! हाथ जोड़ो मोक्षको। धर्म जाकर निवास करे होम करने वालोंमें, और धन रहे महालक्ष्मीकी नगरीमें। भोग मिले विलायतमें और मोक्ष मिले हरिद्वारके उस तरफ। हमको तो चाहिए श्रीकृष्णका प्रेम। यही हमारा परम पुरुषार्थ है। इसीमें हम कृतकृत्य हैं, कृतार्थ हैं। **श्रीचैतन्य महाप्रभो मतमिदं** इतना ही महाप्रभुका मत है।

तत्राग्रहो नः परः। तत्राग्रहो नो महान्। इसमें हमारा महान् आग्रह है, वृन्दावनके लोग ऐसे कहते हैं।

तो आपको बताया, कि विश्वाससे प्रेम पैदा होता है। और प्रेममें सेवा निरन्तर रहती है। जिसके लिए होती है, उसकी स्मृति निरन्तर रहती है। स्मृतिमें प्यास और तृप्ति दोनों एक साथ रहती हैं। प्रेममें जब ईर्ष्या आती है, तब नरक हो जाता है। प्रेममें जब कपट आता है, तब वह मर जाता है। यह प्रेमकी कसौटी है।

यह जो अष्टयाम सेवा है, आठों पहर भगवान्‌की सेवा, उसमें देखो, सायंकाल भगवान् गायोंको चराकर लौट रहे हैं। व्रजवधुओंका जो मार्ग है प्रेमका, उसमें सायंकाल एक विशेष समय है।

गोधूलि - धूसरित - कोमल - गोपवेशं
गोपाल - बालक - शतैरनुगम्यमानम्।
सायं तने निजगृहं पशुबन्धनार्थं
गच्छन्तमच्युतशिशुं प्रणतोऽस्मि नित्यम्॥

गोधूलि - धूसरित - कोमल - गोपवेशं—

यह कोई नारायणका वेश नहीं है। न इसमें हीरा है, न मोती है। जंगली फूलोंकी माला और घुँघचीकी माला—वे दाने होते हैं न छोटे-छोटे घुँघचीके, किसीके मुँहपर लाल, किसीके मुँहपर काला होता है, वह माला पहनते हैं। मोरके पाँख लगाते हैं। जंगलमें जो तरह-तरहके पत्ते होते हैं न—उनका आभूषण बनाते हैं। गेरू और खड़िया जगह-जगह शरीरमें थोप लेते हैं। धोती घुटनोंसे नीचे नहीं जाती। गोपवेशं गाय चराकर आ रहे हैं। घुटनोंके ऊपर धोती और धूल पड़ी हुई है शरीरपर। भगवान्‌की जो त्वचा है, वह बड़ी कोमल है। जैसे वर्षाका पानी भरा हुआ हो, ऐसी मेघ-श्याम है। दूरसे जब गौएँ देखती हैं, तो कभी-कभी उनको मालूम पड़ता है, कि जमुनाजीका एक हिस्सा हमारी ओर चला आ रहा है। चलो, पानी पीलें! तो गौएँ पानी-पीनेके लिए दौड़ती हैं। मोर देखते हैं, तो उनके मनमें आता

है कि बादलका एक टुकड़ा हमारी तरफ आ रहा है। यह बिजलीकी तरह पीताम्बर चमक रहा है और गर्जनाकी तरह मन्द-मन्द ध्वनि हो रही है; रुनझुन-रुनझुन पाँवमें हो रहा है। यह तो कोई बादलका टुकड़ा आ रहा है, तो नाचने लगते हैं।

नाचि अचानक ही उठे, बिनु पावस बन मोर।
जानि परत या दिशि करी, नन्दित नन्द किशोर॥

मालूम पड़ता है—इधर आ रहे हैं, इधर आ रहे हैं। **गोरजश्चछुरित-कुन्तल** बालोंपर भी गायोंके खुरसे उड़-उड़कर धूल पड़ रही है। **बद्धबर्ह**—मोरपिच्छका मुकुट बाँध लिया है। मानो व्रजके बाहरका कोई आभूषण नहीं है। जितने आभूषण हैं, वस्त्र हैं—सब व्रजके ही हैं। **वन्यप्रसून रुचिरेक्षण चारु हासं**—बनके फूल लगे हैं जगह-जगह। बड़ी रुचिर चितवन है, बड़ी सुन्दर मुस्कान है। **वेणु क्वणन्तं**—बाँसुरी बजा रहे हैं। **अनुगैरनुगीतकीर्तन्**—ग्वाल-बाल गान कर रहे हैं और गोपियोंकी आँखोंमें इतनी खुजली है कब देखें, कब देखें! **दिदृक्षितदृश**—वे चारों ओर आकर रास्तेमें, कुछ छज्जे पर, कुछ नीचे, दाहिने-बायें खड़ी हो जाती हैं, जब कृष्ण गोचारण करके लौटते हैं।

यह जो सायंकालीन रूप-माधुरी है, वह अरसिकोंके लिए नहीं है। जिनको आगके पास बैठकर उसमें होम करनेमें ही मजा आता है, उनके लिए भी नहीं है। भागवतके दशम-स्कन्धके प्रारम्भमें ही यह बता दिया है।

पुमान् विरज्यते विना पशुघ्नात्। जो अपनेको सतानेवाले लोग हैं, खुदकुशी करनेवाले लोग हैं, अपने मनको, तनको मार-मारकर, आगमें घी-बूरा डाल-डालकर और पशु-वधतक कर-करके स्वर्ग पानेके लिए व्याकुल हैं, उन लोगोंके लिए यह नहीं है।

अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं शिरसि मा लिख मा लिख मा लिख।

एकने प्रार्थना की ब्रह्माजीसे, कि हे ब्रह्माजी! हमारे पाप तो बहुतसे होंगे—

इतर पाप फलानि यदृच्छया वितरतानि स हे चतुरानन।

हे चतुरानन! हे ब्रह्माजी! आप बड़े चतुर हैं। आपके दिमाग भी चार-चार हैं। हमारे पापोंके जो दूसरे फल हैं, उनको आप जैसे चाहो—दो। हम सहनेको तैयार हैं, लेकिन **अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं** कोई रूखे दिलका आदमी हमारी कथा सुननेको न बैठ जाय। जो रूखे-सूखे दिलके आदमी हैं, वे भोगके भूखे हैं। हमारे सिरमें, हमारे भाग्यमें यह मत लिखना, कि किसी रूखे आदमीको यह सुनना पड़े।

बाबा! यह वस्तु तो रसिकोंकी है। तो **दिन परिक्षय सायंकाल** है। जब सूर्यास्त होने लगता है, तो एक अनुरागकी लाली, प्रेमकी लाली छा जाती है दुनियामें। हमने देखा है, जिनका चेहरा दिनमें काला लगता है, उनके चेहरेपर भी सायंकाल थोड़ी-थोड़ी लाली दिखती है। यह सूर्यास्तका समय सबके चेहरेपर अनुरागकी एक छटा बिखेर देता है।

अब देखो! वह सीधे नहीं चलता है, टेढ़ा चलता है। यह प्रेमका स्वरूप है कि वह सीधे कभी नहीं चलता। वह कभी दाहिने, कभी बायें, कभी पीछे घूम जाता है। यह श्रीकृष्ण जब चलते हैं, तो ग्वालबाल गाते चलते हैं और यह बाँसुरी बजाते चलते हैं। एक बार जो गोपियाँ बायीं ओर रास्तेपर हैं, उनकी ओर देखते हैं। एक बार ऊपर छज्जेपर नज़र जाती है। एक बार महाराज, मंडलाकार घूमते हुए पीछेकी ओर घूम जाते हैं। प्रेम एकांगी नहीं होता, प्रेम चतुर्मुखी होता है। चारों तरफ उसकी दृष्टि होती है। चालमें सीधापन नहीं होता है, नृत्य होता है, बाँकपन होता है।

अहेरिवगते प्रेम्णः स्वभावकुटिला भव।

हम एक बार एक बड़े आदमीके घरमें अतिथि हुए। उन्होंने पूछ लिया—कि आपको क्या-क्या चाहिए? सबेरे मट्ठा चाहिए कि दूध? कि काफी? कि चाय? लिख लिया। दोपहरको क्या-क्या साग चाहिए?

लिख लिया भाई। कौन-सी दाल बनेगी? लिख लिया। शामको क्या भोजन करेंगे। अब नौकरोंको ऐसा हुक्म हुआ महाराज, कि अगर हम दोपहरको चाहें भी—कि रसोइया यह साग बदलकर दूसरा बना दे, तो वह बोले—हमको तो हुक्म है बाबा! हम क्या करें? वह प्रेमी थे न! तो प्रेम ऐसे नहीं चलता, कि बिलकुल कानूनसे लिख दिया जाय। कि रोज-रोज यही साग बने। जिससे प्रेम होता है, उसके लिए नया-नया साग भी आता है। प्रेम कानूनके बन्धनमें नहीं चलता है। यही प्रेममें बाँकपन है, तिरछापन है। एक दिन एक चीज जो बहुत बढ़िया लग सकती है, उसको दूसरे दिन बदलनेकी जरूरत भी तो पड़ सकती है न! रोज खीर ही खिलाओ, तो तबीअत ऊब जायेगी। कभी कढ़ी भी चाहिए। जो प्रेम होगा, वह यह ध्यान रखेगा, कि रोज-रोज खीर नहीं चाहिए, कभी-कढ़ी भी चाहिए। रोज अरहरकी दाल नहीं चाहिए, कभी मूँगकी दाल भी चाहिए।

प्रेमीके दिमगमें तो यह बात आवेगी। जो लोग महाराज, कागजपर लिखकर अपने नौकरोंको हुक्म दे देंगे कि ऐसा कर ले, उन राजा-महाराजाओंके यहाँ यह बात कैसे बनेगी? प्रेमकी जो सेवा होती है, वह खुद करनेवाली होती है। अभी ये प्रेमी लोग आपसमें एक शब्दका व्यवहार करते हैं न! मैंने सुना है, आजकल तो सब जगह डार्लिंग कहकर पुकारते हैं। देखो, हम भविष्यवाणी करते हैं। दो-तीन वर्षके बाद यह शब्द इतना पुराना पड़ जायगा, कि इसको बदल देना पड़ेगा। प्रेम जो है, वह नित्य नूतन होता है। जैसे पोशाकें बदलती हैं। जैसे हर घंटेमें पेरिसमें एक नई पोशाक आजाती है, वैसे प्रेम जो है, वह अपने प्रियतमको सुख पहुँचानेके लिए हर घंटेमें एक नई पोशाक, एक नई भावना, एक नई सज-धज लेकर उसके सामने प्रकट होता है। इसलिए नित्य नूतन बना रहता है।

कृष्ण रास्तेपर सीधे नहीं चलते हैं। अपना कोई सखा देखा कि वह

पीछे है, तो नाचते हुए पीछे चले आये। कभी अपनी मण्डलीको छोड़कर नाचते हुए आगे चले गये। कभी किसीके कन्धेपर बैठ गये। कभी आँख नीचे करके नाच रहे हैं, कभी ऊपर उठाकर नाच रहे हैं। ऐसे वे गोचारणसे लौटते हैं। प्रेमकी चालका नाम नृत्य है। जिसके हृदयमें प्रेम नहीं है, वह नाचेगा, तो कैसे नाचेगा?

देखो, हमको मालूम है, नाचना सिखा देते हैं। इतनी बार पंजा धरतीपर पड़ना चाहिए और इतनी बार ऐड़ी पड़नी चाहिए। इतनी बार यों करना चाहिए और इतनी बार यों करना चाहिए। इतनी बार आँख नचानी चाहिए। इस कोणमें आँख होनी चाहिए, और इतनी बार मुँह खुलना चाहिए। ये महाराज, जो लोग किताबसे नाचना सीखते हैं, न उनको सच्चा नाच कभी नहीं आता। वह तो बनावटी होती है। नाच वह होता है, जब हृदयमें प्रेम जगता है और भीतरसे दिल नाचने लगता है। फिर उसपर हाथ थाप देने लगता है, उसपर पाँव हिलने लगता है, उसपर आँख हिलने लगती है। प्रेम जब गति बन जाता है, उसकी क्रियाशीलता ही नृत्य है। शरीरमें जो प्रेमसे क्रान्ति होती है, उससे नृत्य उत्पन्न होता है। प्रेमकी जो बोली है, उससे संगीत निकलता है। यह नहीं कि आ-आ करते जा रहे हैं। बोले क्या है? कि शास्त्रीय संगीत है। अरे बाबा, यह शास्त्रीय संगीत निकाला किसने था? जिन लोगोंने मनुष्यकी प्रकृतिका अध्ययन किया था। वे जानते थे, कि किस भावको निकालनेके लिए मारु राग कैसे बनता है। जिस समय सैनिक कदम-पर-कदम बढ़ाते हुए आगे बढ़ते हैं, नशेमें आजाते हैं मारु राग सुनकर। अपने शरीरको भूल जाते हैं और विहाग कैसे गाया जाता है? केदारा कैसा होता है। धनाश्री कैसी होती है। छह राग, छह रागिनियाँ, उनकी बेटी-बेटा, उनके नाती और नतिनी, बड़ा भारी विस्तार होता है वह। एकमें-से दूसरा निकलता है। तो सब कहाँसे निकलते हैं? किताबमेंसे नहीं निकलते हैं, प्रेममें-से निकलते हैं। जो प्रेमसे बोलता है, उसकी आवाजमें इतनी मिठास

आजाती है, इतना सुरीलापन आजाता है, ऐसी लय आजाती है, ऐसी ताल आजाती है—कि उसका नाम संगीत हो जाता है। प्रेमकी आवाजका नाम संगीत है। प्रेमकी चालका नाम नृत्य है।

कृष्ण तो प्रेमकी मूर्ति हैं। अपना रस लोगोंको इतना दिया, इतना दिया! स्वयं काला होकर रह गया, ऐसा रसदानी। यह आगे बढ़ता है तो गोपियों की दशा क्या है?

पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गैः,
तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽह्नि।
तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं,
सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम्॥

पीत्वा मुकुन्दमुखसारघं। शहद बहुत होती हैं। कोई बोले—यह केसरकी शहद है, यह कमलकी शहद है, यह जामुनकी शहद मधु है। बोले—बाबा! यह श्रीकृष्णके मुखारविन्दकी शब्दमधु है। वह ताजी-ताजी अच्छी होती है, बासी नहीं। दुनियामें जितनी मधु मिलती हैं, उनको शीशीमें भर-भरकर ले आते हैं। यह श्रीकृष्णके मुखारविन्दकी जो मधु है, वह शीशीमें भरकर नहीं लायी जाती है। यह तो निरन्तर नूतन है, **नूतनं नूतनं पदे पदे।** इसको तो ताजा-ताजा पीया जाता है। गोपियाँ पीती हैं। बाबा, किस प्यालेमें पीती हैं? कि प्यालेका नाम मत लो। **अक्षिभृङ्गैः**—इनकी आँखे भौरे हैं। ये श्रीकृष्णके मुखारविन्दपर मँडराते रहते हैं, और इसको पीते हैं।

सायंकाल श्रीकृष्ण लौटते हैं। इसमें वर्णन है—**नील कुन्त कुन्तलैर्वनरुहाननं।** श्रीकृष्णके जो बाल हैं, वे साँवले हैं। यहाँ नील शब्दका प्रयोग है। किसीके बाल सुनहले भी होते हैं। वृद्धावस्थामें तो रुपहले हो जाते हैं लोगोंके बाल। किसी-किसीके बाल जब बेमौसम पकने लगते हैं, सफेद होने लगते हैं तो लोग रँगवा लेते हैं। तो श्रीकृष्णके बालोंका वर्णन करते हैं—कि एक तो वे काले हैं, दूसरे

घुँघराले हैं। तीसरे महीन हैं—कुन्त। जैसे संगीन दूसरेके कलेजेमें घुस जाय ऐसे वे बाल हैं। जो उनको देखे उसके कलेजेमें घुसनेवाले, माने बड़ी करारी चोट करनेवाले हैं वे। चिकने हैं, घने हैं, महीन हैं, काले हैं, घुँघराले हैं। वे ललाटपर और ललाटके रास्ते सीधे कपोलपर। जैसे कमलपर भौंरे मँडरा रहे हों, ऐसे भगवान्‌के मुखारविन्दपर वे मँडराते रहते हैं। गायोंके खुरसे उड़-उड़कर धूल पड़ी है उनपर। व्रजकी भूमि थोड़ी पीली है, मिट्टीमें थोड़ी पीतिमा है, तो भगवान्‌के मुखकमलपर पड़ी धूल पराग है और वे बाल हैं भौंरे। नेत्र तो, महाराज, जैसे स्वच्छजलमें दो मछली खेल रही हों। कपोलपर कुण्डलकी ज्योति पड़ती है। एक-एक बात जो है, भगवान्‌की ओर मनको खींच रही है।

देखो भाई! तुम चाहे कृष्णको ईश्वर मानो, चाहे मत मानो। यह नहीं समझना—कि हम श्रीकृष्णको ईश्वर मनवानेके लिए बहुत व्याकुल हैं। अरे, ईश्वर मानोगे, तो तुम करोगे क्या? चन्दन पोत दोगे, आरती उतार लोगे। पैसा फेंक दोगे सामने और ईश्वर मानकर क्या करोगे? यह कृष्ण तो प्यार करनेके लिए है। तुम ईश्वर मत मानो, अपना प्यारा मानो, अपना मित्र मानो, अपना बालक मानो। कौन कहता है ईश्वर मानो? यह तो ईश्वर है, उसको माननेकी जरूरत नहीं। ईश्वर मानने न माननेसे कुछ बनने-बिगड़ने वाला नहीं। लेकिन तुम अपना रिश्ता अगर उसके साथ बना लो, सम्बन्ध बना लो तो तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। दुनियामें जो दुःखदायी सम्बन्ध हैं, वे सब कट जायेंगे। अब समझो, घरमें किसीके क्लेश है और वह अपना सम्बन्ध बनाले भगवान्‌से तो भीतरसे क्या हुआ? बाहरका तो तलाक हो गया न! ध्यान देकर देखो, भीतर श्रीकृष्णसे सम्बन्ध हो गया। और बाहरका कैसा रहा? कि व्यवहार रह गया। व्यवहार तो कहीं-न-कहीं तुमको जोड़ना ही पड़ेगा। आफिसमें काम करोगे तब भी व्यवहार जोड़ना पड़ेगा, दूसरेके घर जाओगे,

पढ़ाओगे, व्यवहार तो जोड़ना ही पड़ेगा। जबतक शरीर रहेगा, तबतक व्यवहार तो जोड़ना ही पड़ेगा। संसारमें जो आदमी प्रीतिका भिखारी हो गया, वह गरीब हो गया और जिसने अपने हृदयेश्वर, प्राणनाथ भगवान्‌के साथ प्रीति जोड़ ली, वह व्यवहारमें स्वच्छन्द हो गया। उसके लिए अब कोई फँसाव नहीं रहा, कहीं उसके लिए कोई दुःख नहीं रहा। बोले—भाई, हम दुनियामें न किसीको अपना प्रेम देते हैं, न किसीसे प्रेम माँगते हैं। हम तो अपना प्रेम कृष्णसे जोड़कर आनन्दमें मग्न हैं। झख मारो संसारको। मीराका एक भजन है—

नहीं मानूँ मैं राणाजी थारी, मैं बर पायो गिरिधारी।
मीराँको तो गिरिधर मिलया, झख मारो संसारी॥

मीराको तो गिरिधर मिल गये। अब संसारी लोग झख मारें। इतना बड़ा सम्बन्ध, इतना घना सम्बन्ध, इतना प्यारा सा बन्धन जुड़ गया, कि अब दुनियामें ये जो शहदकी छिट-पुट बूँदें कहीं-कहीं दिखायी पड़ती हैं, उनमें क्या रखा है?

तो विभ्रदावृतं घनरजस्वलं। यह घनरजस्वलं और धनरजस्वलं दोनों तरहका पाठ है। घनरजस्वलंका अर्थ है गोधनरजस्वलं धन शब्दका अर्थ भी गोधन ही है और घनरजस्वलंका अर्थ है—घनी धूल पड़ी हुई है। और कहते हैं—**नीलकुन्तलैरावृतं विभृत्।** जरा विभ्रत्‌पर ध्यान दो। वैसे बाल तो कभी-कभी बिखरते हैं ही। कभी आगे भी जाते हैं, कभी पीछे भी जाते हैं, लेकिन जानबूझकर कृष्ण अपने बालोंका थोड़ा हिस्सा कपोलोंपर खींच लेते हैं, **नील कुन्तलैः आवृतं जलरुहाननं विभ्रत्।** विभ्रतका अर्थ हुआ जान-बूझकर ऐसा करते हैं। देखो, आजकल भी शृंगारमें एक तरहकी जान-बूझकर लापरवाही बरती जाती है—कि यह न मालूम पड़े कि कंघीसे ये बाल मुँहपर लाये गये हैं। ऐसा मालूम पड़े कि अपने आप आगया है। उसको सौन्दर्यके अन्तर्गत मानते हैं। बात क्या होती है—कि कोई कितना भी साँवरा होवे; उसके मुँहसे तो उसके बाल ज्यादा काले होते हैं कि नहीं?

तो जब काले बाल मुँहपर आते हैं, तब मालूम पड़ता है कि मुँह इतना काला नहीं, गोरा है। तो वह सौन्दर्यका प्रदर्शन हो जाता है। यह एक शास्त्र है। सौन्दर्यका शास्त्र है, नृत्यका शास्त्र है, संगीतका शास्त्र है, तो **विभ्रदावृतं**— यह जाल है। जाल काहेके लिए है, कौन-सा है? मुखपर लटके हुए बाल जो हैं, वे जाल हैं। और लोगोंकी आँखोंमें जो मछली रहती है, उसको फँसानेके लिए है। गोपियोंकी आँखकी मछली अपने बालोंके जालमें फँसानेके लिए इसे मुँह पर लटका रखा है।

दर्शयन् मुहुर्मनसि न स्मरं वीर यच्छसि।

बोले—**दर्शयन् मुहुः**। यह बताते हैं, कि यह जो हमारा दुःख है, दर्द है, इसमें हमारा ज्यादा दोष नहीं है। अब इसको आप ऐसा समझो कि जब गोपियाँ इस तरह कह रही थीं—कि तुम यह करते हो, ऐसे आते हो, ऐसे जाते हो, तो कृष्णने कहा—गोपियो! वह सब तो हम सहज स्वभावसे करते हैं। तुम बावरी हो, जो हमारी यह चेष्टा देखकर उसमें फँस जाती हो। इसमें हमारा क्या दोष?

गोपियाँ कहती हैं—कि नहीं। **दर्शयन् मुहुः**—जान-बूझकर तुम अपने चेहरेसे धूल झाड़ते नहीं हो। जान-बूझकर जब सूर्यास्तकी लाली फैलती है, तभी आते हो। जान-बूझकर सब करते हो। यह जाल जो तुम फैलाते हो, वह बड़े सीधे-सादे सरल स्वभावके कारण नहीं, यह तो तुम जान-बूझकर फैलाते हो।

देखो, यहाँ श्रीकृष्णके श्रमका वर्णन है न! चेहरेपर धूल पड़ना, बालोंका बिखरना, सायंकालतक गाय चराकर लौटना, यह जो उनके परिश्रमका वर्णन है, इससे मालूम पड़ता है कि वह देखनेमें जैसे कोमल-कोमल लगते हैं, वैसे कोमल हैं नहीं। वे वीर भी हैं, परिश्रमी भी हैं। शरीरपर धूल पड़नेसे जैसे कोई पहलवान होवे—ऐसे मालूम पड़ते हैं। यह वीर रस भी शृंगार रसका उत्तेजक है, पोषक है। शृंगार रसको पुष्ट करनेवाला है। **मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि।**

दर्शयन् मुहुः—बारम्बार अपने मुखारविन्द्‌का दर्शन कराते हैं। यह नहीं—कि गाय चराते हुए लौटे, तो सीधे चले गये अपने घरमें। तुम तो किसी-न-किसी बहानेसे दिखायी देते हो। कभी बाँसुरी गिर पड़ती है, कभी पीताम्बरको सँभालनेके लिए पीछे घूमना पड़ता है, कभी गेंद सँभालनेके लिए ऊपर देखना पड़ता है। ***गेंद ऊँचाई गगन मिस ताक्यो।*** गेंद खेलते आ रहे हैं। अब ऊपर कैसे देखें—कि छज्जेपर कौन है? तो गेंद जरा ऊपर फेंक दिया, और उसको लपकनेके लिए आँख ऊपर की। और ***जारौं री लाज बैरिन भई मोको। हौं गँवारि मुख ढाँक्यो।***

जारौं री लाज—मैं लाजको आग लगा दूँ। वह मेरे लिए दुश्मन बन गयी। वह तो हमसे आँख मिलानेके लिए ऊपर गेंद उछालते हैं और मैं ऐसी गँवार निकली—कि मैंने अपना मुँह ढक लिया।

अब देखो! ***देख री देख अनिमेष या वेष कों***—पलक न गिरने पावें। यह वेष श्रीकृष्णका देखने योग्य है। श्रीकृष्ण! जब तुम अपने मुखारविन्दका दर्शन कराते हुए लौटते हो, तो **मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि।** कृष्ण, तुम हमको दे क्या जाते हो? यह व्याकुलता हमारी बनायी हुई नहीं है। यह व्याकुलता तो तुम्हारी दी हुई है। जान बूझ करके तुमने हमारे मनमें आग लगायी है।

स्मरः। यह समझो, स्मर शब्द जो है न, 'स्मरण'से पैदा होता है—**स्मरणं स्मरः।** स्मृतिकी प्रगाढ़ता; इसमें याद बहुत है, इसलिए इसको स्मर बोलते हैं। **स्मरो वाव आशायाः भूयाः**—छान्दोग्योपनिषद्‌में वर्णन है; आशाकी अपेक्षा स्मर बड़ा है। किसीकी आशा लगी हो—कि मिलेंगे, मिलेंगे—और उसके प्रति कामका, स्मरका उदय हो जाय। आशा लगी रहना दूसरी चीज है और उसके लिए हृदयमें मिलनकी तीव्र उत्सुकता, तीव्र आकांक्षा होना, उसके लिए छटपटी होना, उसके लिए उत्कण्ठा होना, माने प्राणोंका कण्ठमें आ लगना, व्याकुलता होना, तड़पना—यह जो उसके प्रति स्मर है, यह आशासे अधिक बलवान है। वेदके मंत्रमें

आता है—**आशा प्रतीच्छे सङ्गच्छेताम्**। आशा आती है, फिर प्रतीक्षा आती है। प्रतीक्षा माने बाट जोहना। पहले उम्मीद बँधती है, उसके बाद बाट जोहने लगते हैं। पर बाट जोहनेसे काम नहीं चलता! यह कहते हैं— कि हे ईश्वर! मुझे पंख दे दे। मैं उड़कर अपने प्रीतमके पास पहुँच जाऊँ। देखो, आशामें भी आवेग है और प्रतीक्षामें भी आवेग है। लेकिन स्मरमें उनके मनपर नहीं छोड़ सकते—कि पता नहीं, वे कब आवें। हम उड़कर उनके पास पहुँच जायँ। स्मरमें प्रेमीके मनमें पंख जग जाते हैं। एक बार तो वह कहता है—

बिरह बिथा की धूरि।
आँखिन में राखौं भूरि।
रे रे उन पायन की धूरि।

स्मर—मुख्य शब्द तो यह स्मरणसे बनता है, लेकिन गौण शब्द यदि देखो, तो यह समर है। मर माने मौत, इसमें मौत-ही-मौत है। है तो इसमें आधा स (स्) लेकिन पूरे स का संक्षेप हुआ है। जो मरनेको राजी हो, वह इस स्मरको अपने भीतर जगह देवे। मिलनेपर भी स्मर है और बिछोहमें भी समर है। अपने अहंका नाश करना, अपने व्यक्तित्वको मिटा देना; जैसे गंगाजी जाकर समुद्रमें मिलती हैं तो अपने व्यक्तित्वको मिटा देती है, इसी प्रकार प्रेमी जब अपने प्रियतममें मिलता है तो अपना कुल, अपना धैर्य, अपना विवेक, अपनी अहंता ले जाकरके अपने प्रियतमके समुद्रमें डाल देता है।

अब स्मरकी बात थोड़ी आपको बतावें। स्मरका प्रयोग संस्कृत भाषामें कामके लिए होता है। तो **स्मरं यच्छसि**का अर्थ है, कि जब श्रीकृष्ण भगवान् ऐसे नाचते, गाते, बजाते, हँसते, खेलते लौटते हैं, तब गोपियोंके मनमें वह कामका संचार करते हैं। आप डरना नहीं; आपके मनमें कृष्ण कामका संचार करनेके लिए आवें, तब तो पूछना ही क्या!

अच्युत मुनि गंगा किनारेके एक बड़े भारी महात्मा थे। ज्यादा

करके नावपर रहते थे, वृद्ध हो गये थे। उनसे एक बार किसीने पूछा, कि जब लोग तपस्या करते थे, भजन करते थे, तो अप्सराएँ उनकी तपस्यामें विघ्न डालनेके लिए स्वर्गसे आया करती थीं। लेकिन अब हमलोग—देखो, इतना भजन करते हैं। कोई अप्सरा स्वर्गसे नहीं आती है। यह क्या बात हो गयी? माफ करना, बात जरा कड़वी बोलने जा रहे हैं। फक्कड़की बात है, बम्बईके माडर्न लोगोंकी नहीं है। अच्युत मुनिजीने कहा—कि भलेमानुस! जो संसारकी गदरियाँ हैं, जब उन्हीं पर तुम ढल जाते हो तो तुम्हारे लिए स्वर्गकी अप्सराएँ तकलीफ क्यों उठावें? तुम्हारे अन्दर तो इतना भी विवेक, इतना भी धैर्य नहीं।

अच्छा! अब आप वापिस इस प्रसंगपर आजाओ—कि श्रीकृष्ण आपके मनमें कामका संचार करें। तो श्रीकृष्ण आपके मनमें कामका संचार तब करें, जब दुनियाकी कोई चीज आपके मनमें कामका संचार न करे। श्रीकृष्ण आपके मनमें अपने प्रति काम भेजें—इसके माने क्या हुए? यह कोई साधारण स्थिति है? ये दुकानपर बैठे हुए बनिया लोग निष्काम भावसे बच्चे पैदा करते हैं और निष्काम भावसे ब्लैकके पैसे कमाते हैं। वे समझते हैं कि हम बड़े निष्काम हैं। साधु-महात्मा बोलते हैं—हम निष्काम हैं। यह निष्कामता नहीं, धोखा है। ईश्वरने जब यह सृष्टि बनायी, तब **सोऽकामयत एकोऽहं बहुस्याम**। ईश्वरके मनमें काम आया, कि मैं सृष्टि बनाऊँ। कोऽदात कस्मैऽदात कामयादत्ते। कामने दिया। और कामको दिया। संसारका रग-रग, कण-कण कामसे भरपूर है। कभी धोखेमें नहीं रहना—कि हम हो गये निष्काम।

सौ सालके एक महात्मा थे। उनसे किसीने पूछा—महाराज क्या हाल है? बोले—हाल यह है भाई, कि अगर ऋषिकेशसे लाहौर तककी धरती सोनेकी हो, तो मेरे मनमें लोभ नहीं आवेगा। लेकिन मैं मर रहा हूँ, तो भी कामके बारेमें जबतक यह शरीर श्मशानमें न चला जाय, तबतक कोई आश्वासन नहीं दे सकता।

यह कहना—कि हम निष्काम हैं—अपनेको धोखेमें डालना है, ढोंग करना है। ईमानदारीके साथ अपने दिलको टटोलना—कि इसमें काम है कि नहीं? अगर है तो देखो; बढ़िया-से-बढ़िया बात यह है कि उस कामको भगवान्‌के साथ जोड़ दिया जाय। संसारमें वह किसीके साथ जुड़ने न पावे। गोपियोंके द्वारा चलायी हुई भक्तिका रहस्य यही है।

क्या बढ़िया बात है; एक अनदेखे साजनसे प्रेम! यदि देखकर प्रेम करोगे, तो ध्यान इसपर जायेगा कि उसकी नाक ऐसी है, उसकी आँख ऐसी है, उसका मुँह ऐसा है। अनदेखे साजन और अनमिले साजन! देखा भी नहीं है, मिला भी नहीं है। उससे प्रेम करोगे तो क्या होगा? वासनाका प्रवाह उधरको मुड़ेगा और इधरका जो प्रवाह है निम्न प्रवाह, नीचे नहीं जायेगा। अनदेखे और अनमिले साजनसे मिलनेके लिए जब काम आवेगा, तो तुम ऊपर उठोगे। दिलमें आओगे, आँखमें आओगे, दिमागमें आओगे। जब देखे हुए और मिले हुए साजनके प्रति काम जायेगा, तो तुमको वह नीचे ले जायेगा। ऊर्ध्वरेता नहीं हो सकते, अधोरेता हो जाओगे। यह श्रीकृष्णसे प्रेम करनेकी खूबी है। इसलिए कहते हैं कि गोपियोंका जो काम है, वह काम नहीं है। वह सच्चा प्रेम है। वह वासना-पूर्तिका मार्ग नहीं है, वह तो संसारकी वासनाओंको समेटकर भगवान्‌से जोड़ देनेका मार्ग है। इसीसे **वांछन्ति यद् भवभियो मुनयो वयं च।** श्रीउद्धवजीने कहा कि सनत्कुमार आदि बड़े-बड़े महात्मा भी इसीको चाहते हैं, और हम भी यही चाहते हैं। **किं ब्रह्मजन्मभिः अनन्त कथा रसस्य।** ऐसा है यह प्रेम। गोपियाँ कहती हैं—**वीर, न मनसि स्मरं यच्छसि**—हमारे मनको तुम स्मर, अपने मिलनकी तीव्र आकांक्षा, सच्चा प्रेम, सच्चा काम देकर जाते हो।

: १७ :

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डलं ध्येयमापदि।
चरणपङ्कजं शन्तमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन्॥ १३॥

यह गीत क्यों आया? बोले—गोपियोंने पहले श्रीकृष्णको बहुत भला-बुरा कहा। तो प्रेममें जहाँ रूठना होता है-वहाँ मनाना भी होता है। कभी बड़प्पनका अभिमान आजाता है, तो कभी दीनता भी आती है। कभी दोष-ही-दोष सूझने लगते हैं, तो कभी गुण-ही-गुण दीखने लगते हैं। यह प्रेमकी चाल बड़ी निराली, बड़ी अटपटी होती है। एक गोपीके मनमें आया कि यदि हम ऐसे ही अटपट कुछ बोलते रहेंगी कृष्णके लिए, तो कहीं वे नाराज ही न हो जायँ। ऐसे अटपट बोलना तो बड़ा भारी अपराध है। अपना प्रियतम जो है—वह तो हमारे प्रति बड़ा राग दिखाता है। **प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं। विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम्।** गोपियोंके सामने हँसते हैं, प्रेमकी आँखसे देखते हैं, प्रेमकी लीला करते हैं। हमसे मीठी-मीठी बातें करते हैं। तो इसका मतलब यह हुआ, कि उनका तो हमसे बहुत प्रेम है।

मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण।

क्या मीठी-मीठी बातें करते हैं। क्या प्रेमकी नजरसे देखते हैं। उनके हृदयमें तो बड़ा राग है। अरी सखियो! हम ही अंधी हो गयी हैं जो श्रीकृष्णके, श्यामसुन्दरके इतना प्रेम करने पर भी उनके प्रेममें गलती देखती हैं। बड़ी भूल हुई न! आओ मनावें। बोले—कैसे मनावें? कि उनकी स्तुति करते हैं। उनके चरणारविन्दकी प्रशंसा करते हैं। अपनी तारीफ सुनकर कौन खुश नहीं होता?

आजकलके पढ़े लिखे लोग थोड़ा समझदार हो गये हैं। उनकी

आजकलके पढ़े लिखे लोग थोड़े समझदार हो गये हैं। उनकी तारीफ उनके सामने ज्यादा की जाय, तो वे समझने लगते हैं—हमको फँसाना चाहते हैं। वह भी एक हदतक ही ठीक रहती है। कई-कई लोग होते हैं, जिनको खुशामदकी आदत ही होती है। जो आया सामने, उसीकी तारीफ करने लगे। उनकी की हुई तारीफकी तो कीमत ही नहीं होती है। लोग समझते हैं कि ये ऊपर-ऊपरसे बोलते हैं। और जो लोग कभी-कभी किसी-किसीकी तारीफ करते हैं, उसमें तो जैसे अमृत आजाता है। सबको तारीफ करना भी नहीं आता है। एक जने ऐसे हैं, जिनको किसीकी तारीफ करनी होती है, तो देख लेते हैं कि वह आदमी सुन तो रहा है—लेकिन बात दूसरेसे करते हैं और उस आदमीकी तारीफ करते हैं। वह आकर पूछता है—क्या बात है? बोले—नहीं, कुछ नहीं! तुम्हारे सुननेकी बात नहीं है। और तुम सुन रहे थे? मैंने तुम्हें देखा नहीं। अब वह सोच रहा है—यह सचमुच हमारे प्रशंसक हैं।

गोपियाँ बोलीं—आओ, कृष्णको मनायें। वे वैसे तारीफ नहीं करतीं, क्योंकि वे तारीफ करनेके लिए हैं ही नहीं। वे तो कृष्णको छिपानेके लिए हैं। उनका काम है कृष्णकी ईश्वरताको छिपाना। जैसे पतिके पास बहुत धन होवे, तो पत्नीका काम है कि उसको जाहिर न होने देवे, छिपाकर रखे; यह नहीं—कि गाँवमें कहती फिरे, कि हमारे पतिके पास इतना धन है, इतना धन है।

एक बात आपको सुनाऊँ। एक सज्जनसे मेरा बहुत प्रेम हो गया। इतना प्रेम हो गया कि मैं खुद तो उनकी तारीफ कभी करता ही नहीं था और अगर भरी सभामें उनकी कोई तारीफ करने लगे, तो हमको दुःख होता था। उनकी तारीफ कोई करे तो हमको अपनी तारीफ लगती थी। और अपनी तारीफ सुनकर जैसे संकोच होता है, वैसे उनकी तारीफ सुनके संकोच होता था। यह स्थिति हमारे चित्तकी कई बरसतक रही। यह जो भगवान्‌की तारीफ है, स्तुति—यह असलमें स्तुति नहीं होती।

लोग समझते हैं कि हम भगवान्‌की तारीफ कर रहे हैं, पर वह तारीफ नहीं होती; असलमें निन्दा होती है। वह तो भगवान्‌की उदारता है कि वह उसको तारीफ मानते हैं। हमारी जन्मभूमिका गाँव है. बिलकुल अनपढ़ था। उस गाँवमें तार पढ़नेवाला उन दिनों कोई नहीं था। एक लड़का बी.ए., एम.ए. तक पढ़ गया। बाप तो विचारा जानता ही नहीं था कि बी.ए., एम.ए. क्या होता है? तो उसने अपने लड़केका परिचय दिया एक आदमीको—कि हमारा बेटा तार पढ़ लेता है। बिचारा एम.ए. पास, और उसके लिए यह बताना—कि यह तार पढ़ लेता है! निन्दा हुई, कि स्तुति हुई उसकी?

अब ईश्वरकी तारीफ करने चले; बोले—ईश्वरने हमारी आँख बनायी है, कान बनाये हैं। क्या बढ़िया चमकते दाँत बनाये हैं। दिल बनाया है, दिमाग बनाया है। कितना बड़ा कारीगर है ईश्वर। हम समझते हैं कि हम ईश्वरकी कारीगरीकी तारीफ कर रहे हैं। तो क्या यही बनानेमें ईश्वरकी सबसे बड़ी तारीफ कर रहे हैं। क्या यही बनानेमें ईश्वरकी सबसे बड़ी तारीफ है? जिसने ब्रह्मा बनाया, शिव बनाया, इन्द्र बनाया; जिसने साकार रूप धरा, निराकार ईश्वर बना दिया—उस ईश्वरकी हम क्या स्तुति करेंगे! हम लोग जैसी उसकी तारीफ करते हैं न—आहा! आज हमारे घर रोटी भेज दी भगवान्‌ने। धन्यवाद, शुक्रिया! खुदाका शुक्रिया बोलकर तब रोटी खाते हैं। अरे, वह तो कीड़े-पतंगोंको भी रोटी देना नहीं भूलता है!

असलमें अपने हृदयको शुद्ध रखनेके लिए ईश्वरका गुणानुवाद गाया जाता है। जब छोटी-मोटी बात—जो अपनी नजरमें बहुत बड़ी, लेकिन ईश्वरकी नजरमें बहुत छोटीके लिए आदमी उसकी तारीफ करने लगता है, तब ईश्वरको हँसी आजाती है। उसको हँसी आजाये, तो महाराज! अपना काम बन जाये! ये स्तोत्र भी उसको हँसानेके लिए होते हैं, उसकी असली तारीफ करनेके लिए नहीं होते। यह बात तो आपको कई बार सुना चुका हूँ कि अगर तुम यह मानोगे—कि उनका हमसे प्रेम

नहीं है, हम ही उनसे ज्यादा प्रेम करते हैं, तो तुम्हारा प्रेम घट जायगा, क्योंकि उसके बढ़नेके लिए कोई जगह नहीं है; कोई झरना नहीं है, कोई सरोवर नहीं है। और यह अनुभव करोगे कि उनका तो हमारे ऊपर बहुत प्रेम है, लेकिन हमारा कम है, तो वहाँसे प्रेम तुम्हारे हृदयमें आवेगा और बढ़ जावेगा। जो अपने प्रेमको ज्यादा अनुभव करता है, उसका प्रेम घट जाता है और जो अपने प्रेमको कम अनुभव करता है, उसका प्रेम बढ़ जाता है। यह प्रेमकी लीला है।

गोपियोंको यह अनुभव हो रहा है; **रहसि संविदः**—कि वे इतना प्रेम करते हैं और हम उनको गाली देती हैं। हर समय उनको चिढ़ाती रहती हैं, उनके प्रेमपर आक्षेप करती रहती हैं। तो थोड़ी उनके चरणारविन्दकी स्तुति करके उनको प्रसन्न कर लें।

एक बात तो यह हुई। अब देखो, दूसरी संगति ध्यानमें लो। वह बड़ी विचित्र है। गोपियाँ कहती हैं, कि तुम जब व्रजसे निकलकर जाते हो, तब भी हमको दुःख देकर जाते हो। कैसे दुःख देकर जाते हो? कि तुम अपने नंगे पाँवोंको धरतीपर इसलिए घसीटते हो, कि जब हमारे चरणोंको दुःख होगा तो गोपियोंको भी दुःख होगा। हमें दुःख देनेके लिए तुम अपने पाँवोंको दुःख देते हो।

वह कथा आप लोगोंने सुनी होगी। एक बार बड़ा भारी यज्ञ हुआ द्वारिकामें। प्रद्युम्नने दिग्विजय किया और यदुवंशियोंकी ओरसे अश्वमेध यज्ञ हुआ। व्रजवासियोंको भी वहाँ निमन्त्रण दिया गया। वृषभानु बाबा, नन्दबाबा, जसोदा मैया, कीर्ति मैया, गोपियाँ—राधिका, ललिता, सब-के-सब द्वारिका गये। द्वारिकामें वहाँसे सात-आठ कोस दूरपर गोपीकुण्ड नामका एक स्थान है। बससे जाना पड़ता है वहाँ। वहीं इन लोगोंके ठहरनेकी व्यवस्था की गयी। अब ये जो पटरानी लोग हैं—रुक्मिणी, सत्यभामा—इन सबको भगवान्‌ने उनकी सेवामें लगा दिया, कि व्रजवासियोंको कोई कष्ट न होने पावे। अब एक दिन

श्रीकृष्ण भगवान् पलंगपर लेटे और हाय-हाय करने लगे—पाँवमें बड़ा दर्द है, पाँवमें बड़ा दर्द है। रुक्मिणीने देखा, फफोले पड़े हुए थे श्रीकृष्णके चरणोंमें। बोली—यह क्या स्वामी! आपके पाँवमें यह फफोला कैसे पड़ गया? कृष्ण बोले—बात बड़ी गुप्त है, बताने लायक नहीं है।

कि नहीं, बताओ तो सही।

कि मेरे चरणारविन्द राधारानीके हृदयमें रहते हैं। यही उनका निवासस्थान है। आज तुमने उनको जो दूध दिया, वह ठंडा करके नहीं दिया, उनको गरम-गरम दूध पिला दिया। वह गरम दूध जो उनके पेटमें गया, तो हमारे चरणारविन्द जल गये। इसीसे ये फफोले पड़े हुए हैं। यह देखो श्रीराधारानीकी प्रीति, भगवान् श्रीकृष्णकी प्रीति। रामायणमें आया है कि बाण लगता है लक्ष्मणको, और पीड़ा होती है श्रीरामको, *तीर रघुवीरै घाव लछिमन।* यह प्रीतिकी रीति है।

एक तो श्रीकृष्ण जब चलते हैं धरती पर नंगे पाँव, जब उनके चरणमें पीड़ा होती है—तो गोपियोंके हृदयमें भी पीड़ा होती है। वे कहती हैं—जब तुम जाते हो गोचारणके लिए, तो हमें कष्ट देकर जाते हो। इसका निवारण करना आवश्यक है। और जब लौटते हो, तब **मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि**—हमारे मनमें काम देते हो। मिलनकी तीव्र इच्छा, व्याकुलता होती है; सायंकाल मिलनेकी प्रबल इच्छा होती है। उसमें पीड़ा होती है। इन दोनों पीड़ाओंकी निवृत्तिके लिए क्या करना चाहिए? ये दो उपाय करने चाहिए। गोपियाँ ऐसी सलाह श्रीकृष्णको देती हैं। अब यह दूसरी संगति है। बोलीं—तुम जो नंगे पाँव धरतीमें घूमते हो, उसका तो उपाय है—कि तुम अपने पाँव हमारे वक्षःस्थल पर रखो। **रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन्।** एक बात!

बोले—**मनसि नः स्मरं वीर यच्छसि।** अब सायंकाल जो पीड़ा देते हो, वह कैसे मिटेगी?

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्॥ १४॥

मनःपीड़ा जो है, मिलनकी आकांक्षारूप जो पीड़ा है, वह तो मिटेगी अधरामृतसे, और पाँवके वन-भ्रमणका जो खेद है—वह मिटेगा हृदय पर चरणारविन्दकी स्थापनासे। इन दोनों बातोंको अपने मनमें रख करके तब गोपियाँ अगले दो श्लोक बोलती हैं। पहले एक-एक श्लोकमें डूबना चाहिए; डूबना चाहिए, महाराज!

अनडूबे डूबे तरे, जे डूबे इह माँहिं।

जो इस रसमें डूब जाते हैं, वही संसार सागरसे पार हो जाते हैं। और जो इसमें नहीं डूबते हैं ना, वे संसार सागरमें डूब जाते हैं। अनडूबे डूबे—जो इस रसमें नहीं डूबे, वे संसार सागरमें डूब गये। और **जो डूबे इह माँहि, तिरे**। जो इस रसमें डूब गये, वे संसार-सागरसे पार हो गये।

श्रीकृष्णचरणद्वन्द्वमधुनो महदद्भुतम्। भगवान्‌की, श्रीकृष्णके चरणारविन्दकी जो मधु है ना, उसमें एक आश्चर्य है। वह यह, कि जो उसको पीते हैं, वे कभी बेहोश नहीं होते। और जो उसको नहीं पीते हैं, वे दुनियामें बेहोश हो गये हैं। भगवान्‌के चरणारविन्द-मधुकी यह विशेषता है। **यत् पायिनो न मुह्यन्ति मुह्यन्ति यदपायिनः।**

आओ भाई! डुबकी लगाएँ भगवान्‌के चरणारविन्द—रसमें। असलमें संसारमें फँसते ही वे हैं जो भगवान्‌से प्रेम नहीं करते। जो भगवान्‌से प्रेम करते हैं, वे संसारमें कभी नहीं फँसते। मनुष्यके साथ आधि-व्याधि लगी रहती है। व्याधि होती है तनमें, और आधि होती है मनमें। और समझो; स्थूल शरीरमें व्याधि, सूक्ष्म शरीरमें आधि और कारण शरीरमें समाधि और वे तीनों होते हैं, उपाधिमें जो परमात्माका स्वरूप है, वह निरुपाधिक है। तो गोपियाँ श्रीकृष्णको कहती हैं—**रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन्।** आधिहन्‌का अर्थ है—मनमें जो चिन्ता है, दुःख है, भय है, शोक है, श्रीकृष्णके बिना जो व्याकुलता है—उसको मिटाने

वाले यह प्रभु ही हैं। जबतक भगवान्से नहीं मिलोगे, भगवान्से प्रेम नहीं करोगे, दुःख छूटेगा नहीं। जब यह जीव आने लगा संसारमें, तो वह हाथ जोड़के भगवान्के सामने खड़ा हो गया। बोला—कि प्रभु! हम तुमको छोड़कर जा रहे हैं संसारमें। कहीं फँस न जायँ; आपके चरणोंमें लौटकर न आवें, वहीं रह जायँ—तो क्या होगा? कोई ऐसी युक्ति करो, ऐसा उपाय करो कि हम फिर लौटके तुम्हारे चरणोंमें आजायँ। भगवान्के आँसू आ गये—कि हमारा यह प्यारा बच्चा, प्यारा मित्र संसारमें जायेगा, और लौटके नहीं आयेगा, तो कैसे बनेगा? कोई ऐसी युक्ति करो, कोई ऐसा सूत्र बाँधो, जिससे यह लौटके हमारे पास आजाय। तो भगवान्ने सबपर बड़ी कृपा करके सबके भाग्यमें एक-एक चूरा दुःखका डाल दिया। बोले—कि बेटा, जब तक हमारे पास लौटके नहीं आवोगे, तबतक यह दुःख तुम्हारे पीछे लगा रहेगा, यह बेचैनी तुम्हारे पीछे लगी रहेगी। कहीं पूरी शान्ति नहीं मिलेगी। चाहे ब्याह करो, चाहे बच्चे पैदा करो, चाहे अरबपति, पदमपति बनो; चाहे कितने मकान हों, राजा—रईस बनो, सिस्टर बनो, मिनिस्टर बनो : कुछ भी बनो, जबतक ईश्वरके पास लौटकर नहीं आओगे, तबतक सच्ची सुख-शान्ति प्राप्त हो नहीं सकती।

यह प्रभु जो है, आधिहन् हैं। यह बिलकुल निश्चित समझो—कि दुःख मनमें ही होता है। मरनेमें भी दुःख नहीं है, अगर आदमीको डर न हो। डर मनमें होता है, मृत्युका दुःख मनमें होता है, वियोगका, संयोगका दुःख भी मनमें होता है। यह मन ही जब भगवान् ले लेते हैं, तब दुःख मिटता है। और यह कहो—कि मन तुम अपने पास रखो और दुःख मिट जाय—तो मनको अपने पास रखकर दुःखकी निवृत्ति नहीं हो सकती।

प्रणत कामदं। कैसे हैं भगवान्? कि सम्पूर्ण दुःख और पीड़ाको मिटानेवाले हैं। गोपियोंने कहा—प्रभु! आप अपने चरण-पंकज हमारे

हृदय पर रख दो। तो चरण-पंकज कैसा? देखो, जैसे भगवान्, वैसे ही उनके चरण! छह गुण भगवान्‌में और छह गुण उनके चरणमें। एक-एक गिनें; **प्रणत कामदं** एक, **पद्मजार्चितं** दो, **धरणिमण्डनं** तीन, **ध्येयमापदि** चार और **शन्तमं** पाँच। और भगवान्‌को **आधिहन्** कहा; चिन्ता मिटाने वाले प्रभु! रमण कहा, आनन्द देनेवाले प्रभु। और पंकज कहा—अत्यन्त कोमल, शीतल भगवान्‌के चरणारविन्द। आखिर अपने मनमें तुम बैठाओगे क्या? कोई सहारा तो होना चाहिए। गोपियोंने उद्धवजीसे कहा-कि तुम कहते हो, आकाशका ध्यान करो। ***हरि तज भजहु अकास।*** श्रीकृष्णको छोड़कर आकाशका भजन करो; आकाशका—जिसका ओर न छोर। आँख बन्द करके सोचने लगो तो डर लगे। सबका चिन्तन छोड़कर केवल आकाशका चिन्तन करो, तो बिलकुल सूना-ही-सूना मालूम पड़ेगा। भक्त लोग तो कहते हैं कि हमको डर लगता है। जहाँ भगवान् न हों, वैसे शून्य आकाशमें, वैसे जंगलमें, वैसे बीहड़ बनमें हमको डर लगता है। हमको प्रभु चाहिए।

प्रणत कामदं। भगवान्‌के चरणारविन्द कैसे हैं? बड़े ऐश्वर्यशाली हैं। तुम्हारे सम्पूर्ण अभीष्टको देनेवाले हैं। जो चाहो सो मिलेगा। भगवान्‌के चरण जो हैं, वे कल्पवृक्ष हैं, कल्पवृक्ष। यह कल्पवृक्ष कहाँसे आया? कोई जीव था। वह भगवान्‌के चरणारविन्दका ध्यान करता था। वही कल्पवृक्ष हो गया। भगवान्‌के चरण कमलका ध्यान करनेसे किसी जीवको ऐश्वर्यकी प्राप्ति हुई और वह कल्पवृक्ष बन गया। किसी जीवको ऐश्वर्यकी प्राप्ति हुई, वह चिन्तामणि बन गया। किसी जीवको ऐश्वर्यकी प्राप्ति हुई, वह कामधेनु बन गया। यह तो भगवान्‌के चरणारविन्दके चिन्तनका माहात्म्य है। **प्रणत कामदं।**

लेकिन यह लाभ अभिमानी नहीं उठा सकते। देखो एक ही दिन भगवान्‌के पास दुर्योधन भी गये और अर्जुन भी गये। भगवान्‌ने सोचा, कि दोनों आ रहे हैं, तो तान दुपट्टा सो गये। दुर्योधनने देखा कि यहाँ तो कोई

स्वागत सत्कार करनेवाला नहीं है, तो भगवान्‌के सिरकी तरफ जो कुर्सी थी, उस पर जाकर बैठ गया चुपचाप। और अर्जुन? अर्जुन आया तो भगवान्‌के चरणोंकी ओर जहाँ तलवे थे उनके—वहाँ बैठ गया। अब जब भगवान्‌की आँख खुली तो पहले सिरकी तरफ उलटकर देखेंगे, कि पहले पाँवकी तरफ देखेंगे? पहले अर्जुनकी तरफ देखा! भगवान्‌से मनोरथकी पूर्ति भी अभिमानियोंको नहीं होती, क्योंकि नाम और मान—दोनों जुदा-जुदा हैं। मानका उलटा नाम है, और नामका उलटा मान है; म अ न और न अ म। जहाँ नाम है। वहाँ मान नहीं है, और जहाँ मान है, वह नाम नहीं है भगवान्‌के चरणोंमें अभिमान छोड़के ही जाना पड़ता है। इसीलिए जो अच्छे भक्त होते हैं, वे अपने नाममें 'मान' शब्द पसंद नहीं करते हैं। हनुमानजीने अपने नाममें 'मान' रखा, लेकिन 'हन' भी साथ-साथ जोड़ा; जिसने 'मान' को 'हन' दिया, उसका नाम 'हनुमान'। मान हो तो हनुमान काहेका! इसीसे भगवान् उनके कंधे पर चढ़ते हैं, उनकी पीठ पर चढ़ते हैं। भगवान् हनुमानजीको मिले मान छोड़ने पर। इसीलिए बताया, भगवान् मनोरथ पूर्ण करते हैं।

बोले—तो गोपियोंका भी मनोरथ पूर्ण करें; सबका मनोरथ पूर्ण करें?

बोले—**प्रणतकामदं**—जो उनके चरणोंमें प्रणत होता है, माने अभिमान छोड़कर उनके चरणोंमें झुकता है, उसका मनोरथ पूर्ण करते हैं। इसका अर्थ हुआ—बड़े ऐश्वर्यशाली हैं। अब देखो! यह तो बड़ा सीधा सादा उपाय है कि हाथ जोड़ें, और अपना मनोरथ पूर्ण कर लें। बोले—महाराज! अभागे लोग जो होते हैं न, वे हाथ भी नहीं जोड़ते हैं। जिसको भगवान् पसन्द करते हैं और अपने पास बुलाना चाहते हैं, वही उनको हाथ भी जोड़ सकता है। सब लोग उनको हाथ नहीं जोड़ सकते। **यमैवेष वृणुते तेन लभ्यः**। लोग चाहते हैं सत्संग करना, लेकिन ऐसी जगह पहुँच जाते हैं, जहाँ शराब ही पीनेको मिले। अपनी रुचि है, वह

घसीटके वहाँ ले जाती है। अभिमान छोड़ना पड़ता है, प्रणत होना पड़ता है। बिना मान छोड़े ईश्वर नहीं मिलता।

अब बड़प्पन बताते हैं। ऐश्वर्य ईश्वरमें होता है। तो भगवान्‌के चरणोंमें ऐश्वर्य है। जो माल चाहो, ले लो। लेकिन जरा झुककर लेना। **न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः।** भगवान्‌के चरणोंमें सिर झुकाना सर्वविध उन्नतिको लेना।

पद्मजार्चितं—ब्रह्माजी पूजा करते हैं। पद्मजा माने ब्रह्मा, और पद्मजा माने लक्ष्मी। लक्ष्मीजी भी पूजा करती हैं और ब्रह्माजी भी पूजा करते हैं। माने धर्मकी रक्षाके लिए ब्रह्माजी प्रार्थना करके इन चरणोंको धरती पर ले आये। जब धर्मकी रक्षा करनेके लिए आये हैं, तो हमारा भी तो प्रेम धर्म है, उसकी रक्षा करेंगे। यदि मनोरथ पूर्ण करनेके लिए आये हैं, तो हमारा भी मनोरथ पूर्ण करेंगे।

धरणिमण्डनं—यह श्रीरूपसे, स्वयं लक्ष्मीके रूपमें पृथ्वीके आभूषण हैं। जहाँ-जहाँ भगवान्‌के चरण पड़ते हैं, वहाँ-वहाँ पृथ्वीकी शोभा बढ़ जाती है। **वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं। यद् देवकीसुत पदाम्बुज लब्धलक्ष्मि।** पृथ्वीके मण्डन हैं।

अब दूसरी बात बताते हैं। कीर्ति रूप हैं—**ध्येयमापदि।** कभी कोई दुःख पड़े तो इसका ध्यान करना।

हरिस्मृतिः सर्व विपद् विनाशनम्।

भगवान्‌की याद करना, माने सब दुःखोंका नाश करना।

अच्छा भाई! यहाँ भी बहुत लोग बैठे हैं, और शायद किसीके मनमें कोई दुःख होवे। आप एक मिनट भगवान्‌के चरणारविन्दका ध्यान करो। उनके चरणके तलवे कैसे लाल-लाल हैं, उनमें क्या-क्या चिन्ह हैं। उनके पंजे कैसे हैं। और उनके नख-मणि जो हैं, लाल-लाल, उभरे हुए, बड़े-बड़े नख, वे कैसे हैं! जरा एक मिनट अपने मनको उधर ले जाओ। ये भगवान्‌के नख हैं। नख-मणि जिनको बोलते हैं। ये भगवान्‌के

चरणोंके तलवे हैं। ये उनके पंजे हैं। और यह त्रिभंगी ललित भावसे खड़े हैं। एक बार आप एक क्षण ध्यान करो।

अच्छा! अब बताओ, कि जिस समय आप ध्यान कर रहे थे, उस समय आपको क्या दु:ख था? पैसा खोनेका दु:ख था? किसीके बीमार होनेका दु:ख था? किसीके मरनेका दु:ख था? आपका दु:ख कहाँ चला गया था? तो देखो! संसारके संयोग-वियोगका दु:ख और भगवान्‌के चरणारविन्दका ध्यान—ये दोनों एक साथ एक हृदयमें नहीं रह सकते। आप एक क्षणका नमूना देख लें। अगर एक क्षणमें आप दु:खका बहिष्कार करके भगवान्‌के चरणारविन्दको धारण कर सकते हैं, तो एक क्षणको दो क्षण करो, दो क्षणको चार करो, चारको आठ करो, आठको सोलह करो। आपको दु:खके निवारणकी युक्ति मिल गयी ना! **ध्येयमापदि**। कोई भी विपत्ति, कोई भी दु:ख आपका स्पर्श नहीं कर सकता, क्योंकि आपके पास ऐसी युक्ति है! वह मंत्र है यह! देखो, मंत्र जानने वाले लोग साँपके बिलमें हाथ डाल देते हैं। साँपको वे पकड़ लेते हैं और साँप उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। यदि आपको दु:ख भगानेका मंत्र मालूम है—भगवान्‌के चरणारविन्दका ध्यान, तो दु:ख आपका क्या बिगाड़ सकता है? इतना सरल, इतना सीधा रास्ता।

देखो, जब अभिमान होवे अपने मनमें—कि हम बड़े हैं, तो जरा अपनेसे बड़ोंकी ओर देखना। और जब दु:ख होवे संसारमें—कि हमारे पास पैसा कम है, कपड़ा कम है, मकान कम है, तो जरा अपनेसे गरीबों पर नजर डालना। देखो, तुम्हारे पास उनसे कितना ज्यादा है? अभावका दु:ख मालूम पड़े तो अपनेसे गरीबको देखना और अभिमानका दु:ख मालूम पड़े तो अपनेसे बड़ेको देखना, यह तरीका है। और संसारमें किसी तरहका दु:ख मालूम पड़े तो भगवान्‌के चरणारविन्दका ध्यान करना। तुरन्त दु:ख दूर हो जायेगा।

प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि।

ब्रह्मा आदि ध्यान करते हैं। जो चाहिए—सो लो भगवान्‌के चरणार-विन्दसे; धर्म अर्थ काम मोक्ष! बिलकुल खुला दरबार सदा बरसे। ऐसे तुम्हारे चरण कमल हैं। जो लोग कभी भजन नहीं करते, उन्हींके मनमें शंका होती है कि भगवान्‌के भजनसे यह काम होगा, कि नहीं। बनेगा, कि नहीं बनेगा! जो भगवद्‌भजन करते हैं, उनको तो शाम सुबह पग-पग पर यह बात मालूम पड़ती है—कि देखो, भगवान् कितनी उदारतासे अपनेको हमारे मनोरथकी उपाधिसे प्रकट कर रहे हैं।

भगवान्‌से भगवान्‌को ही चाहना। बोले—नहीं। भगवान्‌से भगवान्‌को भी न चाहना।

कि क्या चाहना?

भगवान्‌से भगवान्‌के प्रेमको चाहना। भगवान्‌से बड़ी चीज है भगवान्‌का प्रेम। यह भगवान् जो हैं, यह कभी-कभी किसी पर खुश होते हैं, और दो मिनटके लिए उसके सामने आते हैं। वह चमक गये, थोड़ा पीताम्बर फहरा गया, थोड़ा मुस्कुरा गये, थोड़ा प्रेमकी आँखसे देख लिया। कह दिया—बेटा, वर माँग लो! दो—पाँच मिनट ठहरके बातचीत कर ली। लेकिन फिर चले जाते हैं, टिकते नहीं। और भगवान्‌का जो प्रेम है, वह टिकाऊ चीज है। वह एक बार जब किसीके दिलमें आ जाता है, तो जाता नहीं। और है इतना शक्तिशाली, कि भगवान्‌को बच्चा बना ले, जवान बना ले। पति बना ले, पुत्र बना ले, मित्र बना ले, स्वामी बना ले, आत्मा बना ले। ईश्वरसे कहे—कि हे ईश्वर! तुम यहाँ दरवाजे पर खड़े हो जाओ, कि हमारे रथके सारथि बन जाओ, कि हमारे दूत बन जाओ। तो, प्रेमकी आज्ञाका पालन करता है ईश्वर। इसलिए ईश्वरसे भी कोई बड़ी चीज है, तो वह है ईश्वरका प्रेम। प्रेम ही ईश्वरको नचाता है। प्रेम ही ईश्वरको बन्दी बनाता है। और कोई-कोई बोलते हैं—

चोरी करे निहाई की, करै सूई को दान।
ऊँचे चढ़ि के देखते, केतिक दूर विमान॥

चोरी तो करते हैं मन भरके लोहेकी, और सूईका दान करते हैं। और ऊँचे चढ़के देख रहे हैं कि अभी विमान कितनी दूर है। तो दुनिया भरमें तो अपना प्रेम विखेर रखा है—पैसेमें, स्त्रीमें, पुरुषमें, मकानमें। और कभी-कभी चार बार भगवान्का नाम ले लेते हैं तो फिर देखने लगते हैं कि भगवान् आये कि नहीं आये और फिर नाराज भी होते हैं, गाली भी देते हैं—बड़े निष्ठुर हैं। अरे, निष्ठुर तो तुम हो जो ऐसे भगवान्को छोड़ करके दूसरेसे प्रेम करते हो, दूसरेकी ओर देखते हो। तुम्हारी निष्ठुरता देख-देखकर **दारुभूतो मुरारिः**—भगवान् भी लकड़ीके हो गये हैं। एकने पूछा कि जगन्नाथपुरीमें भगवान् जगन्नाथ लकड़ीकी मूर्ति क्यों हैं? तो बोले—संसारी जीवोंकी विमुखता देख-देखकर भगवान्को भी काठ मार गया है। वह भी काठ हो गये हैं।

भगवान्के चरणारविन्द अतिशय कोमल, अतिशय शीतल, परम शान्तिप्रद, परम प्रेमप्रद हैं। गोपियाँ कहती हैं—**रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन्**। इसमें एक बात उन्होंने कही, और वह बड़े मार्केकी बात है। गोपियाँ अगर समझती हैं कि कृष्ण बड़े निष्ठुर हैं और हमको दुःख देनेके लिए छिप गये हैं। तो कृष्ण कहेंगे—कि अच्छा। यदि तुम हमें आनन्ददायी नहीं समझती हो, दुःखदायी समझती हो तो अब हम तुम्हारे पास काहेको आवें? हमें कोई दुःख देनेका शौक है? तो गोपियाँ कहेंगी, नहीं नहीं! हम तुम्हें दुःख देनेवाला जो कहती हैं, वह तो खेल-खेलमें कहती हैं। और यह भी जानती हैं कि तुम भी खेलमें ही छिपे हो। रमण शब्द है। रमण माने क्या है? गुजरातीमें जैसे रम्मत रम्मत बोलते हैं। बच्चे जैसे अपने घरके छगन-मगन हैं, ये जैसे खेल-मेल करते हैं, आँखमिचौली खेलते हैं। तो रमण! तुम भी खिलाड़ी हो। हम जानती हैं कि तुम खेल-खेलमें छिपे हो। आओ! खेल-खेलमें प्रकट हो जाओ।

बोले—अरी गोपियों! प्रकट होनेसे क्या होगा?

कि **आधिहन्।** हमारा दुःख मिट जायेगा। हमारे मनमें जो फिकर लगी है, वह मिट जायेगी। हमारी फिकर मिटानेके लिए आओ!

कि बाबा! आकर करना भी कुछ हो? कि फालतू तुम्हारे घरमें आवें?

बोलीं—**नः स्तनेषु चरणपङ्कजं अर्पय।** हमारे हृदय पर, हमारे वक्षःस्थल पर तुम अपने चरणारविन्द रख दो! हमने सुना है कि मुनि लोग—बड़े बड़े जती, सती, संन्यासी उदासी वैष्णव महात्मा लोग अपने हृदयके भीतर माने बड़ी गहराईमें, मन-ही-मन आपके चरणारविन्दकी कल्पना करते हैं। और जो लोग आपके चरणारविन्दकी कल्पना मनमें करते हैं, उनका दुःख दूर हो जाता है। आपके चरणोंकी कल्पनामें ही जब इतना सुख है, और दुःख दूर करनेकी शक्ति है—तो हम तो कल्पनाकी बात नहीं करती हैं। हम तो सीधी-सीधी बात करती हैं। यह रहा हमारा हृदय और यहीं कहीं छिपे हुए हो तुम, और यहीं कहीं तुम्हारे चरण। सो आओ, सीधे-सीधे हमारे हृदय पर रख दो। हमको सच्ची चीज मिल जाय, कल्पना वाली नहीं।

असलमें आदमी जहाँ रहता है, उसी धरतीकी जब साधना होती है, तब तो मजा आता है। **यस्यां भूमौ निपतितः तामालम्ब्य विमुच्यते।** आदमी जिस धरती पर गिरता है, उसी पर हाथ लगाकर उठता है। अगर वह गिरे धरती पर, और पहाड़ पकड़कर उठना चाहे, तो पहाड़ पकड़कर कैसे उठेगा? असलमें यह जो जीव है, वह देहमें आ गया है—देह ही मेरा है, देह ही मैं हूँ, देह ही सर्वस्व है। इसके लिए एक ऐसे ईश्वरकी जरूरत है, जो इसकी देहको भी आकर गुदगुदावे, और देहमें सोते हुए जीवको उठाकर ऊपर ले आवे, नहीं तो सब-की-सब खयाली बात रह जाती है। पाँच मिनटके लिए तो दुहराते हैं मनमें—कि हम ब्रह्म हैं। और चौबीस घंटे जो घरमें काम करते हैं, वह अपनेको देह ही मानके करते हैं बिलकुल; सोलह आने। साधनामें ईमानदारी कैसे आवेगी? साधनामें

ईमानदारी तब आवेगी—कि तुम पहले अपने बारेमें समझो—क़ि तुम कहाँ हो, कितने पानीमें डूब रहे हो। उस पानीमें-से निकलनेकी कोशिश करो। जीव भी निराकार है, ईश्वर भी निराकार है। ठीक है? निराकार निराकारका ब्याह कर दो, बन जायेगा काम। लेकिन जीव साकार होकरके बैठा है, निराकार होने पर भी साकार होकर बैठा है; कहता है—हमारी आँख इतनी बढ़िया, हमारी नाक ऐसी तोतेकी सी ऊँची! अरे महाराज, अपनी चप्पलकी ऊँची ऐड़ी दिखानेके लिए लोग व्याकुल रहते हैं—कि हमारी चप्पल कितनी बढ़िया है! तो जब अपने चित्तकी स्थिति ऐसी है, तो ईश्वर ऐसा चाहिए, जो आकर तुमको इस देहमें-से गुदगुदाके, हँसकर, खिलाकर, रुलाकर, चपत लगाकर, मारकर, पीटकर निकाले। इसका नाम भक्ति है। गोपियोंकी जो भक्ति है, यह स्थूल शरीरसे जीवात्माको ऊपर उठानेके लिए है, परमात्माको अपनी धरती पर लानेके लिए है।

तो तुम्हारे ये चरण, इनको कंकड़ पर, पत्थर पर रख कर मत चलो।

कि अरी गोपियों! कहाँ रख कर चलें?

कि हमारी छाती पर रखो। कृष्ण, तुमने हमारे दिलमें आग लगायी है, सो बुझाओ!

बोले—अच्छा गोपियों! ठहरो! हम पानी ले आते हैं गडुवेमें भरकर।

बोलीं—पानीसे नहीं बुझेगी। इसके लिए तो दूसरा ही पानी, अमृत चाहिए। हमारे दिलकी आग जो है, वह अमृतसे बुझेगी, अमृतसे।

सुरतवर्धनं शोकनाशनं।

: १८ :

व्यक्तिके हृदयमें—चाहे ज्ञानी हो या ध्यानी, योगी हो या वियोगी, रागी हो या विरक्त—एक रसकी वृत्ति रहती है। ललित भावना उसको बोलते हैं, रसकी भावना बोलते हैं। किसीके हृदयमें किसी चीजको देख करके उसका उदय होता है, और किसीके हृदयमें किसी दूसरी चीजसे होता है। किसीके मनमें बच्चेको देखकर होता है, किसीके मनमें हमजोलीको देखकर होता है, किसीके मनमें स्त्री-पुरुषको देखकर होता है। पर यह जो रसकी वृत्ति है—ललितवृत्ति है, वह होती सबके चित्तमें हैं।

परिष्वजति पदार्थान् आन्तरः कोऽपि हेतुः
न खलु बहिरूपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते।

भीतर कोई ऐसा कारण मौजूद रहता है, जो बाहरके पदार्थके साथ जाकर सट जाता है, चिपक जाता है। वह भीतरसे ही निकलता है, **न खलु बहिरूपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते।** प्रेम जो है, वह बाहरकी चीजमें-से निकलकर अपने हृदयमें नहीं आता, अपने हृदयमें-से निकलकर दूसरेके साथ जाकर चिपकता है। प्रेमकी जो वृत्ति है, वह किसीको गोरा देखकर, किसीको काला देखकर, किसीको गुणी देखकर, किसीको निर्गुणिया देखकर उधरसे निकलकर नहीं आती है, इधरसे वृत्ति निकलकर जाती है। और वह सबके हृदयमें होती है।

तो अब सोचो, कि उस वृत्तिको संसारके साथ जोड़ दें। जो दीर्घकालसे संसारका अनुभव करते आये हैं और जिनके हृदयमें इसकी एक सुदृढ़ परम्परा है—उन्होंने देखा कि संसारमें प्रीति जोड़नेमें अनेक दोष हैं। एक तो जैसा देखकर हम प्रीति जोड़ते हैं, वह चीज वैसी हमेशा नहीं रहती, बदल जाती है। विषय जो हैं, वे परिवर्तनशील हैं, और उनके

भोगकी जो शक्ति है हमारे अन्दर, वह सीमित है। और रुचि जो है, हमेशा एक सरीखी नहीं रहती आदमीकी। मूड बदलता रहता है आदमीका। इसका अर्थ यह हुआ कि विषय बदलनेके साथ अगर प्रीति बदलती है, तो हमने अपनी प्रीतिको एक बाजारू चीज बना दिया है। वह जैसे कोई वेश्या हो, कोई कुलटा हो। प्रीतिको इधर जोड़ा, उधर जोड़ा। वह तो कोई इधर गिरा, कोई उधर गिरा; दिलके टुकड़े हजार हुए। बड़ी बढ़िया बात है। यह जो बाहरकी वस्तु देखकर—ये बड़े रूपवान हैं, ये बड़े गुणवान हैं, ये बड़े मजेदार हैं, बड़े सुन्दर हैं, बड़े सुशील हैं; बाहरकी वस्तुएँ देखकर जो प्रीति जोड़ी जाती है, उसमें विषय भी बदलता है, रुचि भी बदलती है, मूड भी बदलता है। तो मूडके साथ जिसकी प्रीति जुड़ेगी—कि आज इधर अपनी मौज बनती है, आज उधर अपनी मौज बनती है—उसकी प्रीतिमें स्थिरता नहीं आवेगी। इसलिए प्रीतिको तो करना चाहिए एक जगह स्थिर। प्रीति केवल बाह्य आकर्षणसे नहीं होनी चाहिए, अपने भीतरके ज्ञानको मिलाकर, अपनी बुद्धिको मिलाकर, निश्चय करके—कि यह प्रीति हमको करनी है—इस ढंगसे प्रीति चलनी चाहिए। माने प्रीतिको व्यवस्थित करना चाहिए, नहीं तो यह जिन्दगीमें मनको कभी कहीं, कभी कहीं, कभी कहीं ले जायेगा। बिलकुल उच्छृंखल हो जायेगा मन; कोई जंजीर नहीं रहेगी। लोक-व्यवहार तो बिलकुल ठीक-ठाक होता रहे, और यह प्रेमकी जो रस्सी है—यह भगवान्‌के साथ जोड़ दी जाय। यही इसका उपाय है।

बन्धनानि किल सन्ति बहूनि, प्रेमरज्जुकृत बन्धनमन्यत्।

संसारमें बन्धन तो बहुत हैं, परन्तु यह तो बिलकुल एक सम्पत्ति है—प्रेममें बंधना!

दारुभेदनिपुणोऽपि षडङ्घ्रिः, निष्क्रियो भवति पङ्कजकोषे॥

जो भौंरा सूखी लकड़ीको छेद देता है, वह भी जब कमलकी पंखुड़ियोंमें कैद हो जाता है रातको, तो उसको काट नहीं सकता।

प्रीतिको व्यवस्थित करना चाहिए। अब देखो, विषय भी निश्चित हो—परिवर्तनशील न हो, ईश्वर हो और एकता होनेके कारण शक्ति भी सीमित नहीं हो, रुचि भी नहीं बदले, और जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तिमें साथ भी न छूटे; ऐसा प्रेम अगर किसीसे हो सकता है, तो ईश्वरसे हो सकता है। इसमें देखो, एक तो लौकिक प्रीतिमें जो स्थूल अंग-संग है, उससे बच जायेगा। जो वासनाकी पूर्तिका मार्ग है, उससे बच जायेगा। और मनुष्यका जो अपना मन हैं, वह रससे भरा रहेगा।

जगन्नाथपुरीकी बात है। एक बार दो महात्मा इकट्ठे हुए। एकने कहा—प्रेमका वर्णन करो; प्रेम कैसा हो? तो उन्होंने कहा—जैसा अपनेसे है। यहींसे बात शुरू होती है। आदमी संसारमें सबसे अधिक प्रेम अपनेसे करता है। उपनिषद्‌में यह बात बिलकुल स्पष्ट है। जरा उसकी शानके खिलाफ कोई बात आ जाय, तो देखो! अरे महाराज, पाँव उठाकर सिर पर रख ले। बड़े-बड़े लोग; अपने अभिमान पर चोट जब लगती है, तो यह नहीं देखते हैं—कि यह हमारा प्यारा है, कि हमारा प्रेमी है। अभिमान पर चोट नहीं लगनी चाहिए। सबसे ज्यादा प्रेम किससे? बोले—अपने आपसे। तो भगवान्‌को अपने आपसे एक कर लो। और जो आत्मा, सो परमात्मा। जो अपने प्रति प्रीति है, वह परमात्माके प्रति हो जाय और जो परमात्माके प्रति प्रीति है, वह अपने प्रति हो जाय। अपना छोटापन मिटाकर परमात्माका बड़प्पन उसमें मिल जाय और परमात्माका परायापन छूटकर उसमें अपनापन आ जाय; यह प्रीति हुई। अपना छोटापन मिटाकर हम बड़ेमें मिल गये और बड़ेका परायापन छूट गया; वह हमसे एक हो गया। यह जो एकीभाव है, यह वेदान्तियोंकी बात मैं नहीं कर रहा हूँ। यह तो वैष्णव जन जैसी प्रीति मानते हैं, बिलकुल उसकी बात बता रहा हूँ। वैष्णव सिद्धान्तकी बात है शुद्ध, अद्वैत वेदान्तियोंकी नहीं। वह आत्मा परमात्माकी एकताका ज्ञान दूसरी चीज है, और अपनी अहंताको प्रभुमें मिला देना, और प्रभुके परायेपनको

हटाकर बिलकुल उसका आत्मरूप हो जाना और प्रभुकी परोक्षता मिट जाना, और अपनी जो प्रियता है, वह उसमें चली जाना! यह प्रेम सबसे बढ़िया है।

तो पूछनेवालेने कहा—यह ठीक है; अपनेसे प्रेम तो आदमीका हमेशा ही रहता है, हर जगह रहता है और हर किसीका रहता है। लेकिन यह अपना आपा ऐसा छिपा है, कि प्रेम करते हुए भी दुकान करते हैं उसके लिए, बाजारमें चलते हैं उसके लिए, ब्याह करते हैं उसके लिए, उसके लिए बच्चा पैदा करते हैं, उसके लिए ऊँची कुर्सी पर बैठते हैं। सब आत्माके लिए करते हैं, लेकिन पता ही नहीं चलता। ऐसी कोई माया, ऐसी कोई अविद्या छाई हुई है कि इस बातका पता ही नहीं चलता—कि हम अपने लिए यह सब कर रहे हैं। प्रेममें जब यह पता चलता है कि हम किसके लिए कर रहे हैं, तब बड़ा मजा आता है। तो अभी तुमने जो प्रीति बताई, यह तो एक अचिन्त्य, अदृश्य, अग्राह्य, परोक्ष वस्तुकी प्रीति बताई। ऐसी प्रीति बताओ, जिसमें परमात्मा प्रकट हो जाय।

बोले—अच्छा लो! परमात्मा स्वामी है और हम उसके सेवक हैं। यह बड़ी भारी प्रीति है। उसने यह दुनिया बनाई, और दुनियाके रूपमें प्रकट हुआ। वह क्षण-क्षण है, वह कण-कण है। क्या उसकी कारीगरी है, क्या उसका नियन्त्रण है! कैसे कायदेसे सृष्टि होती है, कैसे कायदेसे प्रलय होता है। कैसी एक-एक चीज नियमसे चलती है। सृष्टिमें नियम जो मिलता है सब जगह, यह सारा विज्ञान एक नियम पर आश्रित है। यदि गणितकी रीतिसे प्रत्येक वस्तुका नियम न बने, तो कोई आविष्कार नहीं हो सकता। आविष्कारका मूल यह है—कि इस नियमसे यह होता है; वह सूत्र पकड़में आ जाय। अगर वह सूत्र पकड़में न आया तो संसारका सारा विज्ञान धरा रह जायेगा। न बिजली ठीक काम करेगी, न रेल ठीक चलेगी, न हवाई जहाज ठीक उड़ेगा। क्यों? कि अणुकी गति भी नियमसे होती

चाहिए। उसका संयोग भी ठीक होना चाहिए—नियमसे, और उसका नियोजन भी ठीक नियमसे होना चाहिए। तब काम होगा।

बोले—महाराज, इस तरहका नियम कहाँसे आया? बोले—एक है इसको बुद्धिमान बनाने वाला नारायण! वह सबका अन्तर्यामी, वह सबका प्रेरक है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक हाथ जोड़कर, सिर झुकाके उसको प्रणाम करते हैं। उनको यह पता नहीं चलता कि अन्ततोगत्वा यह नियम सृष्टिमें कहाँसे आया। तो उसके सामने अपनी अहन्ताको शिथिल करना—कि लो प्रभु! तुमने ऐसा नियम बनाया है सृष्टिमें, कि सूर्य इस ढंगसे घूमे, चंद्रमा इस ढंगसे घूमे, धरती इस ढंगसे घूमे, धरती चन्द्रमा सहित सूर्यकी परिक्रमा करे। और सूर्य जो है, वह पृथिवी और चन्द्रमा सहित ध्रुवकी परिक्रमा करे; यह नियम तुमने बनाया है। तो तुम इसके बाप हो, तुम इसके स्वामी हो, तुम इसके अन्तर्यामी हो। कण-कणमें तुम्हारी रचना, तुम्हारा सौन्दर्य, तुम्हारी कारीगरी प्रकट हो रही है, और हम तुम्हारे ही नियमके अनुसार तुम्हारी सेवामें लगे हुए हैं। तो अपने सम्पूर्ण कर्मको उसी प्रभुकी प्रसन्नताके लिए करना, और यह सोच-सोचके खुश होना—कि हम उसके लिए ये कर्म कर रहे हैं। यह बढ़िया भक्ति है।

पूछने वालेने कहा—इसमें अभी प्रेम नहीं हुआ। श्रद्धा हुई, भक्ति भी हुई, मान्यता भी हुई, सेवा भी हुई। लेकिन प्रेमके लिए तो थोड़ी बराबरी चाहिए। बोले—अच्छा! स्वामी नहीं, ईश्वर हमारा सखा है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखायौ समाने वृक्षे परिसष्वजाते।

जीव भी अनादि है, ईश्वर भी अनादि है। उमरमें ज्यादा छोटे-बड़ेका सवाल नहीं है; ईश्वरकी उमर बड़ी है कि जीवकी उमर बड़ी है? कोई कहे कि ईश्वरकी उमर बड़ी है, तो बोले—जब जीव ही नहीं था, तो ईश्वर किसका था? प्रजाके बिना राजा किसका? वोट ही नहीं पड़ा तो मिनिस्टर कैसे हो जायेगा? तो **प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादि उभावपि**। तो उमर एक है, और दोनों साथ ही साथ मिल कर संसारमें काम कर रहे हैं। ऐसा प्रेम

करें, कि कहें—आओ सखा! कि ईश्वर हमारा सखा है। उसके हृदयसे लगेंगे, उसके कंधेपर हाथ रखेंगे, उससे बराबरीसे बात करेंगे।

बोले—ठीक है! यह सखा-प्रेम बहुत ऊँचा है. बहुत बढ़िया है—यह सत्य है। श्रीदामा तो कृष्णके कंधेपर चढ़ता है। बलरामजी कृष्णको डाँट देते हैं। अर्जुन भी कहता है—अहा हा! क्या पूछना! हमारे यह मित्र हैं कृष्ण! बड़े सच्चे; यह तो जन्मसे ही सच बोलने वाले हैं। पराये माल पर हाथ न लगावें, परायी स्त्रीकी ओर देखें नहीं। और युद्धभूमिमें-से कभी भागें नहीं। और बिलकुल सच-ही-सच बोलें। **वयस् चरितवानिति विप्रलब्धः**। श्रीमद्भागवतमें आया; बड़े सच्चे हो महाराज! हाथ जोड़ते हैं तुमको। गीतामें क्षमा माँगनेकी बात आयी है;

विहार - शय्यासन - भोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं।
तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥

गीता–११.४२

यह है सखा! बोले—हाँ! सखा बननेमें भी मजा तो है, परन्तु सखा कभी अपनी बात न माने, तो? हम तो उसकी भलाईके लिए उससे कोई बात मनवाना चाहें; कहें—कि सो जा, और वह बोले—नहीं सोवेंगे! तो क्या करोगे? आखिर तो मित्र है। क्या वश चलेगा?

तो बोले—अच्छा, सखा भावसे भी उत्तम एक भाव है। वह है वात्सल्य भाव। बच्चा बनाकर भगवान्‌को रख लो! उनको दूध पिलाओ, उनको चूमो, उनको चाटो। उनको सुलाओ तो सो जायँ, खिलाओ तो खा लें; वात्सल्य भाव इसको बोलते हैं। माने अपने प्रेमकी जो वृत्ति है, उसको भगवान्‌के साथ जोड़ो। हम जो कहेंगे, वह उसको मानना ही पड़ेगा। नहीं माने, तो? तो कभी डाँट भी देंगे। यह प्रेम जो है, भगवान्‌को नचाता है। कभी छोटा बनाता है, कभी बड़ा बनाता है। ईश्वरसे ज्यादा शक्ति प्रेममें होती है। वह दूरको नजदीक खींच ले। और भगवान् कहें—

कि हम देरसे आवेंगे, तो उनको जल्दी बुला ले। वह कहे—कि हम अपने बड़प्पनमें रहेंगे, तो कहे—कि नहीं! तुमको बच्चा बनना पड़ेगा। सबका ईश्वर है ईश्वर. और ईश्वरका ईश्वर है प्रेम। अगर ईश्वरको अपने मनके अनुसार नचाना होवे, तो ईश्वरसे प्रीति करो। यशोदा मैया बांध देती है, सांटी लेकर माटी उगलाती हैं। जब चाहे, कहें—सोना पड़ेगा, थक गये हो। तुमको अपने पेटका पता नहीं है, तुमको भूख लगी है; खाओ, देखते नहीं, तुम्हारा पेट पीठसे सट गया। खेल-खेलमें लगे हो, दुबले पड़ जावोगे। डाँटके खिलावें, डाँटके सुलावें। प्यार करें, अपने हृदयसे लगाके सोवें। अपना दूध पिलावें।

हाँ भाई! यह सब तो ठीक हैं। माताका प्रेम तो सर्वोपरि है ही है। वह तो स्नेहकी मूर्ति है। लेकिन एक बात है। माता सेवा कर सकती है, यह बात ठीक है। माता कहेगी कि यह हमारे दिलका टुकड़ा है, आत्मा है। यह बात भी ठीक है। माता कभी बराबरीसे बिठाके हँस खेल भी लेगी। लेकिन पत्नी जो सुख देती है अपने पतिको, वह सुख तो माता नहीं दे सकती। तो प्रेममें कमी रह जायेगी।

तो बोले—अच्छा, फिर तो मधुर भाव ही लो! शान्त रससे भी अधिक, दास्य रससे भी अधिक, सख्य रस, वात्सल्य रससे भी बढ़के यह मधुर रस है। माताके प्रेममें कोई कमी नहीं है। अपने बच्चेको सारा रस वह दे सकती है, लेकिन बच्चेको बच्चा नहीं दे सकती। बच्चेको बच्चा तो पत्नी देगी। मधुर प्रेम जो है—आत्मनिवेदनासक्ति, आत्मसमर्पण—वह तो प्रेममें जब कान्त भाव आवेगा, जब मधुर रस आवेगा, जब यह पाँचवाँ रस जो भक्तिका है—यह आवेगा, तब निकलेगा।

तो बोले—हाँ, हाँ! ठीक कहा। पर भला यह तो बताओ कि यह जो शृंगार रस है, मधुर रस है, इसमें तुमको कौन सा अच्छा लगता है? लक्ष्मी और नारायणका भाव?

कि बहुत अच्छा है। किन्तु लक्ष्मी-नारायणमें बात यह है कि

लक्ष्मोकी प्रीति तो नारायणके प्रति बहुत अधिक है, लेकिन नारायण जो हैं, वे जरा विरक्त टाइपके हैं। यह बात भागवतमें तो कई बार आयी है। विरक्त हैं, कह देते हैं—जाओ, तुम्हें छुट्टी है। जहाँ मौज है, वहाँ जाओ। जैसे मौज है, वैसे घूमो। हमको कोई खास तुम्हारे प्रति ऐसा आग्रह नहीं है कि तुम हमारे पास रहो। लक्ष्मीका ही प्रेम है, कि हर समय चाहे पाँव दबाती रहें, चाहे वक्षःस्थल पर रहें। यह लक्ष्मीकी प्रीति है—कि वह पाँव दबाती रहती है, और वह घर्र-घर्र सो जाते हैं। उनको कोई खास दिलचस्पी नहीं है।

तो बोले—कि अच्छा! सीता-रामका ध्यान करो। उनका तो प्रेम बहुत बड़ा है, क्योंकि देखो, राम सीता जीके वियोगमें व्याकुल हो जाते हैं; सीताजीसे बहुत प्रेम करते हैं।

बोले—हाँ! उनका भी प्रेम बहुत है, पर वह जरा लोक-धर्मको ज्यादा महत्त्व देते हैं।

सौख्यं दयां च मैत्रीं च अथवा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।

लोगोंको खुश करनेके लिए, लोगोंकी भलाईके लिए अगर हमें अपना सुख छोड़ना पड़े, दया छोड़नी पड़े, मैत्री छोड़नी पड़े, जानकीको भी छोड़ना पड़े, तो **आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।** हम छोड़ देंगे। तो यह कहना पड़ेगा धीरेसे—कि आपने तो लोगोंकी भलाईसे ब्याह किया है। कोई जानकीजीसे थोड़े ही ब्याह किया है। सबसे अधिक तो लोगोंकी भलाई हुई!

बोले—अच्छा! तो चलो, द्वारकामें चलें। द्वारकामें सब-की-सब रानियाँ कृपासे दबी हुई हैं। सबको यही लगता है, कि देखो! हमें लानेके लिए श्रीकृष्णने क्या-क्या नहीं किया! हम इनके योग्य थोड़े ही थे। इन्होंने बड़ी कृपा करके हमारे साथ सम्बन्ध जोड़ा। वहाँ प्रीतिकी प्रबलता नहीं है। है तो पति-पत्नीका सम्बन्ध, लेकिन ईश्वर भावकी,

श्रद्धाकी, भक्तिकी प्रधानता है और इन्होंने कृपा करके हमको अंगीकार किया है—अपने छोटेपनका भाव ज्यादा है।

बोले—अच्छा. आओ! व्रजमें चलें। व्रजमें बहुत सारी गोपियाँ हैं। उनका प्रेम है कृष्णसे। दो तरहका प्रेम मानते हैं—एकको रागात्मिका भक्ति बोलते हैं और दूसरीको रागानुगा भक्ति बोलते हैं। व्रजवासियोंके हृदयमें जो प्रेम है, वह रागात्मक प्रेम है। उनके हृदयमें राग-ही-राग है। अब कोई भगवान्‌से प्रेम करना चाहे, तो कैसा करना पड़ेगा? कि गोपियाँ जैसा प्रेम करती हैं, वैसा प्रेम हमारे हृदयमें आवे। हमारे हृदयमें अगर वह आवेंगा भी, तो रागानुगा भक्ति होगी। उसमें भी विभाग करते हैं। गोपियोंकी प्रीति तो बहुत। गोपियाँ कहती हैं—कि अगर कृष्णको न देखें, तो हमारी आँखोंको चैन नहीं है। माने अपनी आँखोंको चैन देनेके लिए वे कृष्णको देखना चाहती हैं। बोलीं—कि कृष्ण न मिले तो हमारे हृदयमें शान्ति नहीं है। इसका मतलब हुआ कि कृष्णके मिलनसे ही हृदयमें शान्ति होती है।

यह तो सुखको अपनी ओर खींचना हुआ। यह ऐसे हुआ—कि कृष्ण जो हैं, वे कोई लड्डू हैं, और उनको जीभसे चाटें, जीभ मीठी हो जायेगी। वह बड़े सुन्दर हैं, बड़े मधुर हैं, बड़े स्वादिष्ट हैं। और फूलके सौन्दर्य पर जैसे मधुमक्खी टूट पड़ती है रस पीनेके लिए, या जैसे भौंरा-भौंरी टूट पड़ते हैं, वैसे गोपियोंकी आँख अपनेको सुखी करनेके लिए श्रीकृष्णके ऊपर टूट पड़ती है। अभी ऐसा लगता है, कि प्रेममें कुछ कमी है।

बोले—कि नहीं, नहीं। राधारानीको देखो। वह तो कहती हैं कि हमारे देखे बिना हमारे प्राणप्यारेको बहुत दुःख हो रहा होगा। आज चन्द्रावलीने अपने ऐसे चर लगाये, कि उनको यहाँ तक आने ही नहीं दिया, रोक लिया। बोले—रोक लिया? कोई बात नहीं। लेकिन क्या उसके हाथका खाना उनको अच्छा लगा होगा? क्या उसके हाथके पंखेकी हवा उनको अच्छी लगती होगी? क्या उसके घरमें उनको सुख मिला होगा?

राधारानी सोचती हैं कि आज मेरे पास आये बिना मेरे प्राण-प्रियतमको सुख नहीं मिला। आज उनको अच्छी नींद नहीं आयी। आज उनको शान्ति नहीं मिली। आज उनको सुख नहीं मिला। वे इतना प्रेम करते हैं हमसे, कि आज हमारे बिना उनको चैन नहीं होगा। आज हमारे बिना उनको सुख नहीं होगा, आज हमारे बिना उनको शान्ति नहीं होगी।

आप देखो! सच्चिदानन्द-घनकी ब्रह्मज्ञान वाली बात है! अरे! यह जितनी बात मैंने सुनाई है, इसमें वह ऐसी भरी हुई है कि कोई प्रेक्षावान पुरुष देखे तो इसको! श्रीकृष्ण जिस पर लट्टू हैं; परम सुन्दर, परम मधुर, परमानन्द-स्वरूप, परम ज्ञान-स्वरूप, सत्स्वरूप, सद्घन, चिद्घन, आनन्दघन, प्रेम-मूर्ति, रस-मूर्ति श्रीकृष्ण! वह राधारानी यह सोचती है, कि मेरे बिना वह सुखी नहीं हो सकते। और श्रीकृष्णका क्या भाव है? कि मेरे बिना श्रीराधारानी सुखी नहीं हो सकतीं। उनका हमसे बहुत प्रेम है! कृष्ण सोचते हैं कि उनकी प्रीति मुझसे अधिक है, और राधारानी सोचती हैं, कि कृष्णकी प्रीति मुझसे अधिक है। उनका जितना प्रेम है, उतना हमारा कहाँ? श्रीकृष्ण सोचते हैं कि उसकी प्रीति मुझसे अधिक है और राधारानी सोचतीं हैं कि कृष्णकी प्रीति मुझसे अधिक है। उनका जितना प्रेम है, उतना हमारा कहाँ? श्रीकृष्ण सोचते हैं कि राधारानीमें प्रेमका जो समुद्र है उसमें सामने तो हमारी प्रीति एक बूंद भी नहीं। राधारानी सोचती हैं कि श्रीकृष्णकी जो प्रीति है, उसके सामने हमारी प्रीति एक बूँद भी नहीं।

तो बोले—भाई! प्रेमका चरम विकास कहाँ हुआ? सामरस्य प्रेमका कहाँ हुआ? बोले—राधा-कृष्णके प्रेममें ही। प्रेमको समझनेके लिए भी कोई आधार चाहिए। कोई आश्रय चाहिए। संसारी जो जीव है, उनको तो अपने सुखके सिवाय, अपने स्वार्थके सिवाय, अपनी शान-मानके सिवाय दूसरा कुछ सूझता ही नहीं है। तो सबसे बड़ी प्रीति कौनसी? कि

प्यास ही को रूप मानौ राधाजी को रूप है।

श्री राधारानी क्या हैं? बोले—प्यास हैं, प्यास! श्रीकृष्णके प्रति प्यास। महाकवि जयदेवने वर्णन किया—

प्रथम समागम लज्जितया।

प्रतिदिन उनको यही मालूम पड़ता है कि आज हम लोग नये नये मिले हैं। आज प्रथम मिलन हुआ है। आज ही तो मैंने देखा है। इसके पहले तो कभी देखा ही नहीं था। जैसे दो लहरें समुद्रमें उठ रही हों। एक दाहिनेसे आयी, एक बायेंसे, और दोनों आपसमें मिल गयीं। दाहिने वाली अपने धक्केसे बायें चली गयी, बायें वाली अपने धक्केसे दायें चली गयी; और फिर लौटी। और फिर दोनों मिलीं, और फिर दोनों लौटीं, और फिर दोनों मिलीं। तो प्रत्येक लहर हर क्षणमें नवीन नवीन होकर मिलती है।

आदि न अन्त विलास करें दोऊ
लाल प्रियामें भई न चिन्हारी।

अनादि कालसे अनन्त काल तक दोनों राधा कृष्ण आपसमें विलास कर रहे हैं, परन्तु दोनोंमें जान-पहचान नहीं हुई। जान-पहचान नहीं हुई माने प्रतिदिन पूछते हैं—कि लाली! कहाँसे आयी हो? वह पूछती हैं—लालजी! तुम तो नये-नये मिले हो। भागवतमें भी इसकी सूचना है।

सकृदधरसुधां त्वां मोहिनीं.....।

बोले—भाई! सबसे बड़ा प्रेम कौन? कि चकई-चकवेका। अरे राम-राम! इनका संयोग नहीं होता रात को। कराहते रहते हैं। वियोग ही वियोग रहता है। उनका क्या प्रेम है! संयोगमें क्या रस है—यह चक्रवाक मिथुनको, चकई-चकवेको नहीं मालूम।

अरे! सारसका प्रेम? बोले—जब कभी वियोग ही नहीं होता, जन्मसे मृत्यु तक साथ ही साथ रहते हैं, तो जिनको विरह नहीं हुआ,

उनको प्रेमका क्या पता? सारसको प्रेमका पता नहीं है, चक्रवाक-युगलको प्रेमका पता नहीं है।

कि अच्छा! चकोरको प्रेम होगा? कि जब चन्द्रमा पहचानता ही नहीं है उसको तो चकोरके प्रेमकी क्या गिनती है? तो यदि चन्द्रमा चकोर हो जाये और चकोर चन्द्रमा हो जाये, और दोनों अदलते-बदलते रहें! प्रीतिकी जो रीति है, वह निराली है।

कै जानत वृषभानु नन्दिनी,
कै वह कान्हड़ प्यारो।
गोकुल गाँव को पैंड़ो ही न्यारो।

तो संसारके लोग, स्वार्थी लोग, सुखी लोग उस प्रीतिकी रीतिको नहीं पहचानते हैं। यह प्रेमकी एक ऐसी रेखा, एक ऐसी लकीर खींच दी है, जो मनुष्यके मनको संसारसे इतना ऊपर उठा देती है, कि वह संसारका व्यवहार तो करे, लेकिन संसारमें फँसे नहीं। उच्च कोटिका जो प्रेमका ज्ञान है, प्रेमकी ऊँचीसे ऊँची रेखा है, यह हृदयको इतनी ऊँची कक्षामें पहुँचा देती है, कि संसारमें आदमी फिर कहीं फँसे नहीं। देखो, हम जैसा प्रेम बताते हैं, वैसा दुनियामें तुमको कहीं मिलेगा नहीं, किसीसे मिलेगा नहीं।

—कि तब?

—तब तो उसीसे जोड़ना पड़ेगा।

—अच्छा! और बताओ, राधा-कृष्णके प्रेमकी क्या विशेषता है?

तो उन्होंने बोलना शुरू किया—राधामें क्या रस! कृष्णमें क्या रस! तो पूछने वालेने बताने वालेके मुँह पर हाथ रख दिया—कि बस, बस! अब आगे मत बोलो! चुप!

तो ज्ञानका शुद्ध रूप जो है, वह मौन है। चित्तका सबसे ऊँचा रूप मौन है। ऐसे प्रेमका जो सच्चा रूप है, वह वाणीसे बोल करके बतानेका नहीं है। वह तो कोई-कोई प्रेमी उसको जानता है।

ग्वालिनी प्रगट्यो पूरन नेह।

दधिभाजन सिर पे लिए, कहति गोपालहिं लेहु।

ग्वालिनी गाँवमें दही बेचनेके लिए निकली. तो दहीका बर्तन. दहीका मटका है सिर पर। और बोलना चाहिए कोई दही लो दही, और बोलती है—'कोई गोपाल लो गोपाल'। इसका मतलब हुआ—मैं कृष्णको बेचनेके लिए निकली हूँ।

सरिता मिली तड़ाग सों, दीन्हीं कूल बिदारि।

नाम मिट्यो सरिता भई, अब कौन निबेरै बारि॥

एक नदी बहती हुई आ रही। सरोवर और नदीके बीचमें जो मेंड़ था, उसको उसने तोड़ दिया। अब नाम मिट गया, सरोवरका नाम नहीं रहा। नदी बह रही है। अब किसीने कहा—कि जरा अलग तो करो, कि इसमें सरोवरका पानी कौन है, और नदी का पानी कौन है? तो—

नाम मिट्यो सरिता भई, कौन निबेरै बारि।

मन्दिर माँह दीपक जरै, बाहर लखे न कोई।

मन्दिरमें एक दीयेकी लौ जल रही है। बाहर कोई नहीं देखता है। *तृन परसत प्रजलित भयो।* अब एक तिनका छू गया, और आग लग गयी।

यह मत समझना, कि यह गोपी-कृष्णका प्रेम कोई पार्कका प्रेम है, कि कोई सड़कका प्रेम है, कि कोई चौपाटीका प्रेम है, सिनेमा-क्लबका प्रेम है, चिट्ठी-पत्रीका प्रेम है। यह प्रीति आत्माका जो परमानन्द स्वरूप हैं, यह उसीकी अभिव्यक्ति है। इसमें विशेष बात क्या है—कि जहाँ आत्मज्ञानी शान्त होकर अपने स्वरूपमें स्थित होता है, वहाँ यह भक्त उसी आत्माको, परमात्माको अपनी बुद्धिमें लाकर उसके बारेमें सोचता है, उसीको मनमें लाकर ध्यान करता है। उसीको इन्द्रियोंमें लाकरके उसका रसास्वादन करता है। उसीको क्रियामें लाकर पकड़ता है, उसके साथ चलता है। उसीको वस्तु बना करके अपने सामने रखता है। प्रेममें इतनी सामर्थ्य है कि ब्रह्मको सालिग्रामकी बटिया बनाकर रख दें, यह

प्रेमका सामर्थ्य है। ज्ञानमें सामर्थ्य नहीं है। ज्ञान किसी चीजको बदल नहीं सकता, वह जैसा है वैसा दिखाता है। ज्ञान प्रकाशात्मक है, प्रमाणात्मक है और प्रेम निर्माणात्मक है। ज्ञान है—जो चीज जैसी है उसको वैसी बताना। आत्मा ब्रह्म है, बोले—ठीक है। बता दिया—ब्रह्म है। प्रेम? अरे, प्रेमने तो पत्थरको ईश्वर बना दिया। यह प्रेमकी महिमा है। जिससे तुम प्रेम करते हो, अगर वह अब तक ईश्वर नहीं हुआ तो तुम्हारे प्रेमकी कमी है। ईश्वरकी कमी नहीं है। तुम्हारे प्रेममें ही न्यूनता है, ईश्वरमें न्यूनता नहीं है। अगर वह ईश्वरसे जरा भी छोटा है, तो तुम्हारा प्रेम कम है। अभी प्रेम बढ़नेकी गुंजाइश है।

जो गोपियोंकी हम लोग चर्चा करते हैं, वह काहेके लिए? कि जो राधारानीका प्रेम है, जो गोपियोंका प्रेम है, उसको देखकर हमारे जो संसारके सम्बन्ध हैं, उनकी जो गन्दगी है—एक तो वह समझ में आवे, थोड़ा वैराग्य होवे। दूसरे, ईश्वरके प्रति हमारा रसका जो भाव है, वह संसारमें न जुड़कर ईश्वरके साथ जुड़े, तो हमारे हृदयमें रागानुगा भक्तिका उदय होवे। रागानुगा, जैसा राग गोपीके हृदयमें था, वैसा राग हमारे हृदयमें आवे—इसके लिए उसकी चर्चा करनी पड़ती है।

तो आपको सुनाया, कि भगवान्के चरण सब मनोरथ पूर्ण करते हैं। लेकिन किसके? बोले—**प्रणत कामदं**। जरा झुकना पड़ेगा।

चाखा चाहो प्रेम रस राखा चाहो मान।

प्रेममें मान नहीं हो, अभिमान नहीं हो। अभिमान है तो अपने प्यारेका अभिमान है, हमारे हैं—यह अभिमान है। वह दूसरी चीज है। और संसारके सम्बन्धको लेकर जो अभिमान है, वह बिलकुल गलत है।

गोपियोंने कहा, कि आपके चरणारविन्द प्रेमीके सब मनोरथ पूर्ण करते हैं। तो हमारी शिकायत है आपसे, कि हमारा भी मनोरथ है—कि जहाँ कहीं भी वह हों, छिपे हों, वहाँसे चलकर आवें। क्यों नहीं आते हैं? बोले—बस, हमारे चरणोंका इतना ही काम है—कि लोगोंकी कामना

पूरी करते रहें? तो बोले—नहीं। **पद्मजार्चितं**—ब्रह्माजी भी उनकी पूजा करते हैं। माने वे बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, केवल मनोरथ-पूर्तिके स्थान नहीं हैं। बड़े-बड़े वृद्ध महापुरुषोंके द्वारा सेवित, पूजित होनेके कारण धर्मके भी स्थान हैं। बोले—बाबा, देखो। नन्दबाबाके, धर्मात्माके बेटे, बाल ब्रह्मचारी, हम स्त्रियोंसे दूर रहने वाले हैं।

बोलीं—**पद्मजार्चितं**, लक्ष्मीजी भी तो आपकी पूजा करती हैं। दृष्टान्त है यह।

बोले—फिर भी चलो, लक्ष्मी जी पूजा करें तो.करें। ये हमारे चरण अलग-ही-अलग रहते हैं, किसीसे मिलते नहीं हैं।

बोलीं—**धरणिमण्डनं**—पृथ्वीके आभूषण हैं।

गोचारणायानुश्चरैश्चरवने—जैसे कोई कपड़े पर छाप लगावे बढ़िया-बढ़िया, वैसे धरती पर बढ़िया-बढ़िया छाप लगाते हुए, अपने चरणोंकी मुहर लगाते हुए विचरण करते हैं। आभूषण—रूप हैं, लक्ष्मी-रूप हैं, कीर्ति-रूप हैं।

बोले—अच्छा, धरणिके लिए होंगे। तुम्हारा क्या मतलब?

—कि हमारा हृदय भी, हमारा वक्षः स्थल भी धरणी रूप है। जैसे प्रेमी अपने प्रियको आभूषण पहनावे, वैसे आप अपने चरणारविन्दका आभूषण हमारे वक्षःस्थल पर पहनावो।

अच्छा! पहलेमें और इसमें क्या फर्क है? कि जो पहले वाले हैं, वे प्रायः दोष—निवर्तक हैं, वे—**प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनं फणिफणार्पितं** हैं, और ये गुणाधायक हैं। एक दोष मिटाने वाले हैं और एक गुण देने वाले हैं।

अच्छा, दूसरी दृष्टिसे देखो। **ध्येयमापदि**। अरे बाबा! हम कब तुम्हारे चरणोंकी ओर देखती हैं? हम तो तुम्हारे मुखारविन्दको देखती हैं, तुम्हारे वक्षःस्थलको देखती हैं, तुम्हारे हृष्ट-पुष्ट बलिष्ठ भुजदण्डको देखती हैं। हम चरणोंकी ओर कब देखती हैं? परन्तु जब आपत्ति पड़ती

हैं ? यह विरहकी विपत्ति! अब इस समय तो हम उन्हींकी ओर देख रही हैं—कि कब चलकर हमारी ओर आते हैं। हमको आपके चरणोंकी सुगन्ध चाहिए। हमको आपके चरणोंका रस चाहिए। हमको आपके चरणोंका रूप चाहिए। हमें आपके चरणोंका स्पर्श चाहिए। हमें आपके चरणोंकी ध्वनि चाहिए, क्योंकि विरह जो है, वह हमें बहुत दुःख दे रहा है। आपत्तिकालमें भगवान्‌के चरणकमलका ध्यान करो। सारी आपत्ति दूर हो जाती है।

चरणपङ्कजं—स्वरूपसे उत्कृष्ट हैं, बड़े कोमल हैं। और **शन्तमं**—संसारके सारे दुःखों और बन्धनोंसे मुक्ति देने वाले हैं। प्यारे श्यामसुन्दर! तुम अपने चरणारविन्दको हमारे हृदय पर स्थापित कर दो और जितनी आधिव्याधि हैं उसमें वह दूर कर दो।

कृष्णने कहा—अच्छा गोपियों! ठीक है। हम तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करते हैं। अब और कुछ तो नहीं चाहिए तुमको? बस, केवल हमारे चरण तुम्हारे वक्षःस्थल पर हों इतना ही चाहती हो ना?

देखो, यह प्रेम जो है, यह तृप्तिमें भी प्यास हैं। एक चीज मिले तो दूसरी चीजकी माँग जरूर बढ़ जायेगी। पहले कहते हैं—कि देख लो। फिर कहते हैं—बात करलो। फिर कहते हैं—छू लो। यह प्रेम जो है, यह आगे बढ़ता है। **इति श्री स्कन्दपुराणे रेवाखण्डे** कभी प्रेममें होता नहीं। यह तो नित्य नूतन है। नयी-नयी चीज इसमें आती है, नयी-नयी प्यास आती है।

बोले—और क्या चाहिए?

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम्।
इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्॥

बोले—एक दवा है, हमारे पास, सब रोगोंको मिटानेवाली। एक-एक चीज देखो इसमें, तो मालूम पड़ेगा कि हमारे लिए भी थोड़ा जरूरी है। जितनी बातें इसमें कही गयी हैं, **शोकनाशनं**, **स्वरितवेणुना**,

सुष्ठुचुम्बितं, इतररागविस्मारणं—इन सब पर ध्यान दो। ऐसी दवा है यह श्रीकृष्णके पास एक, ऐसा रसायन है—कि श्रीकृष्णके सिवाय न बादशाहतमें सुख मालूम पड़े और न ब्रह्मके पदमें सुख मालूम पड़े। **इतररागविस्मारणं**—उससे भिन्नके प्रति जो राग है, वह राग ही भूल जायँ। चतुर्गुणी है वह। चार गुण उसमें है, **सुरत- वर्धनं** एक, **शोकनाशनं** दूसरा, **स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितं** तीसरा, और चौथा गुण है **इतररागविस्मारणं**। इसमें प्रमाणका भी बल है। प्रमेयकी भी बात है। प्रमाताकी भी बात है। बड़ा आनन्ददायक प्रसंग है।

स्वर्गमें एक अमृत मिलता है और इस लोकमें चन्द्रमासे एक अमृत बरसता है, और एक भगवत्सम्बन्धी अमृत होता है। भगवत्सम्बन्धी अमृत भी कई तरहका होता है, भगवान्‌का स्पर्शामृत जुदा होता है, शब्दामृत जुदा होता है, रूपामृत जुदा होता है। ये अलग-अलग अमृत हैं। इनके बिना आदमी असलमें खुद मुर्दा हो गया है।

तो बोले—वाह-वाह! हमारे अन्दर बड़ी शक्ति है, बड़ा बल है, बड़ी बुद्धि है, बड़ा उत्साह है। हमको तुम मुर्दा क्यों कहते हो?

बोले—दूसरेसे जब तुम कुछ चाहने लगते हो, तब कंगाल हो जाते हो। देखो; तुम्हारे अन्दर एक पूर्णताका दरवाजा है, जिससे तुम्हारे दिलमें आकर पूर्णत्व प्रकट हो जाये। जब वह बन्द हो जाता है, तब तुम छोटी-छोटी चीज माँगनेके लिए भिखारी होकर इधर-उधर घूमते हो। यह पूर्णताका द्वार क्यों बन्द हुआ? कठोरता आ गयी। प्रेम घटता है कैसे? चित्तमें कठोरता आनेसे घटता है, स्थिरता न होनेसे घटता है, दूसरेसे मोह-ममता होनेसे घटता है। प्रीतिकी यह रीति है। दूसरेसे जब सुखी होवें और दूसरेके लिए दुःखी होवें, तब प्रेम घटता है।

तो आओ! वह दवा जो कृष्णके पास है, वह कृष्णके ही पास है। और किसी के पास नहीं है।

*

: १६ :

भगवान् अन्तर्धान हो गये हैं। यह बात ज्ञान सिद्धान्तमें भी ऐसी ही है और भक्ति सिद्धान्तमें भी। जब छोटी चीज पर नजर जम जाती है, तब बड़ी चीजका दिखना बन्द हो जाता है। तो दुनियाके लोग अपने छोटे 'मैं'को देखनेमें लगे हुए हैं, इसलिए सबसे बड़ा जो भगवान् है, उसका दर्शन नहीं होता। अब देखो। गोपियोंकी जो स्थिति है, यह उनकी बुद्धिमें बिलकुल साफ हो गयी है। **निजजनस्मयध्वनसंस्मिता,** जरा मुस्कुरा देते, तो हमारा मान टूट जाता। इसके लिए भागनेकी क्या जरूरत थी—ऐसे बारम्बार गोपियाँ कह रही हैं। तो पहले गोपियोंमें वामपक्ष आ गया था और श्रीकृष्ण दक्षिणपथमें थे। जब अन्तर्धान हो गये तो श्रीकृष्ण वामपक्षमें आ गये और गोपियाँ दक्षिणास्थमें हो गयीं। प्रीतिकी रीति ऐसी है। ऐसे ही उलझनमें सुलझन, सुलझनमें उलझन—यह प्रेमकी गति ऐसी है।

अब गोपियाँ जैसे प्रार्थना करती हैं, पहले कृष्ण प्रार्थना करते थे और गोपियाँ सुनी-अनसुनी कर देती थीं। अब गोपियाँ प्रार्थना करती हैं और कृष्ण सुनी-अनसुनी कर देते हैं। इसमें कोई छोटे-बड़ेकी बात नहीं है।

खेलन में को काको गुसैयाँ।

पर अब इस समय श्रीकृष्णके अन्तर्धान हो जानेसे श्रीकृष्णकी जो महिमा है, वह गोपियोंको बिलकुल साफ मालूम पड़ रही है। गोपियोंको चार चीजें चाहिए, प्रेममें चारोंकी आवश्यकता होती है, एक तो प्रेम निरन्तर बढ़े, दूसरे-अपने प्रियपात्रके अलावा दूसरेसे प्रेम

न हो। तीसरे-पिछले जो दुःख हैं, वे याद आ-आकर चित्तकों रूखा न बनावें, और चौथी बात यह है—कि प्रेममें सुगमता होवे। प्रेम बहुत दुर्लभ हो, बड़ी भारी तपस्या करने पर प्रेम मिलता हो, तों भी रुक्षता आजायेगी जीवनमें। और दूसरेसे प्रेम हो जाता है, तब तो प्रेम चौपट ही हो गया, प्रेम क्या रहा! और दूसरे दुःख आकर दबा देते हैं, तो जिससे दुःख हुआ है, उसकी याद आवेगी। जिसके संयोगसे या जिसके वियोगसे शोक होता है मनमें—उसकी याद आवेगी। तो अब भगवान्‌के पास एक ऐसी दवा है, औषध है—जिसकी याचना करती है गोपी, कि वह दवा हमको दे दो।

बोले—वह औषधि कौन-सी है? तो नाम बताना तो अभी ठीक नहीं है। इतना भर बता देते हैं कि वह लौकिक नहीं है, अलौकिक है; **धरामृतं न भवति।** वह धराका अमृत नहीं है, इसलिए उसका नाम अधरामृत है, धरा और अमृत—धरामृत। दूसरी बात, **अधरं अमृतं यस्मात्। अधरं नीतिनं न्यक् अमृतं यस्मात्।** वह ऐसी दवा है, कि अमृत उसके सामने बिलकुल फीका है। किन्तु **वेदामृतं भवति**—वह वैदिक अमृत हैं। अथवा लोक और वेदसे विलक्षण कोई चीज है, ऐसा अमृत है। तो उसकी महिमा अब बताते हैं।

प्रेममें एक विषय-बल माना जाता है। श्रीधरस्वामीने उसका नाम विषय-बल रखा है, और श्रीवल्लभाचार्यजी महाराजने उसका नाम प्रमेय—बल रखा है। नाम ही दो हैं, चीज एक ही है। सामान्य रूपसे यह बात लोगोंकी समझमें नहीं आती है। विषय कहो या प्रमेय कहो, यह उस चीजका नाम है, जिससे आप प्रेम करते हैं। जिससे प्रेम किया जाता है, वह प्रेमका विषय है। उसीका नाम प्रमेय है। यह देख लेना—कि जिससे तुमने प्रेम किया है, वह कौन है। वह इतना शुद्ध होना चाहिए कि वह तुमको संसारमें न फँसाये, नरकमें न ले जाये, तुम्हें वासनाका दास न बना दे, तुम्हें बन्धनमें न डाल दे। उसको विषय-बल बोलते हैं।

बोले—गोपियाँ कोई बहुत ऊँची थीं? कि नहीं। ऊँची नहीं थीं। कि उनके मनमें काम था? कि हाँ! काम था। लो! भागवतमें कितनी जगह लिखा है कि गोपियोंके मनमें काम था। **कामाद् गोप्यः भयाद् कंसः द्वेषाद् चैत्यादयो नृपाः।** शिशुपालके मनमें द्वेष था, उसको भगवान् मिले। कंसके मनमें भय था, उसको भगवान् मिले। गोपियोंके मनमें काम था, उनको भी भगवान् मिले। शिशुपाल कोई ऊँची किस्मका आदमी नहीं था। और कृष्णके प्रति जो उसका द्वेष था, वह भी कोई ऊँची किस्मका नहीं था। तो अधिकारी भी नीचा और उसकी बुद्धि भी नीची। कंस भी नीचा, और उसका भय भी एक नीची वृत्ति। लेकिन वह जुड़ गयी कृष्णके साथ। तो वह भयका कृष्णरूप विषय ऐसा वहाँ आकर बैठा, कि भयका शोधन होकर अभय हो गया और कंसका शोधन होकर ब्रह्म हो गया। इसीको प्रमेय बल बोलते हैं। प्रमेय बल माने? जो प्रेमका विषय है, उसमें कुछ खास विशेषता है कि नहीं? तो देखो, दुनियादारीके प्रेममें और भगवान्से किये जानेवाले प्रेममें यही फर्क है। इसका नाम प्रमेय बल हुआ।

तो बोले—गोपियाँ क्या ऊँची किस्मकी थीं? कि नहीं। भागवतमें गोपियोंकी निन्दा भी है। एक आर्यसमाजी गोपीकी जैसी निन्दा कर सकता है, वैसी निन्दा भागवतमें है। उसमें डरनेकी कोई बात नहीं है। बोले—हे भगवान्! गोपियोंकी इतनी महिमा है, वे इतनी प्रेममयी, इतनी श्रेष्ठ, इतनी दिव्य, इतनी अप्राकृत हैं और भागवतमें उनकी निन्दा है? कि—हाँ, है। काहेके लिए है? देखो, उसको समझो। जितने ज्यादा बीमारको वैद्य अच्छा कर दे, वैद्यकी उतनी तारीफ होगी कि नहीं? जितना बड़ा मर्ज हो, जितना कड़ा मर्ज हो, जितना मरणासन्न रोगी हो, और ऐसी कोई दवा आजाये कि वह रोगी अच्छा हो जाये, रोग मिट जाये, तो? उसको अच्छा करनेकी दवाकी उतनी महिमा होगी। इसीसे श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज गोपियोंमें भी तामसी, राजसी, तामसी-तामसी

जैसे भेद करते हैं। तो जितना बड़ा रोग हो, दवाकी उतनी बड़ी महिमा होती है। जिनको द्वेषका रोग था, वह द्वेष कृष्णके साथ जुड़ा तो उनका कल्याण हो गया। जिनको भयका रोग था उनका भय कृष्णके साथ जुड़ा, तो उनका कल्याण हो गया। जिनको स्नेहका रोग था, वह कृष्णके साथ जुड़ा, तो उनका कल्याण हो गया। जिनको मोहका रोग था, जिनके अन्दर कामका रोग था, वह कृष्णके साथ जुड़ा तो उनका मंगल हो गया, उनका कल्याण हो गया। काम कोई अच्छी चीज नहीं है, और काम करनेवाला, कामवृत्ति वाला कोई अच्छी चीज नहीं है, वह तो कृष्ण अच्छी चीज है। यह कृष्णकी प्रशंसा हुई, कृष्णकी महिमा हुई। एक भक्त जब कहता है—कि मैं तो बड़ा चोर था, बेईमान था, बदमाश था। लेकिन जब मैं अपने गुरुजीके पास आया, तो उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखा। और उसी दिन मेरी चोरी, बेईमानी, बदमाशी—सब छूट गयी। तो देखो, अपनेको तो उसने नीचा बताया, लेकिन गुरुजीकी तो महिमा बढ़ गयी। कि गुरुजी ऐसे लोगोंका भी कल्याण कर देते हैं। ऐसे ही श्रीकृष्णजीकी महिमा बढ़ती है। गोपियोंके छोटे होनेसे गोपियोंको क्या एतराज हो सकता है इसमें? उन्हें क्या आपत्ति हो सकती है—कि इनको कोई छोटा कहे? भागवतमें उद्धवजीका बोला हुआ श्लोक है—

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचार - दुष्टाः
कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः।
नन्वीश्वरोऽनुभजतोऽविदुषोऽपि साक्षात्
श्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः॥

१०.४७.५९

एक आदमी बिलकुल मरणासन्न था। एक बूँद उसके मुँहमें डाली गयी, और वह जिन्दा हो गया। स्वस्थ हो गया वह, हँसने लगा। बोले—वह कौन सी दवा थी? कि उसका नाम अमृत था। इसका नाम है कृष्णौषधि, कृष्ण-औषधि। जिससे प्रेम किया गया, यह उसका बड़प्पन

है, उसकी महिमा है। ऐरे गैरेसे प्रेम कर लिया, और बोले—कि बस, दिल्लीश्वरो वा; दिल्लीका बादशाह। हमारा तो जगदीश्वर भी यही है। आजकल महाराज. हृदयेश्वर और प्राणेश्वर और जीवन-सर्वस्व ऐसा सत्यानाश किया है लोगोंने इन शब्दोंका! तो यह प्रमेय बल है।

तो यह जो गोपियोंका प्रेम है, यह किनके साथ है—इसपर नजर डालना जरूरी है। यह उनकी महिमा है। हम यह नहीं कहते कि काम अच्छा है। हम यह नहीं कहते कि कामी अच्छा है। हम यह कहते हैं कि किसी भी वृत्तिका भगवान्‌के साथ जुड़ जाना अच्छा है। और जब कामका भी जुड़ जाना अच्छा हैं, तो शुद्ध प्रेमका तो क्या पूछना! वह तो अच्छा है ही। एक प्रेमीके लिए क्या चाहिए?

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठुचुम्बितम्।
इतरराग विस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम्॥

सुरतवर्धनं—प्रेम बढ़े। सुरत शब्दका संस्कृत भाषामें एक अर्थ तो है प्रेम। प्रेम वह है, जो उधार आनन्द नहीं है, और शान्त आनन्द भी नहीं है। ज्ञानसे जो ब्रह्मानन्दका अनुभव होता है, वह शान्तानन्द है। वृत्ति कोई फुरफुराती नहीं है, शान्त आनन्दका अनुभव हो रहा है। और संसारमें जो भोगका आनन्द है, संभोगका आनन्द है, उसमें वासनाका वेग है। उसमें विषयका संयोग है, उसमें पतन है। उसमें बादमें दुःख है, बादमें थकान है। और धर्मका जो आनन्द है, वह मोक्ष है। वह तो कर लेनेके बाद इस जीवनमें आवे; या मरनेके बाद आवे। धर्ममें दोनों बातें हैं, दोनों तरफ़से परोक्षता है। इस जीवनमें भी धर्म करनेके बाद एक प्रकारका संतोष होता है—कि मैंने बढ़िया काम किया। पर वह सन्तोष करनेके बाद होगा; या मरनेके बाद स्वर्ग मिलेगा। तो ज्ञानका आनन्द साक्षात् अपरोक्ष होने पर भी शान्त है, और धर्मका आनन्द परोक्ष है। और विषयका जो आनन्द है, वह विनाशी है, गंदा है। और प्रेमका जो आनन्द है, वह ज्ञानकी तरह शान्तानन्द नहीं है, धर्मकी तरह परोक्षानन्द नहीं है और विषय-भोगकी

तरह अशुद्धानन्द नहीं हैं। जिसको प्रेमानन्द बोलते हैं, यह तत्काल अनुभव होता रहता है—बिना विषय-भोगके, बिना परोक्षताके, बिना शान्तिमें। व्यवहार कालमें ही प्रेमके आनन्दका अनुभव होता रहता है। इसलिए उसमें रम हैं। रमण है वह। रमण है—माने प्रेमी लोग उसमें रम जाते हैं।

अब देखो! एक और बात बतावें। विषयमें जो आनन्द है, वह कल्पित है। वह एक ही व्यक्तिका आनन्द है, जैसे आम खानेका आनन्द है। आमको आनन्द हो रहा है? तुम उसको खा रहे हो, उसका छिलका उतार रहे हो, या उसको चाकूसे काट रहे हो, चूस रहे हो। तो क्या आमको आनन्द आ रहा है? अच्छा, आमको आनन्द नहीं आ रहा; तो क्या आम तुमको आनन्द दे रहा है? नहीं। उसमें कुल-का-कुल आनन्द तुम्हारा ही है। एक ही व्यक्तिका है वह सारा खेल!

जीवको जीवसे जो आनन्द आता है न! उसीको संसारमें बोलते हैं—कि मनुष्यका मनुष्यसे जो आनन्द है, वह लोकमें एक उत्कृष्ट आनन्द है। क्यों? कि उसमें दो दिल मिलते हैं। दो मनका उसमें सामंजस्य होता है, सामरस्य होता है, सौमनस्य होता है। अगर दो मन न मिलें तो आनन्द आवेगा? या तो एक ही मन होवे, तो आम खानेका मजा आवेगा, और दो मन होंवे, तो मिलने पर आनन्द आवेगा। अब समझो, एक मन जीवका है, और एक मन ईश्वरका। तो जीवका आनन्द जो होता है, वह सीमित होता है, और ईश्वरका आनन्द असीम होता है। संसारमें जो एक जीवका दूसरे जीवसे प्रेम होता है, वह एक जगह जाकरके समाप्त हो जाता है। और ईश्वरके साथ जो प्रेम होता है, वह बढ़ता जाता है। अब यह है सुरतवर्धनं। वर्धन है, माने यह ऐश्वर्य है प्रेमका। प्रेम ईश्वर है। इसके क्या माने हुए? कि ईश्वर जैसे घटता नहीं है, वैसे प्रेम भी घटता नहीं है। ***छिन बाढ़े छिन ऊतरे, सो तो प्रेम न होय।*** जो छिनमें बढ़े और छिनमें उतर जाय, उसका नाम प्रेम नहीं है।

अधर प्रेम पिंजर बसे, प्रेम कहावे सोय।

जो अपने हृदयमें अघट बसे। घटे नहीं कभी; बढ़े।

प्रतिक्षण वर्धमानं।

बिनु गुन जोबन रूप धन, बिनु स्वारथ हित जान।
शुद्ध कामना ते रहित, प्रेम वहै रसखान॥

रूप देख करके प्रेम नहीं, गुण देख करके प्रेम नहीं, जवानी देख करके प्रेम नहीं, धन देख करके प्रेम नहीं। *बिन स्वारथ हित जान*— स्वार्थकी पूर्तिके लिए प्रेम नहीं। हित जान करके प्रेम है। शुद्ध कामना *तें रहित प्रेम वहै रसखान*—उसीको प्रेम कहते हैं। **गुणरहितं कामना-रहितं प्रतिक्षण वर्धमानं सूक्ष्मतमं अनुभवरूपम्।** प्रेम गुण देखकरके नहीं होता, कामनाकी पूर्तिके लिए नहीं होता। घटने वाला नहीं होता, वह प्रतिक्षण बढ़ने वाला होता है। अत्यन्त सूक्ष्मतम होता है, अविच्छिन्न, अटूट होता है और अनुभव रूप होता है।

लोग उत्सव करते हैं न! बड़े-बड़े उत्सव लोग करते हैं, तो बड़ा मजा आता है। जबतक उनके पास जाना कबूल न करो, तबतक बड़ी चिरौरी, विनती करते हैं—कि आना हमारे यहाँ जरूर। आपके बिना तो उत्सव होगा ही नहीं। आप ही के लिए कर रहे हैं—ऐसा बोलते हैं। जब कबूल कर लो, तब नम्बर दो बात पर आते हैं। तब कहते हैं—कि महाराज! इस समाजके पास तो पैसा नहीं हैं। थोड़े खर्चमें ही काम चलाना है। जरा किराये-विरायेके बारेमें ध्यान रखें। देखा बहुत है। मैं तो उत्सवमें जाता नहीं हूँ। और चले जाओ अगर, तो स्टेशन परसे मोटरमें ले आयेंगे। लेकिन वापिस आनेके समय बड़ी मुश्किलसे तांगा मिलता है। यह संसारकी रीति है। जो लोग उत्सवमें आते हैं न, उन सबका यह अनुभव है। पहले वेगमें बड़ा भारी प्रेम होता है। धीरे-धीरे उसका नशा उतरने लगता है। देखो, गंगाजी पवित्र हैं कि नहर पवित्र है? दोनेंमें फर्क है। गंगाजी जितना आगे बढ़ती हैं, उनकी धारा उतनी ही विशाल होती

जाती है। वह पवित्र है, दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने वाली है। ऐसा ही गोपियोंका प्रेम है। इसकी दवा किसके पास है? कि कृष्णके पास है; वहाँसे मिलेगी।

अब दूसरी बात यह है—कि मनुष्यका मन जरा भूतसे ज्यादा चिपकता है; आहा! उस समय हम कैसे थे! ये जो सिद्ध लोग होते हैं न, उतने हुए सिद्ध; ये जो रासलीलामें, रामलीलामें स्वरूप बनते हैं न—वे उतरे हुए होते हैं। उनसे कभी बात करो ना, तो वे कहते हैं—जब हम स्वरूप बनते थे, तब हमारे अन्दर वह आवेश आता था, वह सिद्धि आती थी और वह भक्त लोग आते थे, और वह चमक आती थी, कि क्या बतावें! अब तो क्या रहा! जैसे स्त्रियाँ बुढ़ापेमें अपने सौन्दर्यका वर्णन कर-करके खुश होती हैं, वैसे ये लोग भी होते हैं—कि पहले हमारे अन्दर यह सिद्धि थी, और मैं जो संकल्प करता था सो हो जाता था, इतने मुर्दे हमने जिला दिये, इतने रोगियोंके रोग हमने दूर कर दिये थे! हमने तो महाराज, सोना बरसा दिया था। अब तो वह सब छूट गया। तो ये उतरे हुए सिद्ध लोग जो होते हैं, वे भी भूत ही से चिपके रहते हैं। अरे भाई, पहले तुमने दस मुर्दे जिलाये। अब एकाध ही जिलाके दिखा दो।

तो यह भूतसे चिपकनेकी प्रवृत्ति मनुष्यके अन्दर होती है। वह मन छोड़ता नहीं है; फँस जाता है संसारमें। और बीती हुई बात चाहे बढ़िया हो, चाहे घटिया हो—वह शोक ही देती है। मैंने आपको सुनाया होगा; एकके घर गये हम लोग। तो महाराज, वह पुराने पुराने कालीन उसने बिछाए! मैले-मैले और फटे-फटे! अरे बाबा, चार रुपयेका एक कम्बल लाकर बिछा देते और एक फर्द बिछा देते। बोले—कि क्या कहूँ, महाराज! पहले देखो, हमारे पास ये थे। यह ईरानसे लाया था, दस हजार रुपयेमें आया था अबसे पचास बरस पहले। अब वह तो बैठने लायक नहीं रहा! इतना गंदा, इतना फटा हुआ। और वह अपना भूतका

वैभव दिखानेकेलिए यह सब कर रहा है। भूत ही तो लगा हुआ है न उनके मनमें! अपने पुराने वैभवका स्मरण करके रोते हैं—महाराज, हमारा वह खो गया हमारा वह मर गया, हमारा वह बिछुड़ गया। जिसका मन भूतके साथ ज्यादा चिपकता है, उसमें वर्तमान रसकी जो वृत्ति है, वह सूख जाती है। भगवान्से प्रेम करनेके लिए भूतको भी छोड़ना पड़ता है, भविष्यको भी छोड़ना पड़ता है। वर्तमानमें जो अपने पास-पड़ोस हैं, उसमें-से भी रसकी वृत्ति निकालनी पड़ती है। वह भगवान्के साथ जोड़नी पड़ती है। श्रीउड़िया बाबाजी महाराज कहते थे कि अपने मनको ऐसे बैठके शून्य बनाओगे—**हरि तजि भजहु अकास**—भगवान्को छोड़ दो, और अपने मनको सूना बनाओ, तो सूना-सूना नहीं बनेगा। उसमें टिकेगा नहीं। मनको कुछ तो मिलना चाहिए न! यह तो महाराज, जो लोग बातें करते हैं और अभ्यास नहीं करते, साधन नहीं करते; वे जो घंटे आध घंटे आराम नहीं देते अपने मनको, वे लोग बड़ी ऊँची-ऊँची बांतें हाँकते हैं। अगर तुम्हें अपने मनको आराम देना है, तो उसके लिए एक आलम्बन चाहिए, एक आधार चाहिए। वे कहते थे कि आनन्दका विकास जीवनमें करो। अपने मनमें आनन्दका विकास करो। कमरा बन्द करके यह देखो—कि कृष्ण तुम्हारे सामने अंगूठा दिखा रहे हैं। हँसी आ जाय; ऐसा! कभी तुम देखो, कि वह बैठे हुए हैं और हम उनके सामने नाच रहे हैं। कभी उनके सामने आँख नचा लो, कभी हाथ नचा लो, कभी भ्रूकुटी हिलाओ। और पहले ही दिन अगर चाहोगे—कि हम समाधि लगाकर कृष्णको दिखावेंगे, तो बात बनेगी नहीं। तो प्रेममें यह आवश्यक है कि अपने हृदयमें आनन्दका विकास होवे। यह शोध जो है, यह मूल वृत्ति है। पिछली बातोंको याद करके मनमें शोक आता है, और अगली बातोंकी कल्पना कर करके भय होता है। और वर्तमान जो हमारे साथ है, वह बना रहे, यह मोटर, यह मकान, यह जवानी, यह सुन्दरता बनी

रहे, यह मोटर, यह मकान, यह जवानी, यह सुन्दरता बनी रहे—यह क्या है? कि मोह होता है। मोह होता है वर्तमानके साथ, भय होता है भविष्यके प्रति और शोक होता है भूतके प्रति। तो मजा आ जाय अपने जीवनमें जिससे, वही चाहिए। वह औषधि चाहिए, वह रसायन चाहिए—जिससे रोग मिट जाय।

बोले—भाई! जिन्दगीमें कई बार प्रेम भी होता है, कई बार द्वेष भी होता है। आपको एक बात सुनावें। दुःख और प्रेम तो एक साथ रह नहीं सकता है। प्रेमी आदमी दुःखी हो सकता है, दुःखी आदमी भी प्रेमी हो सकता है, लेकिन उस दुःखका सम्बन्ध अपने प्रियतमसे ही होना चाहिए, दूसरेसे नहीं। लेकिन एक साथ आदमी प्रेमी भी हो और द्वेषी भी हो, ऐसा नहीं हो सकता। यह नहीं—कि अपने प्रियतमसे द्वेष होवे। प्रियतमसे तो प्रेम होता है, द्वेष नहीं हो सकता, क्योंकि हम अपने प्रियतमसे तो बड़ा प्रेम करते हैं, लेकिन उसके दुश्मनसे द्वेष करते हैं। तो उसके दुश्मनसे तुम जो द्वेष करोगे, वह द्वेष तुम्हारे दिलमें रहेगा, कि तुम्हारे दुश्मनके दिलमें रहेगा? कि नहीं, रहेगा तो हमारे दिलमें। तो यह जो सौतिया डाह है, यह प्रेममें नहीं रह सकता, क्योंकि जब सौतिया डाह होगा तो तुम्हारे दिलमें सौत रहेगी, प्रियतम नहीं रह सकता। तो प्रेमी जो है, वह किसीका द्वेषी नहीं हो सकता। अगर एकके लिए तुम्हारे मनमें जलन है, तो तुम्हारे दिलमें बैठा हुआ तुम्हारा प्रियतम भी जलेगा, क्योंकि उसको भी तो वहीं रहना है। अगर तुम्हारे हृदयमें भगवान् है, और तुम अपने दुश्मनके लिए आग जला रहे हो अपने दिलमें, तो जिस दिलमें तुम्हारे भगवान् बैठे हैं, उसी दिलमें तुम आग जला रहे हो। तो क्या तुम्हारे भगवान्‌को उसकी आँच नहीं लगेगी? रोना हो, तो भगवान्‌के लिए रो लो, लेकिन दूसरेको जलानेके लिए आँच तो मत जलाओ अपने दिलमें। एकको ऊँचा उठानेके लिए दूसरेको नीचे गिराते हैं जो लोग, वे एकके प्रेमी नहीं हैं, क्योंकि एकके प्रेमी होते, तो एकको जब उठाते—तो दस

और उठ जाते उसके साथ। प्रेमी दु:खी तो हो सकता है, परन्तु द्वेषी नहीं हो सकता।

अब तीसरी बात देखो। प्रेमी दूसरेसे राग नहीं कर सकता। राग माने होता है रंग। *एक ही रंग रंग्यौ यह डोरो।* यह जो हृदयका सूत्र है, वह तो एक रंगमें रंग गया। तो एक ऐसी दवा चाहिए, जिसमें दूसरेका राग न हो। राग माने रंजना, रंगीनी, रंग चढ़ना। आसक्ति माने मरना। तो उसकी दवा चाहिए।

तो तीन बातें तो ये चाहिए प्रेमके लिए; एक तो शोक, भय, मोह न हो; दूसरी बात—किसीसे राग न हो, तीसरी बात—प्रेमका जो सुख है, आनन्द है, वह बढ़े। और चौथी बात यह चाहिए—कि वह सुगम हो।

स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितं। बोले—यह दवा कौनसी है? दवाकी तो बड़ी कीमत होगी। जब इतने फायदेकी दवा है, इतनी मुफीद है, तो मिलेगी कहाँ? बोले—नहीं। बहुत सस्ती है वह। यह जो सुरीली बाँसुरी है ना! सात स्वरोंवाली-स्वरित, और बजती हुई—नादामृत-बाजित यह वेणु। देखो, वेणु शब्द पर संस्कृतमें बहुत व्यंग्य किया गया है। वेणु माने होता है बाँस, वह भी मादा नहीं, नर। संस्कृतमें वेणु शब्द पुल्लिंग है, स्त्रीलिंग नहीं है। यह वंशी नहीं है, वेणु है। जैसे 'द्वे' में-से 'द'का लोप करके गुजरातमें 'बे' बोलते हैं। बे माने होता है 'दो'। और हिन्दी वालोंने 'व'को निकाल दिया, 'द'को रखा, तो 'दो' हो गया। तो यह रेणु शब्द जो है, यह एक तो संस्कृत भाषामें पुल्लिंग है, और दूसरे जड़ है; लकड़ीका बाँस है, चेतन नहीं है। तो कहते हैं—यह दवा इतनी सस्ती है, इतनी सुलभ है, जितना सुलभ यह जड़ बाँस है।

बाँसको अच्छी जातकी लकड़ी नहीं माना जाता। वह अन्त्यज है, ब्राह्मण नहीं है। आम वैश्य है, बबूल शूद्र है। पीपल ब्राह्मण है। वृक्षोंमें भी जाति होती है—ब्राह्मण ग्रन्थोंमें वेदोंमें इसका वर्णन है। पशुओंमें देखो, गाय है, क्या बढ़िया है! अब मानना पड़ेगा—कि घोड़ा जो है, वह

शूद्र है। शेर क्षत्रिय है, गाय ब्राह्मण है। सूअरको अन्त्यज मानना पड़ेगा। पक्षियोंमें भी एक कौआ है, कौएको चाण्डाल पक्षी मानते हैं। हंस ब्राह्मण पक्षी है। पक्षीमें, पशुमें, वृक्षमें—सबमें चातुर्वण्यका वर्णन आता है। उनके गुणको देख करके, उनके स्वभावको देख करके उनका निर्णय किया जाता है। तो यह बाँस एक तो गठीला है, ग्रंथि है उसमें। अब जिसके दिलमें गाँठ होवे, उसको भगवान् कैसे मिलें? यह अभिमानकी गाँठ बड़ी प्रबल है और पोला है। जैसे नारियलमें मीठा पानी भरा रहता है, वैसे बाँसमें मीठा पानी भरा हो—सो भी नहीं। और जाति भी खराब है और पुरुष है। और उसको महाराज, वह दवा इतनी मिलती है—स्वरित वेणुना सुष्ठु चुम्बितं। उसको भी वह चीज मिल जाती है।

मैं क्षुद्र वंश की बंसी हूँ, छिद्रों से भरा हुआ है तन।

छेद हैं उसमें। छेद माने तो अपराध होता है। गाँठ है। आगमें सेंकी गयी, तो थोड़ी जल भी गयी; जली हुई है। और जहर उगलनेमें तो दुनियामें मशहूर है। पीती है अमृत और उगलती है जहर। तो ऐसा जो वुणु है, उस वेणुको भी वह औषधी चुम्बन करनेके लिए प्राप्त होता है।

तो तीन बात निकलीं, एक तो दूसरेसे प्रेम न हो, अपने प्रियतमसे, भगवान्से प्रेम बढ़े, और तीसरे-शोक, मोह, भय न हो और चौथे-सुगम हो। यह कोई लौकिक वस्तु नहीं है। अमृत तो-समुद्र-मन्थन हुआ था, तब निकला था। यह भगवान्ने किया था? आपको मालूम होगा! भगवान्ने एक दिन लक्ष्मीजीसे कहा—कि लक्ष्मीजी! कुछ याद ही नहीं आता, कि हम लोगों का कब ब्याह हुआ था। लक्ष्मीजीने कहा—हाँ, हाँ। हम जानते हैं। तुम इसीलिए याद नहीं रखते, कि ब्याहकी वर्षगाँठ मनावेंगे तो कुछ उपहार देना पड़ेगा। तो उन्होंने कहा—कि आओ! फिरसे ब्याह करलें, और वर्षगाँठकी एक तिथि बनालें। तो जब समुद्र-मन्थन होने लगा, तो लक्ष्मीजीसे कह

दिया—कि देखो! यह समुद्र-मन्थन होने लगा है। अब तुम जाओ मन्दराचल पर्वतकी आड़में, और उधरसे निकलकर आओ। हम कहेंगे—कि देखो! समुद्र-मन्थनमें-से लक्ष्मीजी निकली हैं। लक्ष्मीजी वही, जो हमेशा भगवान्‌के साथ रहती हैं। तो निकलकर आयीं, समुद्रने कहा—यह तो हमारी बेटी है। तो बोले—हाँ, बेटी है। आओ, ब्याह करें। और हम आजसे ब्याहकी वर्षगाँठ मनावेंगे। फिर भगवान्‌ने जो चिन्तमणि—कौस्तुभमणि थी, वह भी धीरेसे समुद्रमें डाल दी; बोले—यह भी निकली है समुद्रमें-से। वही चन्द्रमा, वही पुराना निकला। सब वही। अमृत भी असलमें पुराना निकला, नया नहीं था। भगवान्‌के पास जो पुराना अपना था, वही अमृत उन्होंने थोड़ा-सा समुद्रमें डाल दिया, और जब समुद्र-मन्थन हुआ, तब वह निकला। असली कोई पहचाने नहीं, ऐसी माया भगवान्‌की। न देवता पहचानें, न दैत्य पहचानें, कि यह भगवान्‌का वही अमृत है। थोड़ा चन्द्रमा पर डाल दिया, तो वही बरसाते हैं सबके ऊपर।

यह भगवदामृत जो है, वही चन्द्रमामें-से झरता है। तब औषधि, वनस्पति इसको पीते हैं। उसीको पशु खाते हैं, पक्षी खाते हैं, मनुष्य खाते हैं। वही स्वर्गमें थोड़ा रखा है तो देवता लोग उसको पीते हैं। तो गोपियोंने कहा—कि नहीं। यह बहानेबाजी नहीं चलेगी। जो चन्द्रमाके द्वारा बरसाते हो तुम अमृत, वह हमको नहीं चाहिए। और जो स्वर्गमें तुमने रख दिया है, वह भी हमको नहीं चाहिए। समुद्र-मन्थनमें जो तुमने निकाला, उसमें तो जहर भी निकला समुद्रमें-से, अमृत भी निकला। तो वह तो विष-बन्धु है। उसमें थोड़ा विष लग गया है। समुद्रमें-से तो बड़ी-बड़ी चीजें निकलीं। अप्सरा भी उसमेंसे निकली; वारुणी भी—शराब भी उसमें-से निकली, और जहर भी उसमें-से निकला। तो उसके साथ जो अमृत निकल आया, वह हमारे कामका नहीं। हमको तो वह मूल अमृत चाहिए, समुद्र-मन्थनके समय समुद्रों जहाँसे अमृत आया

था। तो **अधरं अमृतं यस्मात्**। हमको तो वह मूल, वह अधरामृत चाहिए, जो कभी किसीके हाथ नहीं लगा है, जो कभी किसीका जूठा नहीं हुआ है, जो तुम्हारा स्वरूप-भूत है, प्रेमामृत है, आनन्दामृत है।

बोले—बाबा! वह तो हम नहीं देते हैं।

तो बोलीं—ऐसी कंजूसी मत करो। **वितर वीर स्तेऽधरामृतं**। डरते हो? बहादुर बनो। बहादुर बनोका अर्थ है—दानवीर बनो। देखो, तुम्हारे चरणोंका आश्रय लेकर शंकरजीने कामको भस्म कर दिया। शंकरजी कामसे नहीं डरते, और तुम कामसे डरते हो? अरे, तुम्हारे हमारे बीचमें कामका सम्बन्ध कहाँ है? वह कहाँसे आ टपका है? यह तो विशुद्ध प्रेम है। इसलिए **वितरवीरनस्तेऽधरामृतं। अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्**। इतना प्रेम है हमारे हृदयमें तुम्हारे प्रति।

अब श्रीमुखका वर्णन देखो। **कुटिल कुन्तलं श्रीमुखं च ते**। ये घुँघराली अलकें जिस पर लटकती रहती हैं, वह श्री विशिष्ट तुम्हारा मुख सौन्दर्यका आगार है। झिलमिल झिलमिल ज्योति होती है जिस पर, लावणयमय, चटपटा; देखकरके आँखोंको प्यास लग जाय। कई लोग ऐसे होते हैं। उनको भले ही प्यास न लगी हो, लेकिन जीरेका पानी देखें, नींबूका पानी देखें, तो पीनेका मन हो आता है, जीभको प्यास लगती है। और श्रीकृष्णका जो रूप होता है, उसके लिए आँखोंको प्यास लगती है। श्रीमुख हैं श्रीमुख! श्रीखण्ड नहीं समझना, श्रीमुख है।

: २० :

अटति यद् भवानह्नि काननं
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिल - कुन्तलं श्रीमुखं च ते
जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्॥ १५॥

सुरतवर्धनं-शोकनाशनं स्वरित-वेणुना सुष्ठुचुम्बितम्—यह भगवान्के अधरामृतका ऐश्वर्य बताया। भगवान्का जो अमृत है, वह तिजौरीमें बन्द करनेके लिए नहीं होता; अधर शब्दका यह अर्थ है। जैसे किसीको कोई पैसा दे ना; बड़ी कृपा की, पैसा दिया। लेने वालेने लेकर तिजौरीमें रख दिया—कि समय पर काम देगा। ऐसा है ना! इसी तरह एक मिनिस्टर खुश हुआ। बोले—कि अच्छा! मौका पड़ेगा तो हम आपसे काम लेंगे। यह भगवान्की जो कृपा है, यह नित्य निरन्तर बरसती रहती है। उनसे यह कहो—कि कल तुमने कृपा नहीं की, तो यह गलत है। और आज नहीं कर रहे हो, कल करोगे—ऐसा कहोगे, तो वह भी गलत है। इस समय तो भगवान्को कंजूस कहना हुआ ना! इस समय भगवान् कृपा नहीं कर रहे हैं। तो भक्त लोग भगवान्से मिलने वाले अमृतका निरंतर पान करते रहते हैं। तत्तेनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान् स्वात्मकृतं विपाकम्। हम तुम्हारी कृपाको भली भाँति, पूर्ण रूपसे देख रहे हैं। प्यारमें भी कृपा है, दुलारमें भी कृपा है, मारमें भी कृपा है। जब मिलते हो तब भी कृपा है, जब छिप जाते हो, तब भी कृपा है।

अच्छा, यह बात क्यों सुनाई? अधर शब्दसे निकलती है यह। चरणामृतको शीशीमें बन्द कर दो, और रोज-रोज उसमें-से थोड़ा-थोड़ा पी लिया करो। चलेगा कि नहीं? चरणामृत चलेगा ना! लेकिन कहो— कि हम अधरामृत भी शीशीमें बन्द करके रखेंगे, और रोज-रोज पान करेंगे, तो चलेगा? नहीं चलेगा! जो धरनेके काम न आवे, **न धृयते इति अधरः**। स्वर्गमें फल जिसका मिलता है, वह तो धर्म है। उसका फल मिलता है दूसरे देशमें जाने पर, स्वर्गमें। और समाधिमें जिसका फल मिलता है—अन्तर्देशमें जानेपर, वह योग है। तो देखो, योगसे संयोग बड़ा है, और धर्मसे अधर बड़ा है। क्योंकि यह शीशीमें बन्द करके रखनेकी चीज नहीं है, कि इसको पीछेके लिए रखेंगे, इसलिए इसको अधरामृत बोलते हैं, **न धृयते इति अधरं, अधरं च तत् अमृतं, अधरामृतं**।

एक सेठने एक ब्राह्मणको उसकी लड़कीके ब्याहके लिए पैसा दिया; बड़ा प्रेम था उसका उससे। ब्राह्मणने क्या किया—कि आधा पैसा तो ब्याहमें खर्च किया, और आधा रख लिया—कि दूसरे काममें अवेगा। सेठ बड़ा नाराज हुआ, बोला, कि जैसे लड़कीके ब्याहमें तुम्हारे घर रुपया आ गया, ऐसे तुम्हारे घरमें और कोई जरूरत पड़ती तो क्या नहीं आता? हम नहीं दे देते उस समय? तुमने मेरे ऊपर विश्वास नहीं किया कि मैं आगे दूँगा; इसीलिए कलके लिए रखा! तो भगवान्‌का जो प्रेमामृत हमारे ऊपर बरस रहा है, वह यह नहीं समझना—कि कल था, आज नहीं है। यह भी नहीं समझना—कि आज नहीं है, कल होगा। तो जो प्रेमी लोग हैं, जो भक्त लोग हैं, वे हर हालतमें उस अमृतका अनुभव करते हैं। इसलिए भगवत्सम्बन्धी अमृतका नाम अधरामृत होता है, और वह साक्षात् अपरोक्ष होता है। उसकी परोक्ष सत्ता नहीं होती।

किसीने कहा—कि हमारा भगवान्‌से प्रेम कैसे बढ़े? बोले—तुम्हें अगर अधरामृतकी एक बूँद मिल जाय तो तुम्हारा प्रेम बढ़ जायगा। प्रेम बढ़ानेके लिए टोना टोटका करनेकी जरूरत नहीं है। आज एकने हमसे

पूछा था, कि अमुक मंत्र हम जपते हैं (मंत्र तो हमारा ही बताया हुआ था)। कितना जपें, कि भगवान् मिलेगा? गिनती पूछी। तो बाबा, एक मन्त्र जपनेसे भी भगवान् मिल सकते हैं, और पाँच करोड़ जपनेसे भी भगवान् नहीं मिल सकते, क्योंकि भगवान्के मिलनेकी कीमत गिनतियोंमें नहीं है, तुम्हारे दिलके प्रेममें है। एक बार जप करनेमें ही, एक बार पुकारनेमें ही अगर तुम्हारे हृदयका सम्पूर्ण प्रेम लगता है, तो एक बार पुकारनेमें ही मिल जायेगा। और पाँच करोड़ बार पुकारो, और हृदयमें प्रेम न हो, तो नहीं मिलेगा!

एक बात सुनाते हैं। एक सेठके ऊपर कोई मुकदमा चल रहा था। हम ज्यादा करके सच्ची बात सुनाते हैं, कल्पना कम करते हैं। तो बाबाजी के पास गये—महाराज! छूट जायँ मुकदमेमें। उनको अपने घरले आया, लाख रुपयेकी मोटरमें लाया। बड़ा स्वागत-सत्कार किया, खिलाया, पिलाया। थोड़े दिनमें वह मुकद्दमेमें छूट गया। एक अदालतमें जेल हो गयी थी, दूसरी अदालतमें छूट गयी। जब छूट गई, तब महाराजके लिए दस हजार रुपये वाली मोटर पर चढ़ाते थे, लाख रुपये वाली पर नहीं। यह संसारका अनुभव है, ऐसा ही है।

तो यह जो भगवत्कृपा है, यह गिनतियोंमें नहीं मिलती। यह स्वार्थियोंको नहीं मिलती। मरनेको तैयार होता है, उसको मिलती है, उसको जीवन मिलता है। जो कष्ट सहनके लिए तैयार होता है, उसको सुख मिलता है। जो करोड़ कल्पके वियोगमें ईश्वरकी प्रतीक्षाके लिए तैयार रहता है, उसको एक मिनटमें संयोग मिलता है। प्रीतिकी रीति बिलकुल निराली है। सवाल यह है कि प्रेम बढ़े कैसे भगवान्का? बोले—सुरतवर्धनं। नुस्खा तो हमारे पास है। सुरत माने प्रेम, सुरत माने याद। और ये जो मध्यकालके सन्त हैं, उनके यहाँ सुरत शब्द पारिभाषिक है। **सुरत बिरहु लिया खाई निज देस। सुरत समानी निरतमें, निरत समानी पीव।**

तो सुरत माने जीवात्मा, सुरत माने ध्यान, सुरत माने तवज्जोह, सुरत माने ख्याल। भगवान्‌का ध्यान कैसे बढ़े? प्रेम कैसे बढ़े? अपनी सुरत जो है, वह भगवान्‌में कैसे समा जाये? नुस्खा उसका एक ही है, अधरामृत चाहिए। प्रेम कैसे बढ़े? सम्भोगका सुख कैसे बढ़े? बोले—अधरामृत चाहिए। उसके लिए जो ललक है, वही प्रेमको बढ़ाती है। भगवत् प्रेमकी प्राप्तिके लिए ललक होनी चाहिए। **तत्रमूल्यमपि लौल्यमेकलं जन्मकोटि-सुकृतैर्न लभ्यते।**

तुम यह कोशिश मत करो-कि हमारा प्रेम बढ़ जाये। यह कोशिश करो, कि भगवान् मिल जायँ। हम उसके दोनों कन्धों पर हाथ रख दें। वह हमको प्यारसे अपने हृदयसे लगा लें। उसका वह कभी बासी न पड़ने वाला, ताजा-ताजा अमृत, जो उसके पास है—वह हमको प्राप्त हो जाये। उसके लिए जब तुम्हारे हृदयमें ललक बढ़ेगी, चाह बढ़ेगी, व्याकुलता बढ़ेगी, उत्कण्ठा बढ़ेगी—तब तुम्हारे हृदयमें प्रेम अपने आप ही बढ़ जायेगा—**सुरत वर्धनं।**

महाराज! ऐसा धक्का लगा दुनियामें, शॉक, शोक **शोकनाशनं।** यह अपना एक शब्द है 'शोभा', उसके पहले वाला हिस्सा अंग्रेजोंने चुरा लिया। उसका नाम 'शो' हो गया। 'शोभा'में भाव (भा) भी था, बिना भावके 'शो' मात्र रह गया। अब उसी शो को जो काट दे, उसका नाम हो गया 'शोक'। जब चित्तमें शोक आता है, तब मनुष्यका जो सुख है, उत्सव है-वह मिट जाता है। जब तक चित्तमें दुःख रहता है, तब तक प्रफुल्लता नहीं रहती है। और जब तक हृदयमें प्रफुल्लता नहीं आती है, तब तक रस नहीं आता है। तो देखो, ऐसा संसारमें कोई नहीं होता। जिसके मनमें शोक न हो। कोई-न-कोई पीछेकी बात आकर अटक जाती है। आपको हम याद दिलावें अगर, बचपनसे अब तक आपके घरमें कोई दादा-दादी मरे हों, बाप मरे हों, माँ, भाई मरे हो, धन खो गया हो, कभी पिटाई पड़ी हो, कभी बेइज्जती हुई हो! सबका ध्यान बैठकर एक साथ

करने लगो, देखो, चेहरा मुरझा जायेगा। आँखमें आँसू आ जायेंगे। ये औरतें जो रोती हैं समय-समय पर! यह नहीं समझना—कि उसी समयके दुःखको रोती हैं। पचास बरस पहले उनका बाप मरा था, तो उसकी याद करके रो लेती हैं। और बात होती क्या है आज? कि आज तुम रोती क्यों हो? कि आज तुम मीठे मुँह बोले नहीं, इसलिए रोती हैं। रोवेंगी बापके मरनेको याद करके, और कहेंगी—तुम मीठे मुँह बोले नहीं, इसलिए रोती हैं। यह रोनेकी युक्ति होती है। साठ-साठ सत्तर-सत्तर बरसकी माताएँ, जो बहुत अनुभवी हैं, हमको बता देती हैं यह बात, कि अरे भाई! तुम ऐसे कैसे रोने लगती हो? कि हम याद कर लेते हैं उस दिनकी। तो इनके पास रोनेकी भी अक्कल होती है—कि क्या याद करके रोना है।

अच्छा, सुखकी याद करते हो? तो देखो, ब्याहके दिन क्या बात हुई? जनेऊके दिन क्या बात हुई? जब बेटा हुआ था, जब मित्र मिला था, तब क्या बात हुई? जन्मसे लेकर अब तक की कड़ी जोड़ लो, तुरन्त तुम्हारा चित्त खुश हो जायेगा। अपने चित्तको मुरझा देनेकी भी युक्ति होती है, सुखा देनेकी भी युक्ति होती है और आनन्दसे भर देनेकी भी युक्ति होती है। चींटी हर जगह शक्कर लेती है, गुबरौला हर जगह मैल लेता है। मक्खी हर जगहसे मैल लेती है भौंरा हर जगह से फूलका रस लेता है। ये दो तरहके मन ही होते हैं, जो बात-बातमें दुःख ले लें और बात-बातमें सुख ले लें। यह जीवनका रहस्य है, यह ब्रह्मज्ञानकी बात नहीं है। जिनको ब्रह्मज्ञान हुआ, वे जानते हैं कि ब्रह्मज्ञानमें क्या होता है। कुछ खास-खास लोग ही वह जानते हैं। दूसरे लोग तो उसके बारेमें कल्पना करते हैं। लेकिन मैं आपको यह जीवनका रहस्य बताता हूँ, कि यदि आपकी समझमें यह आ जाये कि सुख-दुःख दोनों मनसे ही होती हैं, तो आप अपने मनमें दुःखकी कल्पना करना छोड़ दीजिए। सुखकी कल्पना कीजिए, और आपको सुख-ही-सुख मिलेगा। और

यदि यह समझमें आ गया कि कल्पनामें ही सुख और कल्पना में ही दुःख है, तो आप इतने स्वतन्त्र हैं, कि आपके जीवनमें दुःख कभी आ नहीं सकता।

देखो, यहाँ बैठे हैं, एक सज्जन विपिन भाई। ये बड़े भक्त, भगवान्‌का करें ध्यान, और हम बड़े वेदान्ती अट्ठारह-उन्नीस बरसकी बात है। मैं सन्यसी होकर आया ही था। दण्ड था उस समय मेरे हाथमें। लंगोटी लगाकर गंगा किनारे मौजसे चलता था। कभी शरीर पर चद्दर होवे, कभी नहीं होवे। नया संन्यासी था। नये साधुमें भी बड़ा जोश होता है। जैसे नया-नया ब्याह होता है, तो पति-पत्नीमें बड़ा जोश होता है। वे समझते हैं कि बस, दुनियामें सब मजेका ठेका हमने ले रखा है। ऐसे जब नया-नया साधु होता है। उसको भी बड़ा जोश होता है कि दुनिया भरके वैराग्यका ठेका हमारे पास है। हमने इनको एक दिन समझाया, कि ये जो भगवान्‌के रूप होते हैं, ये सब कल्पित होते हैं। यह थोड़ी देरके बाद आये, बोले—कि हमारी तो एक समस्या हल हो गयी। हम समझते कि जब कभी भगवान् कृपा करें, तब हमको भगवान्‌का ध्यान लगेगा। और इस भरोसे हम बैठे हुए थे। आज तो हमको मालूम हो गया कि हम जब चाहें, तब भगवान्‌का ध्यान लगा सकते हैं। जब जरा गरदन झुकाई, देख ली। तो आदमीको सुखी होनके लिए यह रहस्य जानना है, कि आदमी अगर अपने मनको ठीक कर ले, तो उसको शोक नहीं होगा।

अब देखो, हम मन ठीक करने वाली बात बताते हैं। हमेशा कि लिये शोक मिटानेका यह नुस्खा है। क्या? वह मुरली मनोहर, जो बाँसुरीको अधरामृत पिलाता है, इतना उदार है वह! पशु-पक्षी नहीं, सूखी लकड़ी है वह बाँस की, और उसको अपना अधरामृत पिलाता है। गोपियोंको तो उस बाँसुरी से भी सौतिया डाह होता है, कभी-कभी। भागवतमें वर्णन हैं, गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म रेणु। अरी बहनो!

इस मरी मुँहजली बाँसुरीने क्या कोई तपस्या की है? हमारे हककी जो चीज है, उसको यह पीती जा रही है। कहनेका अभिप्राय यह हुआ— कि अपने मनमें आप श्यामसुन्दरको ले आओ। उरमें सुन्दर श्याम गढ़े। भगवान्‌को लाकर जमा लो अपने हृदयमें। उनके अधरामृतके लिए व्याकुल हो जाओ। और देखो—वह कभी मुस्कुराते हैं, कभी प्रेम भरी चितवनसे देखते हैं। कभी उनके माथे पर गोरोचनका तिलक दिखता है और कभी लटकती हुई लटक दिखती है। कभी उड़ती हुई भौंह दिखती हैं। तो कभी प्रेम बरसाती हुई आँखें दिखती हैं। कभी फड़कते हुए होंठ दिखते हैं। आप परीक्षा कर लो। एक मिनट आप अपने मनको भगवान्‌में लगाकरके देखो। जितनी देर भगवान् आपके हृदयमें रहेगा, भगवानका स्मरण रहेगा, उतनी देर आपके हृदयमें शोक नहीं रहेगा। कितना सुगम हुआ यह। सारे शोक मिट गये। अब प्रेमोल्लासका समय आया। कहनेका अभिप्राय यह है कि अब हृदय-कमलके कुम्हलानेका समय नहीं है, अब हृदय-कमलके खिलनेका समय है—**शोकनाशनं**। और तुम हो कि नहीं आते हो। कहीं छिपे हुए हो। सुरत-सुखको बढ़ाने वाली चीज तुम्हारे पास, शोकको मिटाने वाली चीज तुम्हारे पास। **स्वरित वेणुना सुष्ठु चुम्बितं**। स्वरित वेणुना एक तो वेणु, और एक स्वरित वेणु, इसमें फर्क है ना! बजती हुई वेणु। बजती हुई वेणु होगी तो अधरामृत पीती हुई जरूर होगी। चुम्बितं शब्दका प्रयोग किया। वैसे कृष्ण शब्दका संस्कृतमें अर्थ होता है चुम्बक। काला-काला होता है। चुम्बकको लोहेके बीचमें रख दो, तो लोहेके कण जिसकी ओर खिंच आते हैं, वह होता है चुम्बक। ये पंखे घूमते हैं ना! इनके भीतर चुम्बकीय शक्ति होती है। कृष्ण शब्दका अर्थ होता है कर्षति, आकर्षति। जो अपनी ओर खींचे। जैसे चुम्बक लोहेको अपनी ओर खींच लेता है, इसी प्रकार संसारके जीवोंकी जो मनोवृत्ति है, उसको नाचकर, हँसकर, खेलकर गा-बजाकर, मारकर अपनी ओर खींचते हैं।

कैसे भी लोगोंकी चित्तवृत्तिकी जो अपनी ओर आकृष्ट करे—उसका नाम होता है कृष्ण! कृष्ण माने चुम्बक। अब चुम्बक शब्दका जरा भाव देखो। कैसा बनता है बढ़िया।

यह जो श्रीकृष्ण है, यह विषयानन्दको भी फीका करने वाला, ब्रह्मानन्दको भी फीका करने वाला है। कल सुनाया था आपको, कि विषयानन्दमें विक्षेप बहुत है, और ब्रह्मानन्दमें शान्ति बहुत है। और यह जो वेणुका आनन्द है, यह विषयानन्दके समान विक्षेपक नहीं है और ब्रह्मानन्दके समान शामक नहीं है। तो एकने कल पूछा—कि भला ब्रह्मानन्दको आप शान्तानन्द क्यों बोलते हैं? अरे ब्रह्मानन्द महात्मा दूसरे होते हैं, शान्तानन्द महात्मा दूसरे होते हैं। ये तो दो नाम होते हैं ना दो महात्माओंके। शान्त तो एक अवस्था है, उसके आनन्दको ब्रह्मानन्द क्यों बोलना? ऐसा! तो असलमें ब्रह्मानन्दमें समता होती है। होशमें, बेहोशमें, जागृतमें, सुषुप्तिमें, विक्षेपमें, समाधिमें, जीवनमें, मरणमें—सबमें जो साम्य है। ब्रह्माकार होनेसे अविद्याकी निवृत्ति, और अविद्याकी निवृत्ति होनेसे स्वभावसे ही आनुषंगिक रूपसे साम्यकी वृद्धि हो जाती है। समृद्धिमें भी शान्तानन्द है और विपत्तिमें भी शान्तानन्द है। लेकिन यह जो वंशीका आनन्द है ना वंशीका, यह बड़ी भारी कला है। ईश्वर वंशी बजाता है जो, वह कला है। श्रीमद्भागवतमें आप पढ़ो, युगलगीतमें यह प्रसंग है, **यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरम्भति विश्वम्**। जब भगवान् श्रीकृष्ण आनन्दमें हो खेलते हैं, तो क्या खेलते हैं? कि वंशीकी ध्वनिके द्वारा सम्पूर्ण विश्वका आलिंगन करते हैं। मानों ईश्वर जो है, वह वैसे तो सबके भीतर मौजूद है, उससे नहीं काम चलता, वह मानों बाँसुरीकी ध्वनिके द्वारा सबके रोम-रोममें, सबके रग-रगमें, सबके शरीरमें प्रविष्ट होकरके सबका आलिंगन करता है। तो सर्वके आलिंगन करनेकी यह पद्धति है। **यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरम्भति विश्वम्**—आनन्दमें भरकर जब वेणु बजाता है, तो मानों बाँसुरी ध्वनि द्वारा सम्पूर्ण विश्वका

उपरम्भण करता है, आलिंगन करता है। सबको चूम लेता है, हृदयसे लगा लेता है समूची सृष्टिको। कब? जब वह बाँसुरी बजाता है।

कोई पूछे-कि ईश्वरको क्या पड़ी है कि वह नाचता है, बाँसुरी बजाता है, लोगोंको खींचता है? यह तो ऐसा ही प्रश्न है ना, कि कोई पूछे—ईश्वरको क्या पड़ी है कि उसने अवतार लिया? जिस जीवके मनमें यह प्रश्न उठता है, वह मानों अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मारता है। क्यों? गाँवमें एक कहावत है कि जिसके लिए चोरी करो, वही कहे चोर। जिसकी भलाईके लिए ईश्वर इतनी तकलीफ उठाकर आता है, वही जीव कहने लगे यह बात! जिसकी भलाईके लिए ईश्वर निराकारसे साकार हुआ, निर्गुणसे सगुण हुआ, बैकुण्ठसे धरती पर आया, अपनी गम्भीरता छोड़ करके हँसने लगा, गाने लगा, बजाने लगा, वही कहे—कि ईश्वरको क्या पड़ी है। कि ऐसे आवे! इससे बढ़कर बेवकूफ और कौन होगा, कि ईश्वर ऐसा क्यों करता है। ईश्वर ऐसा यों करता है, कि **इतर राग विस्मारणं**। अगर मनुष्यको केवल अज्ञान होता, और ये संसारके सारे दुःख केवल अज्ञनके कारण ही होते, तो ईश्वर कपिल होकर, व्यास होकर, शुकदेव होकर, गौड़पाद होकर, शंकराचार्य होकर तत्त्वज्ञानका उपदेश कर देता, या श्रुति भगवतीके रूपमें, वेद भगवान्के रूपमें रहकर सबको उपदेश कर देता। और सबका अज्ञान मिट जात। अरे, लोग तो संसारमें रागके कारण दुःखी हैं। ये भिखमंगे हैं, भलेमानुसके रूपमें। कपड़े कितने बढ़िया, बात कितने सुन्दर, कैसा बढ़िया श्रृंगार, कैसे मलूक मलूक लोग। ये कहते हैं—हमारे दिलमें सुख नहीं है। ये कंगाल दूसरेके पास सुख उधार लेनेके लिए जाते हैं। हे प्रीतम! थोड़ी सी बूँद हमको भी दे दो! यह कंगाली हुई ना। इधर-उधर भटक रहे हैं, गरीबोंके पास माँग रहे हैं। ये दुनियाके लोग, जिनको यह ख्याल है—कि हमारे भीतर सुख नहीं है, सुख तो दूसरेसे मिलेगा—वे कहाँ-कहाँ भटकते हैं।

कहते हैं, **गया मरद खाए खटाई।** खट्टी चीज जो बहुत खाता है, उस पुरुषका पुँसत्व चला जाता है। **गई नार जब खाए मिठाई।** मीठी चीजका दुनियामें आग्रह हुआ ना। संसारके लोगोंका ऐसा राग होत है। जब आदत बिगड़ जाती है ना! हमको खानेके लिए चाहिए, हमको पहननेके लिए चाहिए, हमको घूमनेके लिए चाहिए। दूसरोंके सामने हाथ फैलाना पड़ता है। दूसरोंके नीचे आना पड़ता है। संसारमें विषय-भोगका राग है, व्यक्तिका राग है, वस्तुका राग है। रागके चक्करमें जब मनुष्य संसारमें पड़ गया तो गया! उसका ईश्वर छूटा, गुरु छूटा, उपासना छूटी। वह तो इधरसे उधर भिखमंगा होकर, कंगाल होकर घूमेगा। तो भगवान्‌ने देखा—इसको बचाना चाहिए। तो बोले—भाई, इसका राग उधरसे खींचकर, हटाकर अपनी ओर खींचो। यह चुम्बक है। उसका नाम चुम्बक है, जो लोगोंके ध्यानको अपनी ओर खींचे। जो देख रहे हैं उसकी ओर, उनको तो आँखसे भी खींच लेता है। जो बहुत पास पहुँच गये हैं, उनको तो हाथ पकड़ कर भी खींच लेता है। लेकिन जो दूर हैं, अब उनको कैसे खींचे? तो यह जो बांसुरिया है, यह बाँसुरी बजाकर उनको अपनी ओर खींचते हैं।

इतर राग विस्मारणं। इस बाँसुरीके चक्करमें जो पड़ जाता है, उसे फिर इतर-माने बाँसुरी-ध्वनिके सिवाय दूसरी कोई चीज अच्छी नहीं लगती। उद्धवने गोपियोंसे कहा। अरे थोड़ा-थोड़ा ईश्वरका चिन्तन भी कर लिया करो। तो गोपियोंने कहा—

नाहिन रह्यो हिय महं ठौर।

नन्दनन्दन अछत कैसे आनिये उर और॥

यहाँ तो कृष्ण बैठे हैं।

बोले—कृष्णके विरहमें बड़ा दुःख होगा तुमको।

बोलीं—*जित देखौं तित स्याममयी है।*

बोले ईश्वरकी आराधना करो।

बोलीं—कि *मन न भये दस बीस।*

एक हुतो सो गयो स्याम संग, को आराधे ईस॥

कौन ईश्वरकी आराधना करे?

तो **इतरराग विस्मरणं**। यह अपने सिवाय सबको छुड़ा देता है। जिसको महाराज, एक बार इसका स्वाद मिल गया, वह इसको छोड़ नहीं सकता, दूसरेकी याद नहीं कर सकता। विस्मारणं माने **इतरस्य विस्मारणं** और **रागस्य च विस्मारणं**। दूसरा भी भूल जाये, और दूसरेसे कभी कहीं प्रेम था—यह भी भूल जाये। यह विकट है। कभी किसीका किसीसे प्रेम हो जाय, और जो प्रेम हुआ, उस प्रेमको भूलना मुश्किल है। और जो प्रेम हुआ, उस प्रेमको भूलना मुश्किल है। लेकिन यह कहते हैं कि यदि श्रीकृष्णको अधरामृतका स्वाद मिल जाये तो **इतरेषां रागस्य च विस्मारणं** सब भूल जाये। और राग भी भूल जाये।

वितरवीर नस्तेऽधरामृतं। वीर! हमें दो अधर अपना। डरो मत, हम उसको रखेंगे थोड़े ही। उसको सन्दूकमें थोड़े ही बन्द करेंगे! वह तो अधर है, जितना मिलता है उतना ही पिया जाता है। उसमें तृप्ति नहीं होती, उससे वैराग्य नहीं होता। वह कलके लिए रखा नहीं जाता।

ऐसा यह साक्षात् अपरोक्ष आत्मरूप ब्रह्मरूप जो अमृत है ना, **वितर**—हमें दान करो।

आगे बोलते हैं—इतना प्रेम है तुम्हारे चरणोंमें हमारा, कि एक क्षण तुम्हारा दर्शन न हो तो हृदय व्याकुल हो जाता है। और एकक्षणके लिए भी तुम्हारा दर्शन हो तो हृदय प्रसन्न हो जाता है। देखो, रोज-रोजकी बात है। आखिर तुम बनमें गोचारणके लिए जाते तो हो ना। तो उस समय हमारी क्या गति होती है तुम्हारे दर्शन किये बिना!

अटति यद् भवानह्निकाननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृत् दृशाम्॥ १५॥

उदीक्षतां जनानां दृशां पक्ष्मकृत् ब्रह्मा जडः। जिन्हें तुम्हारा दर्शन मिलता है, उनकी आँखोंमें जिसने झपकने वाली पलक लगा दी, वह ब्रह्मा बेवकूफ था—यह इसका अर्थ होता है। जड़ है वह ब्रह्मा, जिसने तुम्हारा दर्शन करने वाली गोपीजनोंकी आँखोंमें गिरने वाली पलक बना दी। देखो, इस श्लोकमें वे अपना देवीपना बताती हैं। विलक्षण है यह श्लोक! हमको-लौकिक स्त्री नहीं समझना—गोपियाँ कहती हैं। वे कहती हैं—देखो, ब्रह्माने यह नियम बनाया कि जो लोग लौकिक वस्तु देखेंगे, उनकी पलक तो झपकेगी, गिरेगी। और जो अलौकिक वस्तु देखेंगे, उनकी पलक झपकेगी नहीं। आपके सामने कोई देवता आवे, तो पहचान लेना—पलक नहीं गिरती देवताकी। क्यों नहीं गिरती? बोले—वह दिव्यको देखता है। तो गोपियाँ कहती हैं—हम भी तो दिव्यको देखती हैं। हमारी पलक क्यों गिरती है? नहीं गिरनी चाहिए। इसलिए हमारी आँखमें जिसने पलक बनाया, उसने गलत बनाया। बोले—बाबा! देवताओंकी तो आयु बड़ी लम्बी होती है। तुम्हारी? बोले—हमारी आयु भी बड़ी लम्बी है। देवताओंकी आयु सुख भोगनेके लिए लम्बी है, और हमारी दुःख भोगनेके लिए लम्बी है। **त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।** हमारी तो एक-एक पलकमें युग बीतता है। रूठके भी तो राधारानी नहीं रह सकती थीं ना! आपने सुना, कि नहीं? ललिताने कहा—कि राधा! तुमको रूठना चाहिए कृष्णसे। बिना रूठे प्रेमका मजा बढ़ता नहीं। उसने कहा—सखी, कैसे रूठें? बोली—सामने आवे तो मुँह फेर लेना। बुलावें, तो बोलना मत। उसने कहा—अच्छी बात है। कृष्ण आये। वह तो उठके मिल गयीं उनसे! प्रेमसे देखने लगीं। ललिताने डाँटा—ऐसे रूठना होता है? हम जैसे कहें, वैसे रूठो। बिलकुल नहीं देखो सामने। वे घूम-घूमके आवें, तो मुँह फेर लिया करो। छूएँ, तो हाथ हटा दो उनका। बुलावें, तो बोला मत करो। तो राधारानीने कहा—कि सखी! कुछ तैयारी करनी पड़ेगी

इसके लिए। कि क्या? कि रुईके दो फाहे लाओ, तो कानमें डालें—कि उनकी आवाज सुनाई न पड़े। और एक चित्र लाओ, जो हम अपने आँचलमें छिपाके रखेंगे। जब उनको नहीं देखना होगा, तब हम भीतर-ही-भीतर वह तसवीर देख लेंगे। वे छूएँ तो हाथ हटालें—तो हाथ तो बांधके रखना पड़ेगा। अगर हाथको बांध लें, आँचलमें तसवीर रख लें और कानमें रुई डाल लें, तब न उनकी ओरसे आँख फेरें! तसवीरको देखें और बुलाने पर उनकी आवाज न सुनें—यह तो तब हो सकता है।

तो महाराज! *इन दुनिया अंखियान को सुख सिरज्यो ही नाहिं।* ये जो श्रीकृष्णके प्रेमी होते हैं, उनकी बात है। अब देखो, यहाँ वृन्दावनको भी एक गाली है। ये प्रेमीलोग जब बोलते हैं, तो बहुत सम्हालके नहीं बोलते हैं, क्योंकि वे तो बुद्धिके अनुसार नहीं चलते हैं। प्रेमी लोग मूडके सेवक होते हैं, बुद्धिके सेवक नहीं होते।

अरति यद्भवान् अह्नि काननं। दिनमें आप पर्यटन करते हैं। देखो, वृन्दावनके लिए कानन शब्दका प्रयोग किया। कानन शब्दका एक अर्थ तो जंगल होता ही है, लेकिन जो संस्कृत जानते हैं, वे जानते हैं कि 'का' शब्द जहाँ लगा—जैसे कापुरुष, तो क्या हो जायगा उसक अर्थ? बुरा आदमी। ऐसे ही आननके साथ जब 'का' जुड़ता है—कानन, तो उसका अर्थ होता है—बुरा हो इसके मुँहका; बुरे मुँह वाला। **अह्नि काननं**—यह वृन्दावन कैसा है? कि इसका मुँह बुरा है। कि क्यों? कि यह अपने मुँहमें हमारे श्यामसुन्दरको ले लेता है। छिप जाते हैं वे। गोष्ठसे निकलते हैं और वृन्दावनकी ओर चलते हैं, तो जबतक बनमें घुसें नहीं, तबतक तो दिखाई पड़ते हैं। और जब बनके मुँहमें घुस जाते हैं, तो दिखाई नहीं पड़ते। तो इसका मुँह बहुत बुरा है, बाबा! **कुतिसतं आननं यस्य तत् काननं।** अथवा इसका दूसरा मतलब देखो—**कं सुखं आननं यस्य**—जिसका मुँह सुख रूप है। जब तक उसके भीतर मत जाओ, तबतक मुँह देखनेमें बड़ा

सुन्दर है। लेकिन जब इसके भीतर घुसो, तो सब कुछ देखना-दिखाना बन्द हो जाता है।

तो यह वृन्दावन! जब श्रीकृष्ण वृन्दावनमें पर्यटन करने जाते हैं, उस समय गोपियाँ अपनी स्थितिका वर्णन करती हैं—**त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्। अस्माकं गोपीजनानां त्रुटि युगायते।** हम लोगोंकी एक-एक पलक युगके बराबर हो जाती है। प्रेमीके हृदयकी सब-से-बड़ी पीड़ा, सब-से-बड़ी कमजोरी यह है—कि वह अपने प्रियतमके बिना रह नहीं सकता। त्रुटि शब्द स्त्रीलिंगमें कभी नहीं होता, नपुंसक और पुँल्लिंग दोनोंमें होता है। पुँल्लिंग करना हो तो **त्रुटिर्युगायते** पाठ है और नपुंसक करना हो तो **त्रुटियुगायते।** वारिमें जैसे विभक्तिका लोप हो जाता है, वैसे त्रुटिमें भी हो जाता है। तो **त्रुटियुगायते त्वामपश्यतां**—दुःखका समय बड़ा लम्बा हो जाता है, और सुखका समय बड़ा छोटा हो जाता है। कोई उत्सव हो, आनन्द हो, संगीत हो, संकीर्तन, प्रवचन हो रहा हो—अरे! समय हो गया! पता ही नहीं चला। और मन न लगता हो महाराज, तब? जैसे किसी श्रोताका मन न लगे और उसे घड़ी देखनी हो—अरे बाप रे! अभी इतना समय बाकी है? तो उसको छिपाके ही देखना चाहिए, घड़ी सामने करके नहीं देखना चाहिए। यह शिष्टाचारके खिलाफ है। कथा सुननेका जो एटिकेट है ना, उसमें बार-बार बीचमें घड़ी देखना नहीं है। अरे भाई! तुम सब काममें जाते हो, क्लबमें जाते हो, दोस्तके साथ जाते हो, तो उसमें एक एटिकेट रखते हो ना! एटिकेट, इतिकृत्य बोलते हैं इसको संस्कृतमें। तो जब मनुष्यका मन लगा होता है तो रात कैसे बीत गयी—इसका पता ही नहीं चलता है। और जब आदमी दुःखमें होता है—कोई मर गया हो और उसके पास बैठना पड़े रात को; छह महीनेकी रात हो जाती है। असलमें रात बड़ी नहीं होती, और रात छोटी नहीं होती। मन ही रातको लम्बी करके बताता है और मनही रातको छोटी करके बताता है।

जो बिछुड़े हैं पियारेसे, भटकते दर-बदर फिरते।
हमारा यार है हममें, अमनको बेकरारी क्या।
अमन को इन्तजारी क्या॥

और वियोगमें एक-एक पलक कलपके बराबर हो रही है।

तो ***कुटिल कुन्तलं श्रीमुखं च ते।*** मुँह पर तो बड़ी शोभा है। जैसी मुखारविन्द पर है, वैसी हृदयमें भी तो होनी चाहिए। और यदि हृदयमें भी इतनी शोभा है, तो अनतर्धान क्यों हुए? ऐसा लगता है कि मुँहकी शोभासे यह सब मेल नहीं खाता है, कि तुम हम लोगोंको छोड़कर छिप जाओ। हम समझ गये। ये तुम्हारे सिर पर जो बाल हैं, बड़े कुटिल हैं। बालका बांका होना, टेढ़ा होना—क्या बोलते हैं उसको? घुँघराले होना शोभाकी बात है—**कुटिल कुन्तलं,** लेकिन यह बालोंमें जो बांकपन है, उसने मुँहकी तो बढ़ाई शोभा, लेकिन दिलको कर दिया टेढ़ा। कुटिल कर दिया। इतने सुन्दर तुम, तुम्हारा मुख, तुम्हारी शोभा! और तुम्हारे दिलमें इतनी कुटिलता!

तो **जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दशाम्।** बोले—देखा! हम अपना सबसे बड़ा हितैषी किसको मानेंगे? हम देख रहे हैं श्यामसुन्दरको, देखनेमें तन्मय हो जावें—कि कोई कैंची लेकर आवे और हमारी पलकोंको काटके ले जावे। **पक्ष्मकृद्—पक्ष्माणि कृतन्ति इति पक्ष्मकृद्। कृति कृन्तने, कृन्तति,**—ऐसा रूप बनता है। **त्रिशां पक्ष्मकृद् अजडः। अजड उदीक्षताः पक्ष्मकृद् दशां।** अजड कर दिया। तुम्हारे दर्शनमें बाधा डालने वाली ये जो पलकें हैं, इनको जिस समय हम तुमको देख रही हों, उस समय जो काटके ले जायँ, वह हमारा सबसे बड़ा हितैषी है। भले हम कुरूप हो जाय, हमारी सुन्दरता चली जाय। हमको अपनी सुन्दरताकी परवा नहीं है, अपनी पीड़ाकी परवा नहीं है। हम तो देखना चाहती हैं निरन्तर, निरन्तर अपने प्राणप्यारे श्यामसुन्दरको। **कुटिल कुन्तलं श्रीमुखं च ते।** भगवान्‌का सुन्दर मुख!

वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्री
गण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम्।

वर्णन करते हैं मुखारविन्दका। **अलकावृतं मुखं**। अलकें चारों ओरसे ललाट पर लटकी हुई हैं। कानोमें कुण्डलकी जो शोभा है, वह कपोल पर जगमग-जगमग करती है। आँखोंमें मीन नाच रहे हैं और अधरोंकी सुधा छलक-छलककर कपोलों पर जा रही है। मुखारविन्दमें हँसी है, चितवनमें प्रेम है। इसको हमने देखा। देखा, और देखते ही रह गयीं। ऐसे तुम, हमें छोड़कर जाते हो वनमें। जरा हमारी ओर भी तो देखो। सब कुछ छोड़ करके तो हम तुम्हारे पास आयी हैं; सिर्फ तुम्हारा दर्शन करनेके लिए। और तुम यहाँ वनमें अर्न्तधान हो गये। तो **दयित दृश्यताम्**! प्यारे श्यामसुन्दर! दीख जाओ, प्रकट हो जाओ हमारी आँखोंके सामने।

: २१ :

अटति यद् भवान् अह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।
कुटिल कुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्॥ १५॥

दो बातें ध्यानमें रखकरके यह गीत कहा गया है। आपके विरहमें आपका दर्शन न होने पर हमको बड़ी भारी पीड़ा होती है। और जब मिलन होता है तो दर्शनमें इतना आनन्द होता है, इतना आनन्द होता है कि पलकें गिरनेका नाम नहीं लेतीं।

प्रेमशास्त्र पोथी पर नहीं लिखा जाता। यह लोगोंके हृदयमें लिखा रहता है। जब किसीके हृदयमें यह प्रेम उदय होता है, तब वह अपने आप बाहर निकलता है। कहते हैं, कि संसारमें जब प्रेम होता है, तो पहले आँखमें-से निकलता है—**चक्षुरागः प्रथमः**। पहले आँखमें रंग चढ़ता है, फिर वाणीमें आता है, कानमें आता है, त्वचामें आता है। यह रागका जो रंग है, वह अंग-अंगमें व्याप्त होता है, लेकिन यह अपना पहला जो पाँव जमाता है, वह आँखमें ही। **नयनं प्रीति प्रथमं**। शास्त्रमें ऐसा वर्णन आता है। धन्य है वह, जिसकी आँख दुनियाके और किसी रूपमें आसक्त न हो। मुरलीमनोहर पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर नन्दनन्दन, व्रजराजकुमार श्रीकृष्णकी रूपमाधुरीमें जिसकी आँखें फँस जायँ—वही धन्य है। उसीका जीवन सफल है।

अब ये गोपियाँ जो यहाँ बोल रही हैं, ये उनके हृदयके उद्गार हैं। उद्गार शब्दका अर्थ संस्कृतमें देखो—क्या है। कभी भोजन खानेके बाद डकार आती है? मूली खा लो, तो डकार आती है। तो जैसा खाते हैं,

वैसी डकार आती है। तो उद्गार माने होता है डकार लेना। यह जो प्रेमका संगीत है, यह क्या है? जिसके हृदयमें प्रेम भर गया, उसके हृदयमें-से डकार निकली, उद्गार निकला। और वह उद्गार जीभ पर आकर गाना बन गया। यह जो गोपियोंका गीत है, यह प्रेमका उद्गार है। और प्रेम यदि हमेशा सुख ही सुख रहे, तो उसका महत्त्व क्या है—यह मालूम नहीं पड़े। एक दिन सारसने कहा—अरे ओ चकई! तुमको प्रेमका क्या पता? रात भर विरहमें घुलती रहती हो। तो चक्रवाकी बोली—अरे ओ सारसी! तुमको प्रेमका पता नहीं। तुमने तो कभी विरह देखा ही नहीं—कि कैसा होता है। विरह होने पर संयोगका सुख मालूम पड़ता है, कि अपने प्रियतमके लिए कितने कष्ट झेलकर हम आगे बढ़े हैं। संयोगके समय विरहके जो दुःख हैं, वे बहादुरीके संस्मरण हो जाते हैं—हमने ये-ये कठिनाइयाँ उनके लिए झेली हैं, यह-यह तपस्या की है, यह-यह त्याग किया है। और जिसको प्रेममें तकलीफ नहीं उठानी पड़ती, तपस्या नहीं करनी पड़ती—उसका तो क्या पता—कि जब तकलीफ पड़ेगी, तब उसको प्रेम रहेगा भी, कि मिट जायगा? क्या परीक्षा है उसकी? क्या प्रमाण है? तो प्रेम कभी संयोगके रूपमें आता है—हँसाता है, सुख देता है; और कभी वियोगके रूपमें आता है—दुःख देता है, तपाता है। प्रेमीको खरा सोना, कंचन बना देता है। सोना जितना जलाया जाता है, उतनी उसमें-से मैल निकल जाती है। जितना पीटा जाता है, चमक जाता है। वह। बिना गलाए और बिना पीटे सोना कुन्दन नहीं होता। इसी प्रकार मनुष्यका हृदय भी जबतक शुद्ध रसायन, प्रेम नहीं बनता, जबतक वह विरहकी आगमें पकाया नहीं जाता। यह प्रीतिकी रीति है।

अब ये गोपियाँ जो हैं, ये प्रेमकी ध्वजा, प्रेमका झंडा हैं। प्रेमके झंडेको ऊँचा रखती हैं; झंडा ऊँचा रहे हमारा।

अटति यद् भवान् अह्नि काननं
त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्।

ये कहते हैं कि आप जब दिनके समय जंगलमें पर्यटन करते हैं, जान बूझकर, शौकसे घूमते हैं, उस समय आँखकी एक-एक पलक, एक-एक त्रुटि तुम्हारे दर्शनके बिना हम लोगोंके लिए युगके बराबर हो जाती है।

पलक कलप सम जात।

ये कहती हैं—जब आप दिनमें भी घूमने जाते हैं, तब तो हमारी यह दशा होती है, तो रातमें चले गये हो, तो इस समयकी तो पीड़ाका ठिकाना ही क्या! इस समय जो अपनी पीड़ा है, उसकी गम्भीरताको बताती हैं। यह तो है एक बात! **अह्नि** शब्दमें यह ध्वनि है, यह व्यंग्य है—कि जब दिनमें भी चले जाते हो, तब हमें बड़ा कष्ट होता है, और रातमें चले गये हो तो उसका तो क्या बतावें?

अटतिमें भी व्यंग्य है। लोग कश्मीर घूमनेके लिए जाते हैं। वह पर्यटन हुआ। कहाँ गये? कि कश्मीर पर्यटन करने गये हैं—बड़े शौकसे, सज धजके, तैयारी करके। आप इस समय वनकी अंधियारीमें शौकसे पर्यटन करनेके लिए तो कोई गये नहीं हो। हम लोगोंसे नाराज होकर, जोशमें आकर चले गये हो। तो अगर खुश होकर दिनमें जैसे गाय चरानेके लिए जाते हो, तो शायद इतनी चिन्ता न होती। और इस समय तो नाराज होकर, रूठके, और दिनमें नहीं—रातमें, और जहाँ वृक्षोंकी घनी छाया है, लताएँ हैं, काँटे हैं, कुश है, अंकुर है—वहाँ रातमें घूम रहे हो। यह शौकसे घूमना नहीं है, यह तो नाराजगीका घूमना है। तो इस समय बड़ा दुःख है। दिनमें तो वनकी हरियालीकी अलग छटा होती है। रातमें कौनसी हरियाली दिखती है? दिनमें फूल खिले हुए होते हैं, हरिन छलांग भरते हैं, पक्षी बोलते हैं। वन देखने योग्य होता है दिनमें। तो कभी चले जाते हो, तो भले हमको दुःख न हो उस समय, लेकिन अब रातमें तो तुम अन्धकारके मुखमें चले गये हो—**काननं**। बड़ा बुरा है यह वन। वैसे अगर गोपीकी बोलीमें बोलना

हो तो 'बुरा हो इस वनका'—ऐसे बोलना पड़ेगा। लेकिन यह तो; वृन्दावनके लिए अब कैसे बोलें?

विपिनराज सीमा के बाहर हरिहूँ को न निहार।
रे मन वृन्दा विपिन निहार।

वहाँके भक्त कहते हैं—कि अरे मेरे प्यारे मन! तू वृन्दावनका दर्शन कर।

यद्यपि मिले कोटि चिन्तामनि तऊ न हाथ पसार।

करोड़ चिन्तामणि कहीं मिलती हों, तो हाथ अपना मत पसार। विपिनराजकी सीमाके बाहर कृष्णका भी दर्शन मत करो। दर्शन करो तो वृन्दावनके भीतर। अब इस वृन्दावनके लिए कैसे कहें? लेकिन काननं-कुत्सितं आननं यस्य! मुँह तो इसका बड़ा बुरा है। छिपा लेता है भगवान्‌को। हमारे लिए तो अच्छा कौन और बुरा कौन कि जो हमारे प्यारेका दर्शन करावे—सो अच्छा। जो हमारे प्यारेके दर्शनमें बाधा डाले—सो बुरा। हमारी अच्छाई-बुराईकी परिभाषा कोई भारतीय संविधानकी धारामें-से तो निकालनी नहीं है। किसी वेदकी ऋचामें-से नहीं निकालनी है। हमें तो अच्छाई-बुराई इस दृष्टिसे निकालनी है, कि हमारा जो प्राणप्यारा है, हमारा जो हृदयेश्वर है, उसके मिलनेमें यह मददगार है कि बाधक है। तो दिनमें यह वन छिपा लेता है, बाधक है। इसलिए कानन है। श्रीकृष्णके विरहमें हमारी क्या दशा होती है? कि **त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम्**। पल युगके समान बीतता है। विरहमें क्या होता है? मिलनमें क्या होता है?

पीडाभिः नवकालकूटकटुता गर्वस्य निर्वासनः
निस्यन्देन मुदां सुधा मधुरिमाहंकार-सङ्कोचनः।
प्रेमा सुन्दरी नन्दनन्दनपरो जागर्ति यस्यान्तरे
ज्ञायन्ते स्फुटमस्य-वक्रमधुराः तेनैव विक्रान्तयः॥

यह श्रीकृष्णका प्रेम, नन्दनन्दनका प्रेम जिसके हृदयमें जागता है,

पीडाभिः—ऐसी पीड़ा होती है, कभी-कभी ऐसा दर्द होता है, कि मान लो—समुद्र-मन्थन हुआ हो और उसमेंसे ताजा ताजा विष निकला हो। तो उसमें जितनी तीक्ष्णता होगी, वह श्रीकृष्णके प्रेममें होने वाली पीड़ाके सामने फीकी पड़ जाती है। और निस्यन्देन मुदां सुधा मधुरिमाहंकार-सङ्कोचनः—कभी-कभी ऐसा आनन्द उछलता है, छलकता है आनन्द—कि अमृतकी जो मिठास है उस मिठासका अहंकार चूर हो जाता है। श्रीकृष्णके प्रेमके मिठासके सामने अमृतमें क्या मिठास रखी है? तो प्रेमासुन्दरी नन्दनन्दनपरो जागर्ति यस्यान्तरे—जिसके हृदयमें नन्दनन्दन-परक प्रेम उदय होता है, ज्ञायन्ते स्फुटमस्य वक्रमधुरा, तेनैव विक्रान्तयः—प्रेमकी जो विक्रान्ति है; विक्रान्ति माने पद-विन्यास; जो प्रेम हमारे हृदयमें आकर चहलकदमी करने लगता है, उसका एक-एक पाँव कैसे पड़ता है? बोले—वक्रमधुराः—कुछ कुछ टेढ़ा, लेकिन बहुत मीठा। प्रेमके जो चरणचिन्ह हैं, वे कैसे? प्रेमकी जो चाल है, वह कैसी है? बोले—वक्रमधुराः। चलता तो है टेढ़ा-टेढ़ा। यह बनारसका लंगड़ा आम है। बनारसका लंगड़ा भी बम्बईके हापुजसे अच्छा! यह प्रेम क्या है लंगड़ा है लंगड़ा! बनारसी लंगड़ा। तो लंगड़ा कहनेका अभिप्राय क्या है? कि वक्रमधुराः। वह कुछ बनता हुआ चलता है, स्वाभाविक चालमें नहीं चलता है। कभी बायें चलता है, कभी दायें चलता है। कभी हँसके चलता हैं, कभी रोकर चलता है। कभी पीछे लौटता है, कभी आगे बढ़ जाता है। यह प्रेमकी चाल निराली है। सहेली-सहेलर बोलते हैं अपने पूरबमें। प्रेम-रसकी प्याली कभी भरती भी नहीं—माने कभी उसमें बस नहीं होता, और कभी वह खाली भी नहीं होती।

आली! रस की रीति निराली होय।
प्याली भरे न खाली होय।
प्रेम की चाल निराली होय॥

तो वक्रमधुराः। कभी टेढ़ा होकर गड़ जाता है, और कभी सीधा

होकर दुलार करता है। सोनेको खूब तपा लो। देखनेमें खूब चमचम चमक रहा है, झिलमिल झिलमिल—लेकिन गला हुआ सोना आँख ही से देखनेमें अच्छा होता है। अगर उसको कोई पीनेकी कोशिश करे, तो क्या होगा? जीभ जल जाय, मुँह जल जाय, गला जल जाय, दिल जल जाय। यह जो प्रेममें विरह होता है, वह तपाये हुए, गलाये हुए सोनेके समान होता है, और प्रेमी लोग आनन्दमें भर कर उसको पीते हैं। अगर दर्दकी परवाह करनी थी तो प्रेमके रास्ते पर चले क्यों?

बचपनमें पढ़ते थे, कि प्रेममें जब दर्द होता है, तो उसकी दवा नहीं की जाती, क्योंकि उस दर्दमें इतनी मिठास होती है कि प्रेमी लोग उस दर्दको नहीं छोड़ना चाहते।

तेरी याद ने दिल में जो दर्द दिया,
तो कुछ ऐसा मजा मैंने उसका लिया।
न करूँ, न करूँ, न करूँ मैं दवा,
मैंने खाई है अब तो दवा की कसम॥

मैंने कसम खा ली है, दवा नहीं करूँगा—चाहे जितना दर्द होवे। चाहे दिल फट जावे, लेकिन दवा खाने वाला नहीं। श्रीरूपगोस्वामीजी महाराजने भक्ति रसामृत-सिन्धुमें एक श्लोक लिखा है। बोले—प्रेममें सुख कैसा? उन्होंने कहा—कि अब तक संसारमें अर्थसे, धर्मसे, भोगसे, मोक्षसे जितना सुख हुआ है, और ब्रह्मासे लेकर चींटी तकके सब जीवोंको धर्म, अर्थ, काम, मोक्षसे जितना सुख हुआ है पीछे, इस समय जितना हो रहा है और आगे जितना होगा—वह सब समेट करके अगर तराजूके एक पलड़े पर रख दिया जाय, और दूसरी ओर प्रेममें जो दर्द, जो पीड़ा होती है—उस दुःखके लेशमात्रमें जो सुख है—उस सुखको रख दिया जाय, तो प्रेमसे होने वाली पीड़ाके लेश मात्र दुःखमें जो सुख है, उस सुखकी बराबरी त्रैकालिक भोग-सुख और मोक्ष-सुख कोई नहीं कर सकते। प्रेमकी पीड़ामें भी इतना सुख है कि संसारमें उसकी बराबरी

करने वाला कोई नहीं। क्यों? कि प्रेम ईश्वरको नचाता है। सारी दुनियाको नचावे ईश्वर, और ईश्वरको नचावे प्रेम।

तो भाई! यह प्रेमकी गली है!

प्रेम गली अति सांकरी।
तेरी गली में आके खोये गये हैं दोनों।
दिल तुमको ढूँढता है, मैं दिल को ढूँढता हूँ॥

तो यह प्रेमकी रीति निराली है। जिस समय तुम हमारी आँखोंके सामने नहीं होते, तो एक-एक पलक कलपके समान बीतती है। तो जब तुम्हारा मुख देखते हैं, तब?

कुटिल - कुन्तलं श्रीमुखं च ते
जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशम्॥

तो अब एक शर्त है। पहली बात तो यह है कि हो मुख तुम्हारा, दूसरेका नहीं। कई लोग तो ऐसे होते हैं कि किसीका भी मुँह देखकर खुश हो जाते हैं। वे तो समदर्शी हैं, ज्ञानी लोग हैं। ज्ञानियोंको तो अपनी आत्मा हर रूपमें नजर आती है। महात्मा लोग कहते हैं—मेरी प्यारी आत्माओं! ऐसा बोलते हैं। हम बड़े-बड़े वेदान्त सम्मेलनोंमें सम्बोधन सुनते हैं! वे तो ज्ञानी लोग हैं भाई! उनके लिए सब आत्मा प्यारी है, एक ओर है प्रेमी वह है, जिसको अपने प्रियतमके मुख-चन्द्रके सिवाय दूसरा कुछ भाता ही नहीं।

बावरी वे अखियाँ जरि जायँ
जो साँवरि छाँड़ि निहारति गोरो।

जब श्यामसुन्दरके मुखारविन्दका दर्शन करते हैं, **कुटिल कुन्तलं श्रीमुखं च ते।** श्यामसुन्दरका श्रीमुख हो। और कुटिल कुन्तल, घुँघराले बाल। बालोंकी शोभा बहुत है। श्रीकृष्णके बालोंका तो ऐसा वर्णन आता है। संगीन आप जानते हैं? बन्दूक होती है। उसके सिरे पर एक पतला-पतला सा शस्त्र लगाते हैं। जब दूरकी मार नहीं करनी होती है, जब

दुश्मन बिलकुल पास आ जाता है, तो बन्दूकके सिरे पर जो संगीन लगा होता है, उसीसे कलेजेको छेद देते हैं। उसको संस्कृत भाषामें कुन्त कहते हैं। बहुत पतला होता है और सीधे कलेजेमें छेद करनेके लिए होता है। सिरके बालोंको भी संस्कृतमें कुन्तल कहते हैं। महीन-महीन होवें। आप लोगोंको मालूम हो, कि न हो—सूअरके बाल बहुत मोटे-मोटे होते हैं। महीन बाल, उनकी तारीफ है। बाल महीन होवे। घना हो, स्वभावसे घुंघराला हो, काला हो। किसी शक्लमें होंवे, कभी चिकनाई बाहरसे लगावें, कभी नहीं लगावें। कभी कटवा देते हैं, कभी इकट्ठा करके बांध देते हैं। तो उनकी शकल-सूरत तो अलग-अलग बनती है। तो श्रीकृष्णके बाल भी तरह-तरहसे रहते हैं। उनका भी वर्णन है। कभी बीचमें-से ही दो हिस्सोमें कर देते हैं, कभी बगलमें-से करते हैं। कभी ललाट पर लटकते हैं, कभी कपोल पर आते हैं। विचित्र हैं; कभी देखना, ध्यान करो। बालोंके बहाने भगवान्का ध्यान हो जायगा।

तो यह क्या बात है?

बात इसमें यह है, कि कोई सांवरा आदमी आपने कभी देखा है कि नहीं? देखा है? अच्छा, लोगोंके बाल देखे हैं कि नहीं देखे हैं? तो आँख बन्द करो। आपके मनमें एक पन्द्रह-सोलह सालका बालक, जिसके *उठत कछुक मुख रेख*—नाकके नीचे होठों पर कुछ काली-काली लकीरें उठ रही हैं। उसके ललाट पर, या कपोल पर घुँघराले बाल थोड़े-थोड़े लटक आये हैं।

तो बोले—कि हाँ! यह बात तो आँख बन्द करने पर ध्यानमें आती है। देखी हुई है।

तो अब इसमें ईश्वर भावका आधान करो। और वैसे कहो, कि अगर बिलकुल अनदेखी चीजका आपको कभी ध्यान बताया जाय, तो नहीं होगा वह। यहाँ अगर कोई ध्यान करने वाले लोग हों, तो हम उनसे पूछ सकते हैं—कि जब आप ध्यान करने लगते हैं तो कृष्णका हाथ जरा

लम्बा होता चला जाता है क्या? कुछ पतला हो जाता हैं? कभी उंगलियाँ बढ़ जाती हैं?

अच्छा, एक बात बताओ। कैसे ध्यान करते हो? कृष्ण तुम्हारे सामने खड़े होकर तुम्हारी ओर देख रहे हैं, कि जिधर तुम्हारा मुँह हैं, उधर ही कृष्णका भी मुँह है? तुम्हारे हृदयमें, समझो—एक कमल है, और कमल पर कृष्ण हैं। तो तुम्हारी ओर मुँह करके खड़े हैं, कि जिधर तुम देख रहे हो, उधर मुँह करके खड़े हैं? अब सीखोगे नहीं, तो कैसे ध्यान करोगे? कि नहीं जी। हम तो करते हैं वह तुमको कैसे दिखेंगे? तुमको अपना मुँह शीशेमें दिखता है, तो कृष्णका मुँह देखनेके लिए भी एक शीशा सामने रखो, उसीमें देखो फिर! अगर दो आदमी खड़े होकर एक ओर देखेंगे, तो शीशेमें ही मुँह दिखेगा। अपना मुँह वैसे तो दिखेगा नहीं। कि भाई! सामने खड़े हैं। तो तुम्हारे सामने खड़े हैं, तो कितनी दूर पर खड़े हैं? उनके बाल कैसे हैं? उनकी आँख कैसी हैं? उनके दाँत कैसे हैं? होंठ कैसे हैं? कपोल कैसे है? सारी बात जाननी पड़ेगी।

तो **कुटिल कुन्तलं श्रीमुखं च ते**। यह मुख जो है, चन्द्रमाके समान है। और ये जो काले बाल हैं, ये रसवर्षी बादलके समान हैं। जीवनकी वर्षा कर रहे हैं ये काले-काले केश। और अमृतकी वर्षा कर रहा है वह मुख-चन्द्र। अब ऐसे कृष्णको देखने लगे, तो हमारी आँखोंके सामने पलकें आ गयीं। हाय हाय ब्रह्मा! तुमको इतना भी नहीं मालूम था? प्रेमी अपने प्रियतम श्रीकृष्णका मुख-चन्द्र देखेगा, तो उस समय पलकें गिरेंगी, तो बाधा पड़ेगी। देखो! श्रीकृष्णके दर्शनमें जो बाधा डाले, उसको क्या कहोगे? बाधा तो डालती हैं पलकें, परन्तु पलकोंको बनाया कृष्णने। अरे, जिसकी बेटी या बेटा भगवान्‌के दर्शनमें बाधा डाले, उसको भी धिक्कार है। **जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद् दृशाम्**। बोले—ऐसे बेटा-बेटीका क्या करना, जो कृष्णके दर्शनमें बाधा डाले!

अब आगे देखो! गोपियाँ यह बात कह रही हैं, कि हम त्याग करके

आयी हैं। और हम जानकार हैं, और हम मोहित हैं। और तुम जो हमारे साथ बर्ताव कर रहे हो यहाँ वनमें, वह अन्याय है।

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवा-
नति विलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः।
गतिविदस्तवोद्गीत - मोहिताः
कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि॥ १६॥

कृष्णके लिए गोपियोंके द्वारा खास रूपसे प्रयुक्त किया हुआ शब्द है 'कितव'। मैंने देखा कोशोंमें, धूर्तका पर्याय है कितव। कई तरहसे इस शब्दकी व्युत्पत्ति दी हुई है। उद्धवजीके लिए मधुप कितवबन्धो—तुम कपटीके मित्र हो, कृष्ण कपटी हैं—कहा गया है। तो कपटीका मित्र कौन होगा? वह भी कपटी ही होगा ना! भौंरेके लिए भी 'कितवबन्धो' शब्दका प्रयोग है और उद्धवजीके लिए भी है। कृष्णके लिए 'कितव' शब्दका प्रयोग है। तो जीवगोस्वामीजीने कितव शब्दका बड़ा सुन्दर अर्थ किया। संस्कृतमें कई शब्द ऐसे होते हैं, जो अपने आपमें पद भी होते हैं और वाक्य भी होते हैं। तो बोले—कोई आदमी कोई बहुत बढ़िया कलम लिये हुए है। सामनेसे कोई आया। उसमें कहा—जी, आपकी कलम तो बहुत अच्छी है। देखनेके लिए ले ली। अब जिसकी कलम थी, उसने थोड़ी देरके बाद कहा, कि अब हम चलते हैं। अभी कलम आप रखेंगे? तो उनसे कहा—किं तव? क्या यह कलम तुम्हारी है? अब यह कौन हुआ? बोले—ठग लिया गया। यह ठग है, और उसने तुम्हारी कलमको हथिया लिया। तो उसका नाम होगा कितव। तो यह कृष्ण क्या करता है? पहले तो नाचकर, गाकर, बजाकर, हंसकर लोगोंका दिल अपनी मुट्ठीमें कर लेता है। और कोई पूछे—कि महाराज, अब बहुत देर हो गयी, जरा वापिस करो, तो पूछेंगे—किं तव? यह क्या तुम्हारा है? अरे, मैं तो अपना समझता था। तो यह बात कहाँसे चली? यह कितव शब्दका इतिहास क्या है? जब

श्रीकृष्ण माखन-चोरीके लिए गोपियोंके घर जाते थे, तो कभी-कभी गोपियाँ आ जाती थीं, और कहतीं—कहो लाला, कैसे? आज पकड़े गये। कि क्या है गोपी? क्या पकड़े गये? बोली—अरे, चोरी करने आये हो न माखनकी हमारे घरमें? बोले—**किं तव गृहं**? अरे गोपी, मैंने तो पहचाना नहीं। क्या यह तेरा घर है? मैंने तो अपना समझा था, अपना समझके आया था। तो इसका नाम हुआ **किं तव**—यह कपटी है। अब घरमें-से माखनमें-से शुरू हुआ और दिल तक पहुँच गया।

तो गोपियाँ कहती हैं—अरे ओ धूर्त! अरे ओ कपटी! भगवान् ऐसा नाम सुनते हैं तो बहुत खुश होते हैं। खुश क्यों होते हैं? कि इसमें एक असलियत ऐसी है, कि वेदान्ती लोग—सामान्य रूपसे जो निराकारी हों, निर्गुणी हों और वे कपटी नाम सुनेंगे, कितव नाम सुनेंगे, तो उनकी नाक-भौं कभी टेढ़ी भी हो सकती है। लेकिन जब वे कहते हैं मायापति, तो माया शब्दका जो अर्थ होता है, वही तो कपट शब्दका अर्थ होता है! परमात्मा जैसा है, वैसा कहाँ अपनेको जाहिर कर रहा है! छिपा रहा है! यही जो माया है, इसीका नाम तो कपट है। इसीका नाम कुहक है। कुहक शब्द भी तो पहले आया है। कुहक है, कितव है, कपट है, धूर्तराज, धूर्त-शिरोमणि—ऐसे भगवान्‌के नाम हैं। बोलते हैं—**मा यात पान्थाः पथि भीमरथ्याः**—अरे ओ बटोहियों! राहियों! पथिकों! भीमरथी नदीकी ओर कभी मत जाना। बोले—क्यों? कि **किशोरकः कोऽपि तमालनीलः**—वहाँ एक जवान आदमी रहता है। वह कैसा है? कि काला-काला है बिलकुल, तमाल वृक्षके समान। उसकी तारीफ क्या है? कि **विन्यस्तहस्तोऽपि नितम्बबिम्बे**—वह अपनी कमर पर तो दोनों हाथ रखता है। इतना धूर्त है वह, ऐसा नंगा; उसके पास तो कुछ है नहीं। खुद तो नंगा है, निरावरण हैं और बड़ा धूर्त है। हाथ तो लगाता नहीं, और चित्त रूपी जो धन है, उसको चुरा लेता है, **धूर्तः समाकर्षति चित्तवित्तम्**। उसके पास कोई ऐसा जादू है,

ऐसा टोना है—कि वह हाथसे नहीं खींचता, केवल अपनी आँखोंसे ही दिलकी जो पूँजी है, उसको हर लेता है। बड़ा धूर्त है। सावधान भाई! उस रास्ते नहीं चलना। अगर यही तुम्हारी इच्छा हो कि हमारा दिल वह छीन ले, अगर तुम लुटवानेको ही तैयार हो, तब उस रास्तेसे जाना, नहीं तो अभी तक ऐसा कोई राही नहीं निकला वहाँसे, जिसको उसने लूटा न हो।

तो ये गोपियाँ कहती हैं, कि हम सब कुछ छोड़कर आयी हैं। अपने मुँहसे अपने त्यागकी बात कहना—कि हमने तुम्हारे लिए यह किया है, हमने तुम्हारे लिए यह किया है! अहसानसे तो इतना दबा दिया। सिर पर तो पहाड़ रख दिया। और फिर कहती हैं—प्रेम करो। यह कोई प्रेम करानेका रास्ता है? बोले—कि भाई! अभी हम भारसे दबे जा रहे हैं। थोड़ा उतारो इसको। हमारे लिए यह सब मत करो। फिर गोपियाँ क्यों अपने त्यागकी दुहाई देती हैं? वह भी एक बात समझनेकी है। वे तो कहती हैं—भाई, बात ऐसे ढंगसे करो कि कैसे भी कृष्ण आवें। तो उसको बुलानेमें तुम्हारा क्या तात्पर्य है? अपनी आँखोंको रस देना चाहती हो? कि न! न! वह जो रातमें जंगलमें भटक रहा है, हमको छोड़ करके स्वयं दुःखी हो रहा है, उसका दुःख दूर करनेके लिए अगर हमको थोड़ा अभिमान भी करना पड़े—कि हमने तुम्हारे लिए बड़ा त्याग किया है, हम बड़ी त्यागिनी हैं, तो वह जरूर सोचेगा कि ऐसी गोपियोंको नहीं छोड़ना चाहिए। और हमारे सामने आ जायेगा। यह भी बुलानेका एक चतुराईसे भरा हुआ ढंग है। एक यह भी प्रीतिकी रीति है। वे कृष्णसे कहती हैं—देखो, हमने तुम्हारे लिए इतना छोड़ा। और तुम नहीं आते! **पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः।** बड़े-बड़े महात्मा लोग बड़ा भारी त्याग करके परमात्माको प्राप्त करते हैं। **त्यागेन एके अमृतत्वं आनतुः**—वेद भगवान् कहते हैं कि परमात्मा त्यागसे मिलता है। **न कर्मणा न प्रजया धनेन**—कर्म करनेसे परमात्मा नहीं

मिलता। धनेन—पैंसेसे परमात्मा नहीं मिलता। देखो, तीनों पुरुषार्थको मना किया। कर्मणा माने धर्म पुरुषार्थ, प्रजया माने काम पुरुषार्थ और धनेन माने अर्थ पुरुषार्थ चार पुरुषार्थ होते हैं। तो तीन पुरुषार्थसे परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती। **त्यागेनैके अमृतत्वमानतुः**—इन तीनों पुरुषार्थोंको छोड़ देने पर अमृतत्वकी प्राप्ति होती है, परमात्माकी प्राप्ति होती है।

तो गोपियाँ कहती हैं, कि जैसे महात्मा लोग त्याग करके निर्गुण, निराकार, निर्विकार, परब्रह्म परमात्माको प्राप्त करनेके लिए चलते हैं, वैसे हम भी अपने सगुण, साकार, अपने प्राइवेट परमेश्वरको प्राप्त करनेके लिए त्याग करके आयी हैं। कि क्या क्या छोड़ा है? वे बताती हैं। उनमें-से पहला जो है, वह सर्वश्रेष्ठ है, उसके बाद क्रमसे; पति, सुत, अन्वय। तीनों ससुरालके हैं—पति, पुत्र और वंश। और भाई जो है, वह मायकेका है। बांधव ससुराल और मायके दोनोंके हैं। यह इसका विवेक हो गया। **पतिसुतान्वय भ्रातृबान्धवान्**। त्याग तो बहुत होगा ही। पति छोड़नेसे धर्म हो गया, पुत्र छोड़नेसे भोग गया—बच्चा पैदा करना नहीं था। वंशमें यश गया और भाईमें स्नेह गया। बान्धवमें प्रतिष्ठा गयी। भाई बन्धुओंमें प्रतिष्ठा लोग चाहते हैं। भाईका स्नेह चाहते हैं, वंशमें यश बढ़े, ऐसा चाहते हैं। पुत्र होनेसे भोगकी प्राप्ति होती है और पतिकी सेवा करनेसे धर्म प्राप्त होता है। तो श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिए ये सब त्यागे। त्यागका भी रूप बताया—**अतिविलंघ्य**। **एते विलंघनीया न भवति**। एक साधारण आदमी जो संसारमें काम कर रहा है; किसी भी स्त्रीको अपने पतिका उल्लंघन नहीं करना चाहिए। पुत्रका, भाईका, वंशका, बान्धवका उल्लंघन नहीं करना चाहिए। इनका उल्लंघन करना धर्मके विपरीत है।

गोपी कहती हैं—हमने विलंघन ही नहीं, अति विलंघन किया। अति विलंघनका क्या अर्थ है? कि जब गोपियाँ चलीं घरसे, तो क्या

हुआ ? **ता वार्यमाणाः पतिभिः।** लोगोंने आकरके रोका, परन्तु **गोविन्दाय हृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः**—श्रीकृष्णने उनकी आत्माको ऐसा चुरा लिया था, कि उनके रोकने पर भी नहीं रुकीं। महाराज, घरके लोगोंने सत्याग्रह कर दिया। यह अतिविलंघ्य शब्दका जो प्रयोग है, वह बार-बार है। घरके लोगोंने धरना दे दिया। लेट गये धरती पर। ससुराल वाले तो नहीं लेटे, लेकिन मायके वाले लेट गये। बाप थे, माँ थी, भाई थे। वे रास्तेमें लेट गये—कि हम तुमको नहीं जाने देंगे। परन्तु अति विलंघ्य—कूद-कूद करके, उछल-उछल करके; लेटे ही रह गये वे। उनको पार करके गोपियाँ श्रीकृष्णके पास आयीं। देखो, जिसने त्याग किया, उसको श्रीकृष्णके पाससे लौटकर नहीं जाना चाहिए। जो श्रीकृष्णके पास आ गया, **न स पुनरावर्तते।** उसको नहीं लौटना चाहिए। और यहाँ तो लौटा रहे हैं। बोले—कि बाबा! जो ज्ञानी होकर आता है, सो नहीं लौटता है। अज्ञानीको तो लौटना पड़ता है।

तो गोपियाँ कहती हैं—**गतिविदसतवोद्-गीतमोहिताः।** बड़ा अद्भुत है यह। हम तुम्हारी चाल समझती हैं, तुम हमारी चाल समझते हो। हम तुम्हारा गाना समझती हैं—माने गतिविदः। जो गत बजाते हैं। सितार पर गत बजाते हैं। वह गतिविदः।

: २२ :

पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानति - विलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतगताः।
गतिविदस्तवोद्गीतमोहिताः कितव योषितः कस्त्यजेन्निशि॥ १६॥

इस गीतमें एक बात तो कही गयी है—कि तुम्हारे ऊपर हमारा पूरा विश्वास है। यह कैसे कही गयी? इसके लिए अच्युत सम्बोधन है। यह पूरे विश्वासका सूचक है। ये प्रेमी लोग ये कुछ संगत नहीं बोलते हैं, ऊटपटांग बोलते हैं—*प्रेमलपेटे अटपटे।* बाहरसे अटपटा बोलते हैं, लेकिन भीतर उनकी बोलीमें प्रेम बहुत होता है।

सुनि केवट के बैन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहंसे करुना ऐन, निरखि जानकी-लखन तन॥

इस श्लोकमें एक सम्बोधन है अच्युत, माने पूरा विश्वास प्रकट किया गया है। और दूसरा सम्बोधन है कितव; कपटी, धूर्त कहा गया है। तो एक नाम तो सहस्र-नाम वाला है, श्रौत-स्मार्त, और एक नाम गोपियोंका अपना दिया हुआ है। दूसरी बात इसमें कही गयी—कि गोपियोंने श्रीकृष्णके प्रेममें त्याग कितना किया है। तीसरी बात है—कि वे उनके बिलकुल पास आ गयी हैं। चौथी बात—कि वह अनजान नहीं हैं, जानकार हैं। पाँचवीं बात—कि उनका होश-हवास ठिकाने नहीं है। और छठी बात—कि इस समय हम लोगोंको छोड़के जाना—यह सर्वथा अयुक्त है। ये छह बातें मिलकर यह गीत बना है।

अब 'अच्युत'का अर्थ क्या है? कि पहले तुमने हम लोगोंसे प्रतिज्ञा की थी—**मये मा रंस्यथ क्षपाः यदुद्दिश्य व्रतं इदं चेरुरार्याचर्नं सतीः।** गोपियों! तुम अगली रात्रियोंमें हमारे साथ विहार करना। तो अपनी

प्रतिज्ञासे तुम च्युत नहीं हुए हो, अटल हो उसपर? दूसरी बात—अपने त्यागका स्मरण दिलाती हैं। वैसे तो लोग प्रेम-प्रेमकी बात बहुत करते हैं, पर प्रेममें अगर शत-प्रतिशत नम्बर देना हो, तो निन्यानबे नम्बर केवल त्यागके पक्षमें जाते हैं। केवल एक नम्बर प्रेमके पक्षमें आता है। सौ चीज अगर दुनियामें हो, तो निन्यानबे छूट जाती हैं, निन्यानबेका फेर छूट जाता है। तो त्यागकी बड़ी महिमा है।

एक बारकी बात है। श्री अद्वैताचार्यजी महाराजने श्रीचैतन्य महाप्रभुसे प्रश्न किया—

केऽयं लीला व्यरचि भवता योयमद्वैतभाजा-
मत्यन्तेष्टं समदाद्भवानाश्रमं यत्तुरीयम्॥

महाप्रभु! आपने यह क्या लीला कर दी? अद्वैतवादी ज्ञानी लोग चतुर्थ आश्रममें संन्यास ग्रहण किया करते हैं। आपने यह संन्यासका वेश ग्रहण क्यों किया? यह तो अद्वैतवादी निवृत्तिपरायण संन्यासियोंका, वैरागियोंका काम है। इसके उत्तरमें पहले तो अद्वैतका उपहास किया चैतन्य महाप्रभुने—अद्वैताचार्यका!

भो अद्वैत! शृणु। किमु वयं हन्त नाद्वैतभाजाम्?

हे अद्वैत जी! क्या हम अद्वैतके प्रेमी नहीं हैं? माने तुम्हारे प्रेमी तो हम हैं ही। तुम अद्वैत हो, हम तुम्हारे प्रेमी हैं। बादमें महाप्रभुने बताया—

विना सर्वत्यागं भवति भजनं नह्यसुपतेः।
इति त्यागोऽस्माभिः कृत इति किमद्वैत कथया॥

बिना सर्वस्व त्याग किये अपने प्राणपति श्यामसुन्दरका भजन नहीं हो सकता। इसलिए हमने यह त्याग किया है। इसमें अद्वैतकी चर्चा करनेसे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है? हम तो अपने प्राण-प्रेष्ठ श्यामसुन्दरकी सेवा करनेके लिए सर्वस्व-त्यागी हुए हैं।

हरि सों जोरी सबन सों तोर्‌यो।
मैं अपनो मन हरि सों जोर्‌यो॥

तो अब आओ। जरा गोपियोंके जीवन पर एक दृष्टि डालें।·दशम स्कन्धमें पहले यह प्रसंग आया है, कि जब भगवान् श्रीकृष्णने ग्वाल बालोंको मथुराकी ब्राह्मणियोंके पास भेजा, कि उनसे जाकरके हमारे लिए भात माँगकर ले आओ, तो ब्राह्मणियोंने भात भेजा नहीं। स्वयं अपने सिर पर स्वादिष्ट भोजन लेकर वे श्रीकृष्णको भोजन करानेके लिए घरसे निकल पड़ीं। उनके पतिने, पिताने, पुत्रने, उनके भाई-बन्धुओंने आकरके उनको रोका—कि अरे! कंस नाराज हो जायगा। और वे तो ग्वाले हैं, उनके लिए तुम ब्राह्मणियोंका जाना ठीक नहीं है। बहुत समझाया, परन्तु वे रुकी नहीं। श्रीकृष्णकी सेवा करनेके लिए, भोजन करानेके लिए गयीं। अब वहाँ जाने पर श्रीकृष्णने कहा—कि लौट जाओ तुम लोग। तो जैसे गोपियाँ बोलती हैं, वैसे वे भी बोलीं—**मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसम्।** श्रीकृष्ण तुम्हें ऐसी क्रूर, कठोर वाणीका प्रयोग नहीं करना चाहिए। अब तो **सत्यं कुरुष्व निगमं।** वेदोंमें सुनके आयी हैं,कि जो श्रीकृष्णके चरणोंमें जाता है, वह लौटकर नहीं आता। तो अब हम लौटने वाली नहीं हैं। वेद वचनको सत्य करो, सत्य करो।

इसके बाद उनके मुँहसे निकला, कि अगर हम लौटके जायँगी तो **गृह्णन्ति नो नः पतयः पितरः सुतः वा।** यदि हम लौटकरके जायेंगी तो हमारे पति, हमारे पिता, हमारे पुत्र अब हमको ग्रहण नहीं करेंगे। श्रीकृष्णने कहा—कि बस, इसी डरसे नहीं लौटती हो? अरे जाओ। तुम्हारे पति तो चन्दन और फूलमाला लेकर तुम्हारा स्वागत करनेके लिए खड़े हैं—कि हमारी श्रीमतीजी लौटकर आवें, और हम उनको हाथ जोड़के प्रणाम करें—कि धन्य हो देवी! तुम श्रीकृष्णसे इतना प्रेम करती हो। जाओ, तुम्हारा तो सामूहिक रूपसे स्वागत होगा, बाजे गाजे बजाके। मथुराके ब्राह्मण तुमको अपने घर ले जायेंगे। तुम्हारी बहुत इज्जत बढ़ जायगी। लौट जाओ। अब लौट जाना पड़ा। परन्तु जब गोपियाँ चलीं तो

उनके भी पति, पिताने, सास-ससुरने, मित्र, भाई, बन्धुने भी उनको रोका। और अति विलङ्घ्य तेऽच्युतागताः। उनका उल्लंघन करके गोपियाँ श्रीकृष्णके पास आयीं।

ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः।
गोविन्दाय हृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः॥

सगे-सम्बन्धी जो थे, उनकी आज्ञा उन्होंने नहीं मानी। जब श्रीकृष्णके पास आयीं, तो उन्होंने उनसे भी कहा—कि लौट जाओ। तो लौट जाओ—कहनेके बाद गोपियोंकी जो दशा हुई, उसका श्रीशुकदेवजी महाराजने वर्णन किया है—तदर्थं विनिवर्तित सर्वकामाः। गोपियोंके चित्तकी यह स्थिति है कि वे तो केवल कृष्णको चाहती हैं। संसारके और किसी विषयको नहीं चाहतीं। यह नहीं समझना कि गोपियाँ गरीब थीं, और उनके पास भोगकी सामग्री नहीं थी। कई लोगोंके पास महाराज, चार पैसे हो जाते हैं, तो वे समझते हैं—हमारे बराबर और कौन है? असलमें जिसके हृदयमें तृष्णा बनी हुई है, वह गरीब है। जिसका मन संतुष्ट है, उसके लिए कौन धनी और कौन गरीब? संतोष तो चाहिए मनमें। तो गोपियाँ गरीब नहीं हैं। उनके पास खानेका, पीनेका, पहननेका बहुत है। उनके पति-पुत्र-सगे-सम्बन्धी, उनकी ससुराल, उनका मायका—सब सम्पन्न है। सारे भोग उनके सामने आते हैं, लेकिन कृष्णमें उनका मन ऐसा लगा है कि सारे भोगोंको वे लौटा देती हैं।

हरि तुम्हारे विरह राधा मैं जो देखी छीन।
चित्त दे सुनहु श्याम प्रवीन।
तज्यो तेल तमोल भूषन अंग बसन मलीन।

तेल-तमोल-भूषण-वसन सब छोड़ दिया। कि हमने देखा, कि भोगकी बड़ी-बड़ी सामग्री आती है, परन्तु गोपी उसको स्वीकार नहीं करती है। और एक बार उसने कृष्णके सामने साफ कह दिया—कि हम लोग सब विषयोंको छोड़ करके तुम्हारे पास आयी हैं।

संत्यज्य सर्वविषयान् तव पादमूलं भक्ताः।

हमने सारे विषयोंको छोड़ दिया है। तो देखो, पहले सगे-सम्बन्धी छोड़े, फिर भोगकी वासना छोड़ी, फिर भोगके विषय छोड़े। और वे निर्णय देती हैं बिलकुल वेदमंत्रके समान, कि

यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग

स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम्।

तुम धर्मज्ञ हो हम जानती हैं। और तुम कहते हो कि पति पुत्रकी सेवा करनी चाहिए; यह भी ठीक है! परन्तु हमारे तो तुम्हीं पति हो और तुम्हीं पुत्र हो। तुम्हारे सिवाय दूसरा कोई हमारे है ही नहीं। फिर बोलीं—

तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं

प्राप्ता विसृज्य वसतीः त्वदुपासनाशाः॥

हमने घर छोड़ा, द्वार छोड़ा, गाँव छोड़ा। हमने अपनी जान पहचानके लोग छोड़े। हम तो केवल तुम्हारे चरणारविन्दकी उपासना करना चाहती हैं। कोई-कोई भोग-संन्यासी होते हैं, कोई-कोई अर्थ-संन्यासी होते हैं, कोई-कोई धर्म-संन्यासी होते हैं, कोई-कोई स्वजन संन्यासी होते हैं। और ये गोपियाँ? गोपियाँ तो सर्व—संन्यासिनी हैं। सम्पूर्ण रूपसे श्रीकृष्णके लिए त्यागकर कृष्णके पास आयी हैं। एक आश्चर्यकी बात यह है, कि द्वारकाकी स्त्रियाँ यह समझती हैं—कि हम लोगोंको जो चीज श्रीकृष्णसे मिली, वह गोपियोंको नहीं मिली। **व्रजाङ्गनाः सम्मुमुहुः यदाशयाः।** श्रीमद्भागवतमें वे कहती हैं कि जिस वस्तुको पानेकी लालासासे व्रजाङ्गनायें मोहित हो गयीं। सब कुछ छोड़कर गोपियाँ श्रीकृष्णके पास आयीं। उद्धवजीने इनकी प्रशंसा की—

स्वजनं आर्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।

देखो, पहले गोपियोंने विषयका परित्याग किया, कामका परित्याग किया, स्वजनका परित्याग किया। और धर्मका परित्याग किया, आर्यपथका परित्याग किया। आजकल कोई कहेगा—कि धर्म छोड़नेमें

क्या लगता है? यह तो बड़ा आसान है। जब चाहो तब चोटी काट दो, जनेऊ निकाल दो। जब है ही नहीं, तब काटनेके लिए कहाँ, और छोड़नेके लिए कहाँ? होवे, तब न छोड़े! जब वह तुम्हारे जीवनमें है ही नहीं, तो क्या आसान, और क्या मुश्किल! तो गोपियोंको अपने सगे-सम्बन्धियोंसे प्रेम नहीं था—सो बात नहीं। बड़ा प्रेम था। और धर्मसे भी बड़ा भारी प्रेम था। लेकिन श्रीकृष्णके प्रति जो प्रेम था, उसके सामने सब-का-सब फीका पड़ गया। उनके लिए बड़ा दुश्कर था, परन्तु श्रीकृष्णके लिए उन्होंने ऐसी दुस्त्यज वस्तुका भी त्याग कर दिया। अब एक बात प्रसंगवश सुनाकर फिर आगे बढ़ते हैं।

भेजुर्मुकन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्। बोले—श्रीकृष्णके पदके ये जो चिह्न हैं वे श्रुतियोंके लिए ढूँढनेकी वस्तु हैं। कोई 'विचार सागर' वाला हो, या 'पंचदशी' वाला हो या केवल वृत्ति प्रभाकर पढ़ने वाला ही होवे, तो सुनकर वह चिढ़ जावे—कि श्रुतियोंने ब्रह्मको तो ढूँढ लिया, और श्रीकृष्णके चरण-चिह्न अबतक ढूँढनेके लिए बाकी हैं? बड़ी अद्भुत है यह बात, कि आज भी जिनके चरणोंकी धूल वेदोंके लिए ढूँढनेकी वस्तु हैं। **अद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव। भेजुर्मुकुन्द पदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।** यह क्या बात है? बात यह है, कि श्रुतियाँ जो हैं, वे आत्मनिष्ठा प्रधान हैं।

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति।

आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।

श्रुति कहती है कि हम दूसरेके लिए दूसरेसे प्रेम नहीं करते। हम अपने लिए दूसरेसे प्रेम करते हैं। कोई पत्नीको आनन्द देनेके लिए पत्नीसे प्रेम नहीं करता। अपनेको आनन्द देनेके लिए पत्नीसे प्रेम करता है। और कोई पतिको आनन्द देनेके लिए पतिसे प्रेम नहीं करती, अपनेको आनन्द देनेके लिए पतिसे प्रेम करती है। सबसे अन्तरतम यह जो आत्मा है, यह **पुत्रात् प्रेयः वित्तात्प्रेयः अन्यस्मात् सर्वस्मात् प्रेयः।** पुत्रसे भी ज्यादा प्यारा

है, धनसे भी ज्यादा प्यारा है, पतिसे भी ज्यादा प्यारा है, पत्नीसे भी ज्यादा प्यारा है। सबसे ज्यादा प्यारा क्या है? बोले—अपनी आत्मा! यह श्रुतिने निर्णय दिया।

अपने सुखके लिए सब कुछ—यह ज्ञानका मार्ग हो गया। और गोपीने कहा—कि हमारा जो जीवन है, वह हमारे लिए नहीं है। हम अपने सुखके लिए कृष्णसे प्रेम नहीं करते हैं।

निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते।
ताभ्यः परं न मे किञ्चित् निगूढ-प्रेम-भाजनम्॥

एक दिन अर्जुनने पूछा—कि कृष्ण! जब तुम सो जाते हो, तो कभी-कभी मैं तुम्हारे मुँहसे राधा-राधा, गोपी-गोपी सुनता हूँ। सपनेमें भी बर्राते हो। और जब कभी प्रेमकी चर्चा आवे, तब भी राधा-राधा, गोपी-गोपी बोलते हो। यह गोपियोंके शरीरमें क्या ऐसा है? उनके प्रेममें सुर्खाबके पर लगे हों जैसे। भला बताओ, क्या विशेषता है उनके अन्दर? कृष्णने कहा—अर्जुन! क्या बताऊँ! **निजाङ्गमपि या गोप्यो ममेति समुपासते**। गोपी अपने अंगोंको सजाती है, संवारती है, लेकिन अपना समझकर नहीं, कृष्णका समझकर। **ताभ्यः परं न मे किञ्चित् निगूढ-प्रेम-भाजनम्**—गोपियोंसे बढ़करके मेरे निगूढ़ प्रेमका, गुप्त प्रेमका पात्र और कोई नहीं है, क्योंकि उनका तो तन, उनका मन, उनकी इन्द्रिय, उनकी बुद्धि, आत्मा, सर्वस्व—जो कुछ गोपी कभी थीं, हैं, आगे कभी होंगी—वे सब मेरी ही मेरी हैं।

गोपियोंके प्रेममें कामना नहीं है—**न सा कामयमाना निरोधरूपत्वात्**। देवर्षि नारदने कहा, कि वहाँ कामनाका लेश भी नहीं है। कि क्यों? कि वे तो निरोध-रूपा हैं। अन्य सब छूट गया है उनमें, केवल एक ही एक है। इसलिए गोपियोंके प्रेमकी तुलना संसारमें और किसी दूसरेके साथ नहीं की जा सकती।

तो इसीलिए, अब देखो! **श्रुतिभिर्मृग्याम्**। श्रुति बताती है—अपने लिए है सब, और गोपी बताती है—कृष्णके लिए सब। इसलिए

ज्ञानमार्गका निर्देश जहाँ श्रुति करती है, वहाँ प्रेममार्गका निर्देश गोपी करती है। इसीलिए उद्धवने कहा—**भवतीभिरनुत्तमा भक्तिः प्रवर्तिता कृष्णो मुनीनामपि दुर्लभा।** बड़े-बड़े वेदके, शास्त्रके ज्ञाता जो अनुभवी महामुनि हैं, उन लोगोंके लिए भी जो दुर्लभ प्रेम है, गोपियों! तुमने श्रीकृष्णका वह प्रेम संसारमें प्रवृत्त किया। इस मार्गकी आचार्या तुम हो। भक्ति-प्रवर्तिता। तुम लोगोंने भक्तिको प्रवर्तित किया है। और भक्ति भी वह, जो बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंके लिए भी दुर्लभ है।

तीसरी बात देखो। **अच्युता गताः।** अब देखो, श्रुतिमें और गोपीमें अन्तर पड़ गया। श्रुति कहती है—आओ, आओ! हम भी श्रीकृष्णको प्राप्त करें। ये वेदके जो मन्त्र हैं, श्रुतियाँ—एक दिन किसी महात्माके पास मूर्तिमान होकर पहुँच गये। बोले—महाराज! हम लोग एक अभिलाषासे आपके पास आये हैं। कि तुम्हारी क्या अभिलाषा है? बताओ! उन्होंने कहा—हम श्रीकृष्णको प्राप्त करना चाहते हैं। महात्माने कहा—अरी बावरी! तुम लोगोंको ब्रह्म मिला है। देश-काल-वस्तुसे अपरिच्छिन्न, निराकार, निर्विकार, एकरस, निर्धर्मक—वह अद्वितीय परब्रह्म-परमात्मा तुमको प्राप्त हो गया। अब तुम कृष्णको चाहने लगी हो? उन्होंने कहा—महाराज! ब्रह्मका मिलना क्या होता है? वह तो नेति-नेति है; यह नहीं, यह नहीं। सबका तो कर दिया निषेध। अब रहा क्या? हमको तो कुछ ऐसा चाहिए—जिसके साथ हँसें, बोलें, खेलें, मिलें। केवल न न न न! इसीका नाम ब्रह्म-प्राप्ति है? हमको तो जीता-जागता कोई चाहिए, साँवरा सलोना, चटपटा मसालेदार! जिसको देखकर जीभ पर पानी आ जाय। जिसको पीनेके लिए आँखें व्याकुल हो जायँ, जिससे सटनेके लिए हृदय उछले और जिसको बाँहें अपने फंदेमें फँसा लें। ऐसा हमको ब्रह्म चाहिये। तो महात्माने कहा कि—भाई! ऐसे नहीं मिलेगा। इसके लिए तो किसी प्रेमीका सत्संग करना पड़ेगा। यह तो पद्मपुराणके पाताल-खण्डमें देखते हैं जाकर। गायत्री महारानी बैठके एक जगह अष्टादशाक्षर कृष्ण मन्त्रका

जप कर रही हैं—**क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय नारायणाय**। एक जगह ब्रह्मविद्याजी **क्लीं कृष्ण, क्लीं कृष्ण** बोल रही हैं। कोई **श्रीराधा कृष्ण चरणान् शरणं प्रपद्ये** जप रही हैं। सब जो अलग-अलग वेदमन्त्र हैं, वे मूर्तिमती होकर, स्त्री बनकर माला फेर रहे हैं, कि कृष्ण हमें पतिके रूपमें प्राप्त हों। केवल परे-परे वाला जो है—सो नहीं, हमें तो उरे-उरे वाला चाहिए। हमको एकने बताया, कि गिनतीसे कितने मन्त्र हो गये, कितनी माला फेर लीं, कितने नोटके बण्डल दिये—यह ईश्वरकी प्राप्तिका उपाय नहीं है। तुम्हारे दिलमें जो प्रेम है, वह किस किस्मका है? प्रेमकी किस्म देखी जाती है। मालाकी गिनती नहीं देखी जाती, उसमें प्रेमकी क्वालिटी बोलते हैं ना? वह चाहिए बिलकुल।

इसके बाद भी अधिरूढ़, मोदन, मादन, दिव्योन्माद—कई भूमिकाएँ होती हैं। तो अब यहाँ प्रसंग है गोपीका। यह जो गोपी है, यह महाभाव अवस्थामें पहुँच गयी है। और इसको यह भूल गया है कि श्रीकृष्णके विरहमें हमको तकलीफ हो रही है। उसको कृष्ण ही याद आ रही है—कि रात्रिके समय वन-वनमें भटकनेमें श्रीकृष्णको तकलीफ हो रही होगी, श्रीकृष्णको कष्ट हो रहा होगा। जिसका जिससे प्रेम होता है, उसका लेशमात्र कष्ट दूर करनेके लिए वह अपनेको बड़े-से-बड़े संकटमें डालनेको तैयार रहता है। प्यारेके शरीर पर पसीना न आवे, भले हमारा सारा खून बह जाय; यह होता है प्रेमीका संकल्प, यह होता है प्रेमीका भाव। तो वह अपने सुखके लिए प्रियतमको नहीं चाहता है, प्रियतमके सुखके लिए प्रियतमको चाहता है।

अब देखो! अबतक जो गोपीकी शैली थी, वह क्या थी?

व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते
वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम्।
त्यज मनाक् च ते नस्त्वत्स्पृहा-
त्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम्॥ १८॥

हमारे हृदयमें बड़ी पीड़ा हो रही है। इस पीड़ाकी शान्तिके लिए जो कोई अनिर्वचनीय औषधि है तुम्हारे पास, वह हमें दो। बोले—नहीं-नहीं! औषधिका नाम लेते ही भगवान्‌के चरणारविन्दका ध्यान आया, क्योंकि प्रथम औषधि तो वही है—**चरणपङ्कजं शन्तमं च ते। रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन्।** चरण कमल है, हस्त कमल है, अधरामृत है, वक्षःस्थलका स्पर्श है—ये सब औषध हैं। औषध कहते हैं उसको जो **ओषति दोषान् धत्ते गुणान् इति औषधम्।** जो दोषका नाश करे और गुणका आधान करे। तो विरह-रूप जो दोष आ गया है, उसको दूर करे और संयोग-रूप गुणका आधान करे। वह औषधि कौन है? कि वह है चरणारविन्द।

अब श्लोक लेकरके इसकी संगति बताते हैं। **यत्ते सुजात चरणाम्बुरुहं स्तनेषु।** तो देखो, यह चरण जो है भगवान्‌का, इसकी ज़्यादा याद करते हैं। एक बार तो कहा—**प्रणतदेहिनां पापकर्शनं। तृणचरानुगं श्रीनिकेतनं। फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः।** चरण हमारे हृदय पर रख दो। दूसरी बार कहा—**प्रणत कामदं पद्मजार्चितं धरणीमण्डनं ध्येयमापदि। चरणपङ्कजं शन्तमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन्।** तीसरी बार कहती हैं **सुजात चरणाम्बुरुहं।** तो पहली बात तो यह है—कि अन्तर्धान हुए होंगे, छिपे होंगे तो चरणसे चल कर ही छिपे होंगे। और चरणसे ही चलके आवेंगे। तो अपना काम तो इस समय चरणसे ही बनने वाला है। इसलिए चरण-कमलका ही विशेष चिन्तन करना है। दूसरी बात यह है, कि हाथकी पूजा नहीं होती, पूजा चरणकी ही होती है। बोले—क्यों भाई? जब भगवान्‌की पूजा करनी हो तो चरणामृतकी जगह हस्तामृत क्यों नहीं लेते? बोले—देखो! चरणमें गति है और हाथमें कृति है। गति जो प्राप्त होती है, जीवनमें आगे बढ़ना—वह तो चरणसे ही प्राप्त होती है, जीवनमें आगे बढ़ना—वह तो चरणसे ही प्राप्त होती है। श्रुति हमें आज्ञा करती है—**चरैवेति चरैवेति**—चले चलो, चले

चलो। एक बात और है; चरणसे तो चलके आ जायेंगे, हाथसे क्या करेंगे? बोले—हँसा देंगे। जो हँसावे उसका नाम हाथ। सीधा सादा इसका अर्थ है—जो लोगोंको ऐसे दिखाके, वैसे दिखाके, यों दिखाके हँसानेके काम आवे—उसका नाम हाथ। **हस्यते अनेन**—जो हँसीका साधन होवे। बोले—हस्तामृत लेने लगे, और कहीं अंगूठा दिखा दें?

तीसरी बात यह है कि समूचे भगवान्‌की पूजा सम्भव नहीं है। जीव जब उपासनाके आश्रित होता है, तो कहाँ रहता है? बोले—**जाते ब्रह्मणि वर्तते**। जातब्रह्ममें वह बर्ताव करता है। वृत्यारूढ़ ब्रह्म में वह बर्ताव करता है। उपासनाके आश्रित जो धर्म माने जीव है वह जीव **जाते ब्रह्मणि वर्तते**—अवतारके साथ व्यवहार करता है। अवतीर्ण ब्रह्म, वृत्यारूढ़ ब्रह्म **अविद्यानिवर्तकं वृत्तिज्ञानरूपं ब्रह्म, वृत्यारूढं ते तत्**। यह जातब्रह्म है, यह कृष्ण है पूतना रूप अविद्याको नाश करने वाला।

तो अब यहाँ बात यह हुई—कि पूजा असलमें चरण की होती है। तो यह किस चरणकी पूजा है? यदि ऐसा मानो—कि एक मनुष्य है। तो जो स्थूल वपु है परमात्माका—विश्वविराट्-रूप चरण, उसके भी एक अवयवकी उपासना है यह। और तैजस रूप चरण मानें, तो? उसमें गोलोक और साकेत, कैलाश—उसकी पूजा होगी। प्राज्ञ ईश्वर-रूप जो ब्रह्म है—उसकी पूजा समाधिके द्वारा, और तैजस और हिरण्यगर्भ रूप जो ब्रह्म है, उसकी पूजा भावनाके द्वारा। और यह विश्व विराट् जो ब्रह्म है कार्यब्रह्म—ये सब कार्यब्रह्मके ही रूप हैं, उसकी पूजा हो तो सेवाके द्वारा। सेवाके द्वारा विश्वविराट्, भावनाके द्वारा तैजस हिरण्यगर्भ, सूत्रात्मा और समाधिके द्वारा प्राज्ञ ईश्वर ब्रह्म। और तत्त्वज्ञानके द्वारा—वह सूर्य तत्त्वज्ञान है। तो चरणोपासना है यह।

अब जरा चरणाम्बुरुहकी बात थोड़ी सुना देते हैं। **सुजात चरणाम्बुरुहं**—भगवान्‌के चरणकमल। देखो, यहाँ वक्षःस्थल तो अनेक हैं और चरणकमल एक है। गोपियाँ द्विवचनका प्रयोग नहीं करती हैं।

चरणमें एकवचनका प्रयोग करती हैं और अपने वक्षःस्थलके लिए बहुवचनका प्रयोग करती हैं। तो या तो कहो कि उनको व्याकरण नहीं आता है। इतने बढ़िया गीत जिनके मुँहसे निकले हों, जिसमें चित्रकाव्य भरा हुआ हो, अनेक प्रकारके बंध हैं जिसमें। इतनी उत्तम कोटिकी रचना निकले, और उनको व्याकरणका ज्ञान न हो, सो बात नहीं है। तब यह क्या है? कि गोपियोंके वक्षःस्थल अनेक और भगवान्‌का चरणकमल एक; इसका अर्थ हुआ—भगवान्‌के चरणकमल व्यापक हैं। सब खुली आँखसे देख सकती हैं कि हमारे वक्षःस्थल हैं। श्रीकृष्ण एक पाँवसे धरती पर खड़े रहेंगे और उनका एक पाँव वक्षःस्थल पर रहेगा। और सब अनुभव करेंगी—कि हमारे वक्षःस्थल पर उनका पाँव है। तो उनके चरणकमलमें भी विभुता है, व्यापकता है।

अब दूसरी बात आपको सुनाते हैं। भगवान्‌का जो साकार रूप है, उसके बारेमें आजकल विचार करनेकी प्रणाली नहीं है। यह तो जैसे एक बच्चा अपने बापकी उँगली पकड़कर चले। तो आप क्या कहोगे? कि बापको पकड़के चल रहा है, कि उंगली पकड़के चल रहा है? क्या बच्चा पूरे बापको पकड़के चलेगा? अरे, नन्हा सा बच्चा, उसके नन्हे-नन्हे हाथ, नन्हे-नन्हे पाँव। वह नन्हा-मुन्ना बिचारा पूरे बापको कैसे पकड़ेगा? वह तो उसकी जरा-सी उंगली पकड़के चलेगा। और बाप भी समझेगा—कि बच्चा हमको पकड़े हुए है। ये भगवान्‌के जो चरणारविन्द हैं, इनकी पकड़ कोई छोटी चीज नहीं है, बहुत बड़ी चीज है। भगवान्‌के जो चरण हैं, उनमें-से पहले निश्चेतनको अलग करो। निश्चेतनको अलग करना क्या है? असलमें आदमी भगवान्‌के बारेमें तो बहुत कम जानता है। वह अपने बारेमें जानता है। वह यह जानता है कि हमारे शरीरमें यह जो हाथ है, पाँव है, पेट है, पीठ है—यह सब जड़ है। और इसमें जो चेतन है, वह बड़े सूक्ष्म रूपसे, व्यापक रूपसे इसमें रह रहा है। तो ऐसा आदमी जब भगवान्‌के बारेमें सोचता है, तो यह समझता है कि

उसका भी शरीर ऐसा ही होगा। एक तो हड्डी-मांस-चामका जड़ शरीर और एक उसमें रहने वाला चेतन। भगवान्‌का जो शरीर है, वह तुम्हारे भावमें है। यदि भावमें जड़ता आ जायेगी तो तुम्हारी उपासना ही नहीं बनेगी। जड़की उपासना नहीं होती, उपासना चेतनकी होती है। इसलिए भगवान्‌का जो चरणारविन्द है, वह चेतन है। भक्त लोग इस बातको बड़े प्रेमसे बोलते हैं।

एक 'वृहद् ब्रह्मसंहिता' है। पहले यह ग्रन्थ खो गया था। अनजाहिर हो गया था। श्रीचैतन्य महाप्रभु जब दक्षिणमें गये यात्रा करने, तो वहाँ कहीं प्राप्त हुआ। वहाँसे वे ले आये। पंचरात्रकी जो एक सौ आठ संहिताएँ हैं, उनमें-से एक है। उसमें एक स्तोत्र है—**गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि**। उस स्तोत्रमें बताया—**यस्येन्द्रियाणि निखिलेन्द्रिय-वृत्तिमन्ति**। श्रीकृष्णकी जो इन्द्रियाँ हैं, उनकी एक-एक इन्द्रियमें सब इन्द्रियोंकी वृत्ति रहती है। अब जैसे देखो—आपके सामने भगवान्‌के चरण हों। तो वे सुनते भी हैं। उनसे कहो—कि हे चरण! तुम हमारे वक्षःस्थल पर आ जाओ, तो वे तुम्हारी बात सुनते हैं। तुम कहोगे—देखो तो! हमारा चेहरा तुम्हारे बिना कैसा उदास हो रहा है। हमारी आँखोंमें आँसू आ रहे हैं कि हे चरणारविन्द! देखो तो। तो वे चरणारविन्द देख लेते हैं। कि हे चरणारविन्द! छुओ तो! तो वे छू लेते हैं। कि थोड़ा अमृत दे दो, थोड़ी अपनी सुगन्ध दे दो! कि हम चन्दन लगाते हैं, दीपक दिखाते हैं। तो उसकी सुगन्ध चरणारविन्द लेते हैं, दीपककी ज्योति लेते हैं। भोग लगाते हो तो उसका रस लेते हैं। हवा करते हो तो उसका सुख लेते हैं। स्तोत्र बोलते हो तो वह सुनते हैं। घण्टी बजाते हो तो भगवान्‌के चरणारविन्द सुनते हैं।

तो भगवान्‌की एक-एक इन्द्रिय सम्पूर्ण वृत्ति वाली है। क्योंकि देखो! देह-देही विभाग जो है, वह भगवान्‌में नहीं होता। वह तो जीवमें होता है। जब देह और देहीका विभाग होगा, तब क्या होगा? जीव उड़के

चला जायेगा नरक, स्वर्ग और पुनर्जन्ममें, और उसका देह पड़ा रह जायेगा। ईश्वरके शरीरमें यह देह और देहीका विभाग नहीं होता है—कि उसका मुर्दा पड़ा रह जाय और उसका जीव चैतन्य कहीं जाय! ऐसा नहीं होता। वह तो साक्षात् चेतन है। ईश्वर जो है, वह चिन्मात्र वस्तु है।

अच्छा, अब दूसरी बात करें। असलमें जो उपासना होती है, कोई बच्चोंका खेल तो नहीं है। गुड्डे और गुड़ियाका ब्याह तो है नहीं यह।

आनन्दमात्र - कर - पाद - मुखोदरादि
गोविन्दमादि - पुरुषं तमहं भजामि।

आनन्दमात्र—उनके हाथ जो हैं, आनन्दमात्र हैं। पाँव जो हैं, आनन्दमात्र हैं, पेट आनन्दमात्र, मुख आनन्दमात्र है। इसीसे उनका एक नाम है 'प्रिय'। अब आजकल तो प्रिय शब्द सब जगह चलता है। इस शब्दका अर्थ क्या है? संस्कृतमें प्री धातु है, यह अदादि, भवादि, चुरादिमें सब जगह इसके रूप होते हैं। सभी गणोंमें घुमा फिरा कर ले ली गयी है, प्रयति, प्रयतः, प्रयन्ति है। प्रिञ् तर्पणेका भवादि में रूप है प्रयन्ति। सकर्मक भी है, अकर्मक भी है। प्रिय शब्दका अर्थ यह होता है, कि जिसके सुननेसे, जिसके छूनेसे, जिसकी याद करनेसे, जिसका नाम लेनेसे, जिससे सम्बन्ध रखने वाली वस्तु सामने आनेसे तबीयत तर हो जाये। रसमें सराबोर हो जाये। **प्रीणाति इति प्रियः। प्रेयति इति प्रियः। प्रियते इति प्रियः।** जिसकी गन्धसे, जिसके रससे, रूपसे, स्पर्शसे, शब्दसे, स्मरणसे भी रोम-रोम तर हो जाये। जैसे बिल्कुल अभी खीर खाई हो, और उसका डकार आया हो। बंगाल का रसगुल्ला खाया और डकार आया! बड़ा आनन्द! बड़ा आनन्द! इसको बोलते हैं प्रिय!

अब देखो, यहाँ **चरणाम्बुरुहं कैसा? यत् ते चरणाम्बुरुहं।** यत् सर्वनाम है। यत् तत् का प्रयोग जब होता है, तो उसका मतलब होता है अनिर्वचनीय। समझो, वेदान्ती लोग ब्रह्मको भी अनिर्वचनीय कहते हैं,

और जगतको भी, मायाको भी अनिर्वचनीय कहते हैं। एक बार काशीमें बड़ा शास्त्रार्थ हुआ—कि प्रमाणके अधीन प्रमेयकी सिद्धि है, कि प्रमेयके अधीन प्रमाणकी सिद्ध है? इस विषयको लेकरके विद्वानोंमें बड़ा शास्त्रार्थ हुआ। अन्तमें सार क्या निकला सारे शास्त्रार्थका? बोले—अनिर्वचनीय ही है। मानसे मेयकी सिद्धि हुई, माने वह दृष्टि-सृष्टिवाद और सृष्टि-दृष्टिवाद जैसे होता है। बिलकुल अनिर्वचनीयतामें जाकर परिसमाप्ति हो गयी।

ये भगवान्‌के चरणकमल कैसे हैं? कि यत् हैं। माने अनिर्वचनीय हैं। देखो, कमल अगर हाथ पर लग जाये तो क्या करेंगे? बोले—हृदय पर रख लेंगे। हृदयकी शक्ल सूरतसे कमलकी शक्ल-सूरत मिलती है। लेकिन जैसे कमल खिलता है, वैसें किसीका हृदय तो खिला हुआ रहता है, जैसे कमल सिकुड़ता है, वैसे किसीका दिल सिकुड़ा हुआ रहता है। भगवान्‌के चरणारविन्द जो हैं—चरण कमल, वे खिले हुए हैं, और हृदयके अन्धकारको दूर करते हैं। परन्तु यह कमल तो बाहर ही ठंडक देता है। अब पूछो—कि यह कमल भीतर कैसे पहुँच जाता है, और वहाँ ठंडक कैसे देता है?

एक बार यह पद—जो अभी दादाने गाया था—**प्रीतम तुम मम दृगन बसत हो,** किसीने गाया। तो एक महाशय जीने कहा—देखो! बिलकुल गप्प हाँकते हो। अगर प्रीतम आकर आँखोंमें बस जायेगा, तो जरा-सी आँखें, और इतना बड़ा प्रीतम। फूट नहीं जायेंगी आँखें? कैसे अँटेगा आँखोंमें? इसका नाम तर्क है। बोले—यह हमारा प्रीतम ऐसा अनिर्वचनीय है, कि आँखोंकी पुतली होकर रहता है, और आँखें फूटती नहीं है, और उनमें ज्योति आ जाती है। यह तो अमृतायन है, यह अञ्जनकी गुटिका है। अमृताञ्जन जैसे आँखमें लगाते हैं, वैसे यह साँवरा सलोना एक अञ्जन है आँखोंमें लगानेका। वह तो बस, आँखोंमें लगाया, और मजा आ गया! आँखोंमें ज्योति बढ़ जाती है। ये जो चरण कमल हैं,

भगवान्‌के हृदयके तापको शान्त करने वाले, अतिशय आह्लाद देनेवाले, अतिशय सुगन्धित, अतिशय रसीले, अतिशय सुन्दर, अतिशय कोमल हैं। ये तो प्रेम ही हैं! भगवान्‌ने देखा कि हमारे भक्तोंका हृदय कमल-सरीखा है। तो बोले—कि अपने चरणोंको भी कमल सरीखा बनाकर उनके हृदयमें रखेंगे। तो भक्तोंका हृदय हो जायेगा कमलिनी, और हमारा चरण हो जायेगा कमल। तो दोनोंका ब्याह कर देंगे। गोस्वामी तुलसीदासजी की एक चौपाई है—

सीताराम चरन रति मोरे। अनुदिनु बढ़उ अनुग्रह तोरे॥

तो उसमें यही कहते हैं, कि सीताराम चरन रति मोरे। रति, ब्याह ही चाहिए हमको। भगवान्‌के चरणकमलसे हमारे हृदय कमलका बस, ब्याह ही होना चाहिए। दोनों जोड़ा बनकर रहें। हृदय कमल नीचे, उसके ऊपर चरण-कमल। भगवान्‌के चरणकमलमें अनुरागकी लाली, और हमारे हृदय-कमलका योग हो जाये!

दूसरी बात बताते हैं। यत् शब्द सर्वनाम नहीं है, चरणाम्बुरुहंका विशेषण है। यह सत्रन्त प्रयोग है। **एति इति यत्, यत् चरणाम्बुरुहं**। यत् माने आपका चलता हुआ, हिलता हुआ चरणारविन्द। तो क्या करते हैं? कि **स्तनेषु दधीमहि कर्कशेषु। भीता शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु**। हम डर-डरकर अपने हृदय पर आपके चरण रखते हैं। अपने वक्षःस्थलको कर्कश कहा और भगवान्‌के चरणको कोमल कहा, और फिर उसको धीरेसे रखना और डरते हुए! प्रेमकी भाषा है यह। यह डर-डरकर नहीं बोली जाती। प्रेमकी बोली निर्भय होती है। क्यों? कि यह **तन्वानं शं प्रदोषे नव नव रुचितासम्पदं मादनत्वात्**। प्रेमका जहाँ वर्णन है, **साध्वतं ध्वंसयन्तं** जिसके हृदयमें प्रेम जगता है, उसका सारा भय अपने आप ही भाग जाता है।

देखो, संसारमें जिनका पैसेसे प्रेम हो जाता है, वे पैसेको पूरा करनेके लिए अपनेको कितनी तकलीफें देते हैं। कितना कष्टमें डालते हैं

लाख रुपया, करोड़ रुपया पूरा करनेके लिए। वे अर्थके प्रेमी हैं। और जिनको महाराज, भोगका प्रेम हो जाता है, वे अपने शरीरको कितने रोगमें, तकलीफमें डालकर भोगको पूरा करते हैं। जिनको धर्मसे प्रेम हो जाता है, पंचाग्नि तापकर, होमकर, भूखे रहकर अपने धर्म-प्रेमको पूर्ण करनेके लिए कितना कष्ट उठाते हैं। और जिनको मोक्षसे प्रेम होता है? कितनी झिड़की सहते हैं, कितना कष्ट उठाते हैं। बिचारे भीख माँगते हैं, पेड़के नीचे रहते हैं। विरक्त होकर, कितनी तकलीफ उठाकर मोक्ष प्राप्त करते हैं। तो यह प्रेम क्या कोई खालाजीका घर है? कि चलो भाई! प्रेम कर आयें, माने मौसीके घर हो आयें। अर्थके लिए, धर्मके लिए, भोगके लिए, मोक्षके लिए तकलीफ उठानी पड़ती है।

जो सीस तली पर रख न सके, वह प्रेम गली में आये क्यों?

यह प्रेमकी गली है बाबा! डर-डरकर काम करने वाली चीज नहीं है। इसमें प्रियतमसे मिलनेमें भय नहीं है। यहाँ भयकी बात ही बड़ी विचित्र है।

भीता शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु। तुम तो हो हमारे प्यारे। और हम कौन हैं? देखो, एक बात इन्होंने कैसी कही है! ये कहती हैं कि हमारी भी जवानी है। अपने वक्षःस्थलको कठोर कहनेमें अपने यौवनका प्रकाश प्रकट करना है। तो बोले—फिर क्या करती हैं? बोलीं—कि हम आपके चरणारविन्दको डर-डरकर अपने हृदय पर रखती हैं। क्यों भाई? कि कहीं आपके चरणोंको चोट न लग जाये। अरे बाबा! जब चोट लगनेका डर है, तो रखो मत। क्यों आग्रह है—कि भगवान्‌के चरणारविन्द हृदय पर ही रखे जायँ? तो देखो, जो भक्त होते हैं, वे तो भीतर चरणारविन्द रखकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। जो योगी होते हैं, वे समाधिके द्वारा चरणोंमें स्थित हो जाते हैं। ज्ञानी लोग ज्ञानके द्वारा चरणसे अभिन्न हो जाते हैं। लेकिन ये जो प्रेमी हैं, ये भीतर रखकर सन्तुष्ट नहीं हैं। इनकी तो बाहर चाहिए, यह भी ध्वनि है। **कर्कशेषु**। हमें तो बाहर

तुम्हारे चरण रखनेके लिए चाहिए। भक्त लोग जो आँख बन्द करके तुम्हारा ध्यान करते हैं, वे भीतर रखा करें। हमको तो खुली आँखसे देखनेके लिए चाहिए तुम, और खुली आँखसे खुले हृदय पर रखनेके लिए चाहिए तुम्हारा चरणारविन्द। बोले—बाबा, अपने सुखके लिए, कि हमारे सुखके लिए, यह भी एक रहस्यकी बात है, पर रहस्यकी बात अधिकारी-विशेषके प्रति प्रकट की जाती है। भगवान्‌के चरणारविन्दको हृदय पर रखना, यह कोई साधारण बात नहीं है। श्री वल्लभाचार्य जी ने तो जहाँ-जहाँ ऐसा प्रसंग आया है, उसको बन्ध-विशेष बताया है—कि यह विशेष प्रकारका बन्ध है।

अच्छा, अब उस प्रसंगको छोड़कर यह देखो—कि डरते क्यों हो? कि डरते यों हैं, कि हमारा वक्षःस्थल कठोर है। कहीं तुम्हारे कोमल चरणोंको चोट न लग जाये। तो रखते क्यों हो? कि रखते इसलिए हैं—कि हम जानते हैं कि जब हम तुम्हारा चरण रखते हैं वक्षःस्थल पर, हृदय पर, तो तुमको बड़ा सुख मिलता है। तुमको सुख मिले, इसलिए तो रखते हैं, और वे कहीं दुख न जायँ—इसलिए डरते हैं। तो यह भी एक रसकी बात हो गयी। तुम्हारे सुखके लिए रखते हैं, और तुम्हारे सुखके लिए डरते भी हैं। इसमें अपने सुखकी तो कोई बात नहीं है। लेकिन ये चरणारविन्द तो तुम्हारे हैं। क्यों न अपना दावा दिखाओ फिर? हम तो सोचते थे कि हम हृदय पर रखकर सुख देंगे। हम डर-डरकर, धीरे-धीरे रखते हैं कि उनको कोई तकलीफ न पहुँचे, तो तुमने कहा—अच्छा गोपियों! तुम हमारे चरणका इतना ख्याल रखती हो! तो देखो, ये चरण हमारे हैं। हम तुमको वक्षःस्थल पर नहीं रखने देंगे। हम तो इनको धरती पर घसीटेंगे। **ते, ते चरणाम्बुरुहं**। बन गये चरणवाले—ये चरण हमारे हैं, तुम्हारे नहीं! बँटवारा कर लिया।

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीता शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।

तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न क्वचिस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥ १९ ॥

प्रेमियोंकी बात जरा न्यारी होती है। यह तो अलौकिक है। बोले—**तेनाटवीमटसि**। हम जानते हैं कि तुम जंगलमें क्यों इस समय भटक रहे हो! हम दिनमें तुम्हारा पर्यटन पसन्द नहीं करती हैं—**अटती यत् भवान् अह्नि काननं त्रुटिर्युगायते**। और **शिलतृणाङ्कुरै सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति**—दिनमें तो तुम धर्म पालनके लिए जाते हो। नन्दबाबासे कहते हो—कि हम ग्वाले हैं, और गाय चराना हमारा धर्म है। नहीं चरावेंगे तो कुलकी रीति जायेगी। तो हम कहती हैं—अच्छा भाई! गायोंके पीछे-पीछे भटकनेमें अगर तुम्हें सुख मिलता है, तो भटक लो थोड़ा। तुम्हारे सुखमें हम अपना सुख मान लेती हैं। लेकिन अब रातके समय तुम इन चरणोंको क्यों घसीट रहे हो जंगलमें? यह समझके ना—कि हमारे चरणोंको तकलीफ होगी, तो गोपियोंको तकलीफ होगी? तो मालूम होता है कि हम लोगोंको चित्त दुखानेके लिए तुम अपने चरणोंको दुःख देकर भी हमको दुखी करना चाहते हो। यही बात है क्या?

देखो! प्रेमी लोग ऐसा बोल देते हैं। सबको ऐसा बोलनेका हक नहीं है। प्रेमी लोग बराबरी पर नहीं रहते हैं। उनका आसन कुछ ऊँचा होता है। प्रेमी लोग प्रियतमसे नीचे नहीं बैठते हैं, वे प्रियतमसे ऊपर हो जाते हैं। देखो, श्रीराधारानीने तो कहा ही, कि हम कन्धे पर बैठेंगे—**स्कन्ध आरुह्यतामिति**। तो **तेनाटवीमटसि**। प्रेमकी लीला बड़ी विचित्र है। प्रेम तो तृप्ति है। प्रेम रस है। प्रेममें आकृतिकी कठोरता नहीं है। कोई कहे कि देखो जी, छूना नहीं हमको। कि क्यों? कि यह जो हमने अपनी आँखों पर एक बाणका निशान बनाया है; आप लोगोंके ध्यानमें होगा, कि एक कालीसी लकीर इधरको खींच लेते हैं। आँख छोटी होवे तो बड़ी मालूम पड़ती है, उसका चमत्कार यही है। तो वह काला लोहेका बाण जैसे होवे, वैसा बना लेते हैं। तो छूना नहीं? कि क्यों कि हमारी आँखमें

जो काजल है, वह बिगड़ जायेगा। तो अपना रूप बिगड़नेका डर प्रेममें होगा? नहीं, प्रेममें डर नहीं होगा। यहाँ प्रियतमको कैसे सुख मिले, वैसी चेष्टा प्रेमीकी होती है।

तो तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्विद्। क्या तुम्हारे चरणोंको कष्ट नहीं होता। अरे बाबा! हमारी मानते, तो काहेको कष्ट देते? अपना मानकर कष्ट दे रहे हो। हमको तो इतनी तकलीफ होती है, और तुमको फायदा कुछ नहीं।

तो गोपीको अपनी याद भूल गई। भगवान्‌के चरणोंका कष्ट उसकी बुद्धिमें आ गया। तो बोले—अरी गोपी! बात तो बहुत करती हो। हमारे बगैर जिन्दा हो? तो बोलीं—कि बात नहीं करती हैं। वह तुम्हारा भाई—बिरादर जो है ना ब्रह्मा, उसने हमारी आयु हमारे शरीरमें रखी नहीं, उठाकर तुम्हारे शरीरमें रख दी। इसीलिए हम जिन्दा हैं।

: २३ :

त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते—यहाँसे गोपीगीत प्रारम्भ हुआ कि हमने अपने प्राण, अपनी इन्द्रियाँ, अपना मन तुम्हारे पास रख छोड़ा है। और **भवदायुषां नः** पर समाप्ति होती है, हमारी आयु, हमारा जीवन, प्राण तुम हो। यह उपक्रम और उपसंहारकी एकता है।

ईश्वर जो कुछ कर रहा है, उससे जुदा हमको कुछ नहीं करना है। और ईश्वर जो चाह रहा है, उससे जुदा हमारी कोई चाह नहीं है। उस ईश्वरकी जो जानकारी है, ज्ञान है—उससे हमारा ज्ञान जुदा नहीं है। देखो, भक्त वह है, जो भगवान्‌के ज्ञानसे अपना ज्ञान, उनकी इच्छासे अपनी इच्छा, उनकी क्रियासे अपनी क्रिया और उनके शरीरसे अपना शरीर मिला ले, और

व्यास भरोसे कुँवरि के सोवत पाँव पसार।

और ऐसा अगर लगेगा, कि हमारी जानकारी जुदा और ईश्वरकी जानकारी जुदा है, तो दोनोंमें-से एक तो भ्रममें होगा, क्योंकि सत्यकी जानकारी चाहे तुमको हो और चाहे तो ईश्वरको हो। अब उससे जुदा अगर तुम कुछ जानते हो, तो वह जो जानता है, वह क्या गलत है? और तुम सही हो? वह जो चाहता है सो गलत है, तुम जो चाहते हो सो सही है? वह जो करता है—गलत है और तुम जो करते हो सो सही है? तो भक्त वह है, जिसका ज्ञान, जिसकी इच्छा, जिसकी क्रिया अपने प्रभुके ज्ञानके साथ, इच्छाके साथ, क्रियाके साथ मिल गयी; अपना व्यक्तित्व उस व्यक्तित्वसे एक हो गया।

अब भक्तिशास्त्रका एक रहस्य आपको सुनाता हूँ। आप क्या इस विश्वासके साथ जीवन व्यतीत कर रहे हैं—कि ईश्वर तो सातवें आसमानमें छिपा हुआ है, वह निराकार है, निर्विकार है, फलाना है, ढिकाना है? अरे, कुछ तो अपने जीवनमें भी उतरना चाहिए। तो वेदान्तियोंने कहा—कि अपनी आत्मा ही है। स्वयं प्रकाश, अदृश्य है। वह देखा नहीं जाता, देख रहा है। वह सुना नहीं जाता, सुन रहा है। वह मनन नहीं किया जाता, मननका भी साक्षी है। वह जाना नहीं जाता, जान रहा है। आत्माके रूपमें साक्षात् अपरोक्ष है। भक्तोंने कहा कि न तो हमको अदृश्य पर विश्वास करके मरना है, और न तो मैं ही मैं, मैं ही मैं करना है। राम राम! यह नहीं! तीसरी कक्षा है—हमारे चित्तमें आकर बैठो, हमारे ध्येय बनो। हम तुम मनमें किलोलें, खेल करें। अरे भाई! वह क्या ईश्वर, जिसपर सिर्फ विश्वास करना पड़े, या सिर्फ साथमें ही होकर रहे, या सिर्फ ध्यानमें ही रहे। हमें तो वह ईश्वर चाहिए, जो जरा बाहर निकलकर सामने आवे। सामने आनेमें उसको डर लगता है क्या? उसको नजर लग जायगी क्या?

तो अन्तरजामी ते बड़ो बाहरजामी राम।

अन्तर्यामीसे बड़ा है भक्तोंकी नजरमें बहिर्यामी; बाहर जो खेलता है। तो भक्त लोग कहते हैं कि केवल हमारे विश्वासमें नहीं, आत्मामें नहीं, बुद्धिमें नहीं, चित्तमें नहीं, मनमें नहीं रहो। आओ, हमारी आँखोंके सामने प्रकट हो जाओ। द्रष्टा-दर्शनका नाम भक्ति-दर्शन नहीं है, दृश्य-दर्शनका नाम भक्ति दर्शन है। अपने आपको जानना-इसमें भक्ति दर्शन समाप्त नहीं होता, जर्रे-जर्रेमें भगवान् दिखे, जित देखों तित स्याममयी है। यह देखो श्याम! यह देखो श्याम! श्याम-ही-श्याम! भक्त लोगोंको भगवान् बाहर दिखना चाहिए।

बोले—भगवान् दिख गये। बस, हो गयी भक्ति? बोले—नहीं। दो मिनटके लिए अगर बाहर दिखके चला गया, तो क्या काम बना?

हमारा उसके साथ एक ऐसा रिश्ता होना चाहिए, कि वह छोड़के न जाय। वह हमारी सेवा भी ले, हमारा दोस्त भी बने, हमारा हुक्म भी माने कभी-कभी। और हमारा प्राणप्रिय बन करके रहे। कि केवल देखनेसे काम नहीं चलेगा, बोले भी तो! कई लोग बोलते हैं—उनको भगवान्‌का दर्शन तो होता है, पर भगवान् उनसे बात नहीं करते हैं। आँखके सामने चमकके चले जाते हैं। तो बोले—नहीं-नहीं! ऐसे चमकके मत जाना। अरे आओ! दो-दो बात तो कर लें! हम भी तो सुन लें कि तुम्हारी आवाज कितनी मीठी है। क्या मौनी बाबा बने हो! जिनकी आवाज अच्छी नहीं होती, वे लोग ज्यादा मौन रहते हैं। प्रेमकुटीमें एक व्यक्ति आते हैं। उनकी आवाज बड़ी कड़वी है। आवाज ही कड़वी है, दिल कड़वा नहीं है। और वह कड़वी बात बोलते भी नहीं हैं। पर आवाजमें रूखापन है। वह बोलना पसंद नहीं करते हैं, बहुत करके चुप ही रहते हैं। हे मेरे प्यारे! तुम बोलते क्यों नहीं हो? क्या तुम्हारी आवाज भी कुछ उखड़ी-उखड़ी है? अरे, थोड़ी मीठी-मीठी आवाजमें बोलो तो सही। हाँ! बोलते तो हो, पर सिर्फ बोलनेसे काम नहीं चलेगा। जरा कंधे पर हाथ रखो। आँख-से-आँख मिलाओ। कुछ बोलो, कुछ छूओ, कुछ हम खिलाते हैं। तो खाओ और कभी हमें भूख लगे तो तुम खिला दिया करो। आओ! हँसें, खेलें, बोलें! मिलकर रहें।

तो भक्ति जो है, वह केवल विश्वासमें पूरी नहीं होती, केवल आत्म-साक्षात्कारमें पूरी नहीं होती, केवल ध्यानमें पूरी नहीं होती। केवल दो मिनटके दर्शनसे भी पूरी नहीं होती। भक्ति तो पूरी होती है तब, जब रोम-रोममें, रग-रगमें, बाहर भीतर वही-वही हो जाता है। प्रेम-ही-प्रेम! प्रेम-ही-प्रेम! प्रेम-ही-प्रेम! अब दर्शन शास्त्रकी इस भूमिकाको ले लो, फिर देखो। गोपी कहती है—**त्यज मनाक् च नः**। उसकी माँग देखो—**त्वत् स्पृहात्मनां स्वजन हृद् रुजान् यन्निषूदनं**। अपने

स्वजनोंके हृदयमें जो तरह-तरहके रोग हैं—रुजान् बहुवचन है, उन बहुतसे रोगोंकी जो एक दवा है तुम्हारे पास, वह दे जाओ। तो कृष्णने कहा—तुम तो बड़ी रसिक तबीयतकी हो गयी हो। अरी रसिकाओ! रसमयी, मधुमयी, लास्यमयी, प्रेममयी मेरी प्यारी गोपिकाओं! थोड़ी देर ठहरो। तुम चाहती हो कि मैं बाहर तुम्हारे हृदयपर अपना चरण रख दूँ। यही चाहती हो ना? लेकिन ये जो हमारे चरण-कमल हैं, इनको इस समय वन-भ्रमणका आनन्द आ रहा है। वह देखो! क्या प्रेमसे चहलकदमी कर रहे हैं वृन्दावनमें।

वृन्दावन की माधुरी, इन रसिकन मिली आस्वादन कियो।

वृन्दावनमें बड़ी रसमाधुरी है। भगवान्को भी वृन्दावनमें भटकनेमें मजा आता है। कहते हैं—तुम चाहती हो कि हम अपना चरणारविन्द तुम्हारे हृदय पर रखें। और यहाँ तो हमारे चरणारविन्द वृन्दावन-भ्रमणानन्दमें—वृन्दावनमें जो पर्यटनका आनन्द है, चहलकदमीका आनन्द है—वह ले रहे हैं। इसलिए ठहरो! हमारे चरणकमलोंको इतना अवकाश नहीं है, कि वे तुम्हारे हृदय पर रखे जायँ। तब गोपियाँ बोलती हैं—

यत् ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीता शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु।
तेनाटवीमटसि तद् व्यथते न किंस्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः॥

प्यारे श्यामसुन्दर! ये जो तुम्हारे चरण हैं, ये साधारण कमल नहीं, सुजात कमल हैं। माने हजारों जो जातियाँ कमलकी होती हैं, उनमें सुजातिके, ऊँची किस्मके कमल हैं ये। बड़े कोमल, बड़े सुगन्धित, बड़े सुन्दर, बड़े रसीले, बड़े सुस्पर्श। ये तो चिन्मय चरण हैं। जब हम इनको अपने हृदय पर रखती हैं, तो धीरे-धीरे, डर-डरके रखती हैं, क्योंकि हमारे हृदय बड़े कठोर हैं।

तेनाटवीमटसि—उसी चरणसे आप वनमें भटकते हैं? **किं करोसि? असं साहसं करोसि।** इतना साहस तुमको नहीं करना

चाहिए। ये तुम्हारे हैं, क्या इसलिए इनको जंगल-जंगल भटकाते हो? इसका मतलब यह है कि ये जो बड़े लोग होते हैं, उनको निज जन-निष्ठुर होकर रहना पड़ता है। देखो, वैसे तो भगवान्‌को कहते हैं—बड़े भक्त-वत्सल हैं, बड़े प्रेम-परवश हैं, भक्त बेचे तो कौड़ीमें बिक जायँ, लेकिन एक सत्पुरुषका यह भी लक्षण होता है, कि वे औरोंके प्रति बड़ी उदारता बरतते हैं, और अपनोंके प्रति बड़ी कृपणता। निज जन-निष्ठुर उसको बोलते हैं। जैसे कोई ईमानदार मिनिस्टर होगा, तो वह दूसरेके लड़केको झट परमिट दिलवा देगा, लेकिन अपने लड़केको नहीं दिलवायेगा—कि भाई! बदनामी हो जायगी। पक्षपात हो जायगा। एक मिनिस्टरके लड़केने एक लेख लिखा है अपनी करुणाका। बड़ा विचित्र है—कि मैं तो मारा गया। मेरा जीवन मिट्टीमें मिल गया, क्योंकि मैं एक मिनिस्टरका बेटा हूँ। पिताजी औरोंका सब काम करते हैं, पर हमारा नहीं करते हैं। कहते हैं—चुप, चुप! तुम थोड़े कपड़े पहनो, थोड़ा खर्च करो, ढंगसे रहो। किसी ईमानदारका पुत्र है वह। और बेईमानका होवे, तो करोड़पति हो जावेगा कि नहीं? जो भलेमानुस होते हैं, वे अपने लोगोंका पक्षपात नहीं करते हैं। मालूम होता है कि ये चरण तुम्हारे अपने हैं, इसलिए अपना समझ कर इनको तकलीफ दे रहे हो। **ते चरणाम्बुरुहं**—तुम्हारे हैं, इसलिए! और मालूम होता है, हम भी तुम्हारी हैं। ऐसा तुम मान चुके हो। तभी हमको भी तकलीफ दे रहे हो।

भीता शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु—हम तुम्हारे चरणको जो हृदय पर रखती हैं, तो धीरे-धीरे, डरते-डरते। क्योंकि हमारा हृदय बड़ा कठोर है। कहीं तुम्हारे चरणोंको चोट न लग जाय। रखती हैं इसलिए, कि मालूम पड़ता है, कि जब हम तुम्हारे चरणोंको अपने हृदय पर रखती हैं, तो तुमको बड़ा आनन्द आता है।

जो अपने प्रियतमको सुख पहुँचाते-पहुँचाते भी उद्दण्ड न हो

जाना—कि हम तो तुम्हींको सुख दे रहे हैं। इस बातका ध्यान रखना। ऐसा न होवे, कि रोटी बना रहे हैं, तो एक आगकी चिनगारी उड़के पड़ गयी प्रीतम पर। प्रीतमने कहा—अरे भाई! जरा सम्हालके आग जलाओ। बोले—तुम्हारे ही लिए तो रोटी बना रहे हैं। रोटी क्या बनाने लगे, उद्दण्ड हो गये वे। पड़ गयी एक आगकी चिनगारी, तो क्या आग लग गयी? उद्दण्डता नहीं आनी चाहिए। बोले—हम तुमको सुख पहुँचाना चाहते हैं, पर कहीं सुख पहुँचते-पहुँचाते तुमको दुःख न पहुँच जाय! इसके लिए डरते रहते हैं।

कृष्णने कहा—कि गोपियों! तुम सब लोग हाथ जोड़ों ब्रह्माजीको—कि हे विधाता! हमारा हृदय जरा नरम-नरम कर दो, कोमल-कोमल! तो बोलीं—राम-राम! हम जानती हैं कि हमारा हृदय कठोर रहेगा, तभी तुमको सुख मिलेगा। हमारा हृदय कोमल हो जायगा, तो तुमको क्या सुख मिलेगा? तो इसलिए हम ब्रह्मासे हृदय कोमल करनेकी प्रार्थना नहीं कर सकतीं।

कि अच्छा! तब डरो मत।

कि जब कठोर हैं, तो तुम्हारे चरणोंमें लगेंगे ही। तो हम डरें क्यों नहीं? लेकिन मुख्य बात तो यह है, कि उन्हीं चरणोंसे तुम वन-वन भटक रहे हो। **तद् व्यथते न किंस्वित्**—क्या उनको व्यथा नहीं पहुँचती है?

तो बोले—बाबा! मेरे मनमें जब जो आता है, तब मैं करता हूँ। स्वतन्त्र हूँ। अब तुम्हारे सिखाये-पढ़ाये अनुसार थोड़े ही करूँगा! मैं स्त्रैण थोड़े हूँ—कि जो स्त्री कहे, वही करना!

एक बार एक बहुत बड़ी सभा जुड़ी थी। एक व्याख्यानदाता व्याख्यान दे रहे थे। सभा जो थी, वह पुरुषोंकी ही थी, उसमें स्त्रियोंका आना मना था। वक्ताने कहा—कि आजकल जितने पुरुष हैं, वे सब स्त्रियोंकी आज्ञाके अनुसार चलते हैं। सब स्त्रैण हो गये हैं। तो

जो लोग अपनी स्त्रीकी बात मानते हों, वे एक ओर खड़े हो जायँ और जो न मानते हो वे दूसरी ओर हो जायँ। तो निन्यानवें आदमी मानने वालोंकी ओर खड़े हो गये, और एक आदमी न मानने वालोंकी ओर बैठा रहा। लो जी! बड़ा आश्चर्य हुआ—कि यह क्या, भाई? ऐसा कौनसा पुरुष है, जो स्त्रीकी बात नहीं मानता? तो उसके पास गये, बोले—भाई! सब लोग उठके एक तरफ हो गये। तुम न मानने वाली जगह पर क्यों बैठे हो? तो बोले—जब मैं घरसे चला, तो मेरी पत्नीने कहा था, कि देखो! सभामें जाकर जहाँ बैठ जाना, वहाँसे कोई कुछ कहे—तुम उठना मत। बैठे रहना। इसलिए मैं बैठा हूँ। मतलब यह, कि सारी दुनिया **योषिन्मय्ये मायया**। श्रीमद्भागवतमें आया—यह जो माया महारानी योषिद्-रूप धारण करके आयी हैं, उनकी आज्ञामें नाच रही हैं। कृष्णने कहा—कि मैं ऐसा नहीं हूँ। मैं अपनी मौजसे घूमता हूँ। इस समय हमको मजा आ रहा है घूमनेमें। छेड़छाड़ हमारे साथ मत करो।

बोलीं—ठीक है। तुमको मजा आ रहा है, तो तुमको कौन रोक सकता है? लेकिन क्या पीड़ा नहीं होती है उनको?

किं तद् व्यथते न किंचित्?

बोले—कि नहीं-नहीं। व्यथा कैसे होगी? वृन्दावनकी एक-एक घास, एक-एक लता, एक-एक पत्ता, एक-एक कंकड़, एक-एक पत्थर भगवान्का प्रेमी है। जब प्रेमीके हृदयमें यह भाव हुआ—कि हम प्रभुके चरणोंके नीचें आवें, तब जाकरके वृन्दावनकी धूल बन गया, घास बन गया, कंकड़ बन गया, पत्थर बन गया।

कदम्ब कुँज होइहौं कबैं या वृन्दावन मांहिं।
ललित लड़ैते लाड़िले बिहरैंगे तेहि छाँहिं॥

पञ्चत्वं तनुरेतु भूतनिवहाः स्वांशे विशन्तु स्फुटम्। शरीर मर जाय, और पंचभूत अपने कारणमें लीन हो जायँ। **धातारं प्रणिपत्य हन्त शिरसा**

तत्रापि याचे वरम्। परन्तु ब्रह्माको प्रणाम करके, हाथ जोड़ करके हम मरनेके बादके लिए भी एक वर माँगते हैं। **तद्वापीषु पत्रः तदीयमुकुरे ज्योतिः।** हमारे शरीरका पानी उस बावलीमें जाकर मिले, जिसका पानी हमारा प्रीतम पीता है। हमारे शरीरकी ज्योति उस शीशेमें मिले, जिसमें वह अपना मुँह देखता है। हमारे शरीरका आकाश उस आकाशमें मिले, जिस आंगनमें वह घूमता है। हमारे शरीरकी साँस उस पंखेमें जाकर मिले, जिसके नीचे वह रहता है। और हमारे शरीरकी मिट्टी उस गलीमें जाकर मिल जाये, जिसमें वह चलता है।

तो प्रेमीकी अभिलाषा होती है, कि हम मर कर भी प्रियतमके काम आवें। प्रेमियोंके जो शरीरके तत्त्व हैं, वही व्रजमें कण-कण बनके बैठे हुए हैं। **वृन्दावन स्था-स्तरवः सर्वे चाधोमुखा स्मृताः**— वृन्दावनके सब वृक्ष नीचेको लटके हुए हैं, कि हमारे नीचे कभी नन्द-नन्दन मुरलीमनोहर पीताम्बरधारी श्यामसुन्दर खेलते हुए आवें। वृक्ष चाहते हैं—हमारी छायामें आवें। धूल चाहती हैं—हमारे ऊपर घूमें। लता चाहती हैं कि हमको छू लें। कमल चाहते हैं—हमको सूँघ लें। पक्षी चाहते हैं कि हम अपनी चाहत उनको सुनावें, कलरव उनको सुनावें। मोर चाहते हैं—हम उनको नाच-नाचकर दिखावें। कोयल चाहती है—हम उनको गा-गा कर सुनावें। तो वृन्दावनमें क्या पीड़ा है?

बोले—नहीं बाबा! कहीं कंकड़ लग जाय, कहीं पत्थर लग जाय। अरे, वृन्दावनकी तो धरणी धन्य है। असलमें जो भगवान्के चरणारविन्दको धारण करे, उसका नाम धरणी। तो धन्य है वृन्दावनकी धरणी। लेकिन मालूम होता है कि हमको दुःख देनेके लिए तुम घूमते हो।

अच्छा, यह बताओ—क्या तुम्हारे चरण कठोर हो गये हैं? हो सकता है, कि पहले तो बड़े कोमल रहे हों, लेकिन **संसर्गजा दोष गुणा**

भवन्ति—हमारे कठोर हृदय पर रखते-रखते उनमें भी कुछ कठोरता आ गयी हो।

प्रेमी लोगोंका मन कैसे काम करता है—यह उसका एक नमूना है। आपका भगवान्‌से प्रेम हो, तो आप बैठ जायँ आँख बन्द करके। और देखो, आपका मन कृष्णके बारेमें कितना सोचता है? लोग पैसेके बारेमें सोचते हैं, भोगके बारेमें सोचते हैं, बेटेके बारेमें सोचते हैं, इज्जतके बारेमें सोचते हैं। वे अपने बारेमें सोचते हैं, ईश्वरके बारेमें सोचनेका अवकाश ही कहाँ है? ईश्वरमें तो मन ही नहीं लगता है। कहाँ लगता है आपका मन? हमारा मन बेटेमें लगता है, व्यापारमें लगता है, शरीरमें लगता है। भाई, जो जरूरी-जरूरी चीजें हैं, उनमें तो लग ही रहा है। गैर-जरूरी भगवान्‌में लगाके क्या करोगे? यह तो तुम्हारे लिए बिलकुल गैर-जरूरी चीज हो गयी। भगवान्‌में मन ही नहीं लगता है। लाख रुपयेके नोट गिनने हों, तो एक रुपयेकी भी गलती नहीं होती। और चार माला फेरनी हो ईश्वरके नामकी, तो माला छूटके हाथसे गिर पड़े, नींद आ जाय। यह मनुष्यके जीवनकी स्थिति हो गयी है, माने वह बिना भोग-लिप्साके, बिना स्वार्थके, बिना मतलबके कुछ करनेको राजी ही नहीं है। वह यह सोचता है कि यह जीवन जो है, वह कामनाका पुतला है।

तो गोपियाँ कहती हैं—नहीं नहीं! ऐसा लगता है कि तुम तो हमसे भी बहुत बड़े प्रेमी हो। कहीं वनमें भटकते-भटकते हमारे ध्यानमें मग्न हो गये हो, रास्ता भूल गये हो। इसलिए नहीं आ रहे हो। लेकिन दर्द तो होता ही होगा। तो हमारी बुद्धि भ्रान्त हो रही है। भ्रान्त हो रही है—**भ्रमतीव च मे मनः**—जैसे अर्जुनने कहा था। वैसे ही कहती हैं ये, **भ्रमति धीः**।

देखो, प्रीतिकी रीति निराली है। साधारण लोग नहीं समझते। एक आदमी हमारे पास आया। मैंने बड़े प्रेमसे कहा—कि भाई! तुम अभी तो

बहुत दिनके बाद आये हो। तो बोला—अभी तो हफ्ता भर भी नहीं हुआ, आपके पास आया था। आपको बहुत दिन लगता है? अब देखो न! हमारे प्रेम पर तो घड़ों पानी पड़ गया भाई! हमको तो उसका हफ्ता भर बहुत दिन लगता है, और उसको बहुत दिन ही नहीं लगता है। प्रीति किससे करना? जो प्रीति जानता है। **प्रीतिरात्मा विवेकज्ञे स्नेहमन्यपरे जने।** जो तुम्हारी समझदारीका आदर नहीं करता, उससे प्रेम कैसे? तो जो एकांगी प्रेमी होते हैं, वे कहते हैं—कि अगला समझे कि न समझे, सामने वाला समझे कि न समझे, हम तो अपना काम करेंगे।

जानउ राम कुटिल कर मोही। लोग कहउ गुरु साहिब द्रोही।
सीताराम चरन रति मोरे। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरे॥

रामसे हमारा प्रेम है, पर राम हमको कपटी समझें, कुटिल समझें। और लोग कहें कि रामका द्रोही है। तो लोग भी कहें कि यह रामका द्रोही है, राम भी समझें, कि कपटी है, लेकिन **सीताराम चरन रति मोरे**—मेरे हृदयमें तो सीतारामसे प्रेम बढ़े। अब देखो, यह एकांगी प्रेम यदि दोनों ओर हो जाय, दोनों यही चाहें, तो? क्या चाहें? कि बस, हमारा तो प्रेम बढ़े। उनका प्रेम हो, कि न हो। अगर यह कहोगे—कि वे प्रेम करें, तब हम प्रेम करेंगे—तो प्रेम बढ़ेगा नहीं। और तुम कहो, कि वे प्रेम करें कि न करें, हम तो प्रेम करेंगे—तब प्रेम बढ़ेगा। तो प्रेममें जो एकांगीपना है, वह बाढ़ है प्रेमकी, कोई विघ्न न आने दे। कोई बाधा न आने दे। वह प्रीतिको बढ़ानेके लिए होता है।

भ्रमति धीः। यह हमारी धी भ्रम रही है। यही तो भगवान्‌से ब्याही जाती है न! हमारे गाँवमें तो 'धी' बेटीको बोलते हैं; **मेरी धीया का बड़ा दुलारा।** 'धीया' बोलते हैं। अब यह बुद्धि ही तो भगवान्‌के साथ ब्याही गयी है। शरीरकी परवाह नहीं है भगवान्‌को। पर बुद्धि जब ब्याही गयी है, तब निष्ठावान होवे, अपनी निष्ठाको न छोड़ें। अब उसीमें यह भटकन आ गयी, यह अटकन आ गयी। यहाँसे वहाँ, वहाँसे वहाँ, वहाँसे वहाँ!

बोले—बाबा! हम तो प्रेमको प्रेम तब मानते हैं, जब अपने प्रियतमके विरहमें प्राण न रहें। बोले—नहीं। प्राण न रहें—इसके मायने तो होते हैं, कि तुम दुःखसे छुटकारा चाहते हो, दुःखसे डरते हो। प्रेममें जब यह बात आती है न—कि जब मरेंगे, तब दुःख मिट जायगा, तो असलमें तुम अपने दुःखसे इतने कमजोर पड़ गये हो, कि मरके अपना दुःख छुड़ाना चाहते हो। तुम प्रियतमको सुख पहुँचाना थोड़े चाहते हो! तुम्हारे मर जानेसे तुम्हारे प्रियतमको क्या कुछ ज्यादा मजा मिलेगा? कुछ ज्यादा ध्यान मिलेगा? ज्यादा सेवा मिलेगी?

आपको सुनाया होगा कभी; हमारी जानकारीमें एक बहुत बड़े संत थे। उनके बहुत भक्त थे। जब उनकी वृद्धावस्था आयी, तो एक दिन सब भक्तोंने सलाह की, और हमारे पास आये। बोले—अब तो हमारे गुरुजीकी अवस्था वृद्ध हो गयी है। और शरीर तो कभी न कभी छूटेगा। तो हम लोग यह दुःख देखना नहीं चाहते। हम चाहते हैं कि उनका शरीर पूरा होनेसे पहले ही हम लोग मर जायँ। सब—डेढ़ दो सौ आदमी जमुनाजीमें कूद पड़ें, सामूहिक आत्महत्या कर लें। अब देखो न! प्रेमी तो हैं, पर प्रेमके साथ बेवकूफ भी मिले। प्रेमके साथ वकूफ नहीं हैं, बेवकूफ हैं। मैंने कहा—उनको मालूम पड़ेगा—कि हमारे सब भक्त जमुनामें कूद कर एक साथ मर गये, तो अभी छह महीने और जीने वाले होंगे, तब भी आज ही मर जायेंगे। तो उनको मारनेका पाप तुम्हीं लोगोंको लगेगा। बोले—हाँ। यह बात तो ठीक है। थोड़े दिनके बाद वे बाबा मर गये।

अब बोले—कि अब मरो। तो बोले—कि अब मरेंगे, तो जब उनकी आत्माको हमारा मरना पसंद नहीं था, तो अब भी मरेंगे तो उनकी आत्माको दुःख ही तो होगा? क्या उनके श्राद्ध करनेका, उनके तर्पण करनेका यही ढंग है? कि मरें? उनके कामको पूरा न करें? उनकी भक्तिको न बढ़ावें? उनके नामको न बढ़ावें? उनका यश को

रोशन न करें दुनियामें! बस, उनके पीछे मर जायँ। तो उनकी आत्माको शान्ति मिलेगी?

तो भाई! ऐसी बात तो नहीं है कि मरना ही प्रेम है। मर-मरके जीते हैं, जी-जीके मरते हैं। प्रेमी लोग तो पन्द्रह-बीस दफे दिनमें रोज मरते हैं, और पन्द्रह-बीस दफे रोज जिन्दा हो जाते हैं। यह तो एक प्रकारसे प्रेमियोंका व्यापार है।

तो बोले—फिर भगवान्‌के विरहमें कैसे जिन्दा रहें? बोले—**भवदायुषां नः**। हमने अपनी आयु तुम्हें चढ़ा दी, अर्पण कर दी। तुम जीओ, मैं मर जाऊँ। हमारी आयु तुमको मिल जाय। तुम ही हमारी आयु हो। तुम हमारे जीवन हो, तुम हमारे प्राण हो। हमारी आयु तो हमारे शरीरमें है ही नहीं। इसका मतलब यह हुआ—कि हमारे शरीरका सुख-दुःख हमको नहीं है। तुम्हारा ही सुख हमारा सुख है, तुम्हारा ही दुःख हमारा दुःख है। तुम्हारा ही जीवन हमारा जीवन है, तुम्हारा ही प्राण हमारा प्राण है। तुम्हारी आत्मासे जुदा हमारी आत्मा नहीं, तुम्हारी बुद्धिसे जुदा हमारी बुद्धि नहीं, तुम्हारी इन्द्रियसे जुदा हमारी इन्द्रिय नहीं। तुम्हारे जीवनसे जुदा हमारा जीवन नहीं। श्यामसुन्दर! हम तुम एक!

अब अपनी चिन्ता छूट गयी। प्रेममें बनियापन नहीं चलता है। व्यापारका इसमें काम नहीं—कि तौलके इतना लो और इतना दो। प्रेम तो अनन्त तृप्ति है, अनन्त रस है, अनन्त मधु है। हमने तो नमककी झील देखी। लोगोंने बताया, कि कभी ऊँट गिर जाता है उसमें; समूचाका समूचा गलके नमक हो जाता है। उसमें सिर्फ झीलका पानी जमा हुआ नहीं होता है, उसमें बहुत कुछ जमा हुआ होता है। पर जो नमकके अन्दर पड़ता है, नमक हो जाता है। तो प्रेममें इतनी मधुरता है, इतनी मिठास है, कि इसके बीचमें आकर मौत भी मीठी हो जाती है और जिन्दगी भी मीठी हो जाती है। सोना, चलना, फिरना, बोलना—अपना व्यक्तित्व ही प्रेमके समुद्रमें समा जाता है। इसमें प्रेमी प्रीतमकी कोई

कीमत नहीं है। प्रेम जो है, वह हजार प्रेमी बना देता है, हजार प्रीतम बना देता है। प्रेमीको प्रीतम बना देता है, प्रीतमको प्रेमी बना देता है। दोनोंको मिला देता है, दोनोंको मिटा देता है। प्रेम तो रस-ही-रस है। इसका नाम रस-ब्रह्म है। **रसं ह्येवायं लब्ध्वा आनन्दी भवति। रसो वै सः।** परमात्मा रस-स्वरूप है। जैसे कहते हैं न—एक अनन्त चेतनका महासमुद्र है। बोले—नहीं। अनन्त रसका महासमुद्र है। और ये जो प्रेमी—प्रीतम हैं, ये उसकी दो तरंगे हैं। एक तरंग इधरसे आयी और एक उधरसे। दोनों टकराये! और प्रेमके प्रेम! कुछ बचा नहीं शेष; केवल प्रेम ही, केवल रस ही!

गोपियाँ अपने आपको भूल गयीं। कभी डूब जायँ, कभी निकल जायँ। कभी मगन, कभी लगन। वे तो चुप हो गयीं, पर शुकदेवजी बोले रहे हैं—

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा।
रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शन-लालसा॥ १॥

इति गोप्यः। इति शब्दः प्रकार-वचनः। ये जो उन्नीस श्लोक गोपियोंने गाये, ये उन्नीस ही नहीं समझना। ये तो उन्नीस हजार गावें, तब भी पार न पावें, क्योंकि जितनी गोपियाँ, उतने भाव उनके। एक-एक गीत अगर सब गोपियोंका मान लें, तब भी दूसरा भागवत बन जाय। तो 'इति' माने 'ऐसा ही'। जैसे ये उन्नीस गीत बोले गये, वैसे ही। बहुत-बहुत गाया उन्होंने। अब देखो, **गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च।** तो **चित्रधा प्रगायन्त्यः।** और **चित्रधा गोप्यः।** तरह-तरहकी तो गोपियाँ हैं। गोपी उसको कहते हैं, जो बोले नहीं; जिसको प्रेम करना आता हो, बहस करना न आता हो। प्रेम तो उसके हृदयमें पूरा हो, पर बात करना न आता हो। जबान लड़ाना दूसरी चीज है, और दिलमें प्रेम होना दूसरी चीज है। गोप्यः—माने जो गोपन करे। अपने प्रेमको गुप्त रखे। माँ-बापको भी मालूम न पड़े, सखी सहेलीको भी मालूम न पड़े। सास-ससुर, पति

पुत्र—किसीको मालूम न पड़े। प्रेमको गुप्त रखनेकी जिसमें सामर्थ्य है, उसका नाम गोपी। यह जब जाहिर होता है, तो इसमें बड़ी मुसीबत है। लोग उँगली दिखावें—सो तो अलग; क्योंकि संसारी लोग एक जगह पक्के नहीं होते हैं। तो किसीको पक्का होते देखते हैं, तो इकट्ठे होकर उसको हिलाते हैं कि उसको भी अपनी तरह डाँवाडोल कर दें, कि उसको भी उखाड़के फेंक दें। तो प्रेम जाहिर होनेमें एक मुसीबत यह—कि गाँव वाले उँगली उठाएँ। और महाराज, एक और मुसीबत है, सबसे ज्यादा वही है, कि जिससे प्रेम किया जाय, अगर उसको मालूम हो जाय—कि यह तो हमारे प्रेमी हो गये अब—तो वह तो नचा-नचाके मार डालें! प्रियतम मिजाजी हो जाता है, रूठने लगता है। नचाने लगता है, परेशान करने लगता है। तो गोपियाँ जो हैं, वे प्रेम तो करती हैं, लेकिन उसको अपने दिलमें गुप्त करके रखती हैं। एक तो प्रेमको गुप्त रखना। और दूसरे, अपने प्रियतमको गुप्त रखना। क्यों? कंसको यह पता लग जाय कि कृष्ण ईश्वर है, देवता है—तो आज ही लड़ाई छिड़ जाय। तो वे कहती हैं—चोर, चोर, चोर! अरे, कौन भाई? चोरी हो गयी तुम्हारी? तो बोलीं—माखन-चोरी हो गयी। कि रुपया पैसा? कि नहीं। रुपया पैसा तो किसीने नहीं लिया। वह तो तिजोरीमें बन्द है।

तो माखन कौन ले गया?

अरे, वही! नन्दलाला था नन्दलाला!

तो लोगोंने कहा! कि अच्छा? वह चोर है? तो देवता नहीं हो सकता। चोर है, तब तो ईश्वर नहीं हो सकता। तो कंसके पास जाकर अगर कोई शिकायत करता—कि नन्दबाबाके बेटेके रूपमें तुम्हारा दुश्मन आया है, तो कंस कहता—भाई! उसके खिलाफ तो बहुत रिपोर्टें आयी हैं कि वह चोर है। वह देवता कैसे हो सकता है? तो इन गोपियोंने चोरीकी भी रिपोर्ट थानेमें लिखा-लिखाके ईश्वरको, देवताको छिपा लिया। अपने प्रियतमको गुप्त किया। कैसे? कि यह तो छेड़ गया हमको। अपने आप

मोतीकी माला तोड़कर फेंक दी—की हमारी मोतीकी माला फेंक ग़या। अपने आप साड़ी फाड़ दी, और बोली—वही फाड़ गया। तो बोले—अरे, अपने प्रियतमको बदनाम करते हो? कि वह तो ऐसा है-ही-है। हम बदनाम काहेको करते हैं!

अब हम मान लेते हैं, कि कृष्णमें कोई दोष नहीं था। सब गोपियोंने लगाया। कि क्यों लगाया? कि कोई उनको देवता समझके उनकी पूजा न करने लग जाय। देवता समझके कंस उनको तकलीफ न पहुँचावे। ईश्वर समझके उनको मारनेके लिए, उनसे लड़नेके लिए कोई दैत्य और न भेज दे। जब छेड़-छाड़ करने वाला समझेगा, चोर समझेगा, तो सोचेगा नहीं-नहीं, देवताका पक्षपाती नहीं है। गोपियाँ—माने अपने प्रियतमको भी गुप्त रखा, अपने प्रेमको भी गुप्त रखा। घरमें उनके काम-धन्धेमें कभी कोई अड़चन नहीं पड़ी। अपने आपको भी गुप्त रखा उन्होंने; इसलिए उनका नाम गोपी। गोपी तो वह है, तो प्रेमकी एक बात मुँहसे न निकाले। वह तो कहती है—**चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि**। वह तो चोरोंका शिरोमणि है, चोर जार शिरोमणि। वे गोपियाँ इस समय इतनी व्याकुल हो गयीं, कि **चित्रधा गायन्त्य चित्रधा प्रलपन्त्यः**। गोपियाँ भी चित्रधा हैं, कई तरहकी हैं। आश्चर्य-जनक इनके रूप हैं; बच्ची हैं, अज्ञातयौवना हैं, ज्ञातयौवना हैं, ऊढ़ा हैं, अनूढ़ा हैं, प्रौढ़ा हैं। जितने नायिकाभेद होते हैं, सब तरहकी हैं। वे गोपियाँ गा रही हैं—**गायन्त्यः**। गा-गाकर अपना प्रेम कृष्णको बता रही हैं। उनको मालूम है, कि कृष्णमें एक कमजोरी है एक।

कि अरे! कृष्णमें, ईश्वरमें कमजोरी? कि ऐसे लोगोंको हाथ जोड़ें। कमजोरी शैतानसे आयी है?

भाई! हमारे एक ईश्वर और एक शैतान नहीं होता। एक ईश्वर ही होता है। दृढ़ता भी आती है तो ईश्वरमें-से, और कमजोरी भी आती है तो ईश्वरमें-से ही।

अच्छा! क्या कमजोरी है?

कि अगर कोई गाने लग जाय प्रेमसे—

मद्भक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद।

मेरे भक्त जहाँ प्रेमसे गायन करते हैं, वहाँ तिष्ठामि। बैठते नहीं हैं, तत्र तिष्ठामि। लेटते भी नहीं हैं। आजकल तो जब लोग लेटकर भजन करने लगते हैं, तो नींद आने लगती है। अरे, हम तो देखते यहाँ, एक खम्भेका सहारा लेकर बैठते हैं लोग? तो जरा आराम मिलता है, नींद आने लगती है। तो भगवान् आकर बैठते नहीं हैं, क्योंकि बैठ जायँ, तो कोई आकर घेर-घार ले, पकड़ले। और लेट जायँ तो नींद आ जाय। इसलिए वे हर समय चौकन्ने खड़े रहते हैं—कि जहाँ भक्तोंका गाना बन्द हो, बस, उसी सेकण्डमें वहाँसे गायब हो जायँ। तिष्ठामिका अर्थ है—खड़ा रहता हूँ। वहीं भगवान् आकर रहते हैं। तो गोपियोंने सोचा, कि अगर हम अच्छा गाना गावेंगी, तो वह जरूर सुननेके लिए आवेंगे। तो कभी गावें, और कभी प्रलाप करें। कभी प्रलाप करें, कभी गावें। और रुरुदुः सुस्वरं राजन्—रोने लगीं वे। बोले—प्रलाप सुनेंगे तो मालूम पड़ेगा, कि पागल हो गयी हैं। और गाना सुनेंगे तो माधुर्यसे मोहित हो जायेंगे। और रोना सुनेंगे तो करुणा आयेगी। लेकिन उनके रोनेमें भी एक स्वर था—सुस्वरं। शहरकी स्त्रियोंको तो मैंने बिलखते देखा है। थोड़ा मुँह बिगड़ जात्ता है थोड़े आँसू भी गिरते हैं, लेकिन गा-गाकर रोते कभी नहीं सुना। देहातमें मैंने देखा है; ऐसे स्वरसे रोती हैं। हाय मेरे दुलना! हाय मोरे राजा! उसमें वह स्वर होता है, कि दादरा-ठुमरी सब उसके सामने फीकी पड़ जायँ। रोनेमें गीत होता है उनके। असलमें जो सलीकेका आदमी होता है, वह सब काम सलीकेसे ही करता है।

अभी चार-पाँच दिन हुए, हमको एकने बताया, कि वे हैदराबाद गये थे। वहाँ एक नाटक था। दस रुपये चंदा लिए गये थे दर्शकोंसे। सब

वहाँ बैठकर देख रहे थे। एक सज्जन लखनऊसे आये थे। वे भी गये देखनेके लिए, उन्होंने भी दस रुपये दिये थे। जो बेंच मिला उनको बैठनेके लिए, वह टूटा हुआ था। अब लखनऊके ये वे, क्या करें बिचारे! तो बेंचपर तो नहीं बैठे, उसके पाये पर बैठ गये, और कहें—या खुदा! यह दिन! दस रुपये! दस रुपये! यह दिन! या खुदा! पड़ोस वालेने सुन लिया, तो उसने शिकायत की—कि भाई, देखो! इनको तकलीफ हो रही है। तो कर्मचारियोंने बताया—इस बेंच पर नहीं उस बेंच पर जाकर बैठ जायँ। बदल देते हैं। तो—इस बेंच पे नहीं, उस पर? उस पर? वहाँ? माने वह यह कहें—कि मैं वहाँ जाऊँ? यह उनकी शानके खिलाफ मालूम पड़े। तो साथवालेने बताया, कि यह चाहते हैं कि बेंच ही यहाँ ला दिया जाय। लेकिन मुँहसे कुछ न बोलें वे। तो जो सलीकेके आदमी होते हैं, वे सब काम सलीकेसे ही करते हैं। जो शऊरदार लोग होते हैं, वे रोते भी शऊरसे हैं। जो बेशऊर लोग होते हैं, वे गाते भी बेशऊरीसे हैं और रोते भी बेशऊरीसे हैं।

तो **रुरुदु सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शन लालसाः**। गोपियाँ रोने लगीं। आपको गोपियोंका एक नाम बताते हैं। एक इसका अर्थ है—जिनके मनमें केवल कृष्ण-दर्शनकी लालसा है। **कृष्णदर्शने एव लालसा यासां ता**। गोपीके मनमें लालसा क्या है? कि बस, कृष्णका दर्शन हो जाय। बोले—न! न! यह मूर्तिमती कृष्ण-दर्शन—लालसा है। आप गोपीको देखो। यह गोपी कौन है? कि यह गोपी किसी ग्वालकी बेटी नहीं है, किसी ग्वालकी बहू नहीं है, किसीकी पत्नी नहीं है, न माँ है, न नातेदार-रिश्तेदार। कृष्णसे मिलनकी जो लालसा है वह लालसा ही मूर्त होकर, व्यक्त होकर, शरीरधारी होकर हजार-हजार रूप धारण करके उस यमुनाके पुलिन पर चाँदनी रातमें पुकार रही है—प्राणनाथ! आओ! और ये जो गीत हैं, ये गोपीके गाये हुए नहीं हैं। ये लालसाके गाये हुए गीत हैं। आपके मनमें ऐसी लालसा कृष्ण-दर्शनकी हो!

तो जब गोपियाँ नहीं, लालसा ही लालसा रह गयी हो, जब गोपी का व्यक्तित्व ही नहीं रहा, वे केवल लालसामयी रह गयीं, तब **तासामाविरभूच्छौरिः**—उनके बीचमें ही प्रकट हुए। आये नहीं; यमुनामें-से निकलकर नहीं आये, पहाड़ परसे उतरकर नहीं आये, पेड़ोंमें-से नहीं आये, बालूमें-से नहीं आये। अरे, गोपियाँ जब मतवाली हो गयी थीं तो उन्होंने धीरेसे एककी ओढ़नी खींच ली, और अपने मुँहपर डाल ली। गोपियोंने कहा—कहाँ गये? अरे, गये, गये! अब वह गये तो कहीं नहीं। बिलकुल गोपियोंके बीचमें रहे ओढ़नी ओढ़े। उन्हींके साथ दौड़ें, उन्हींके साथ रोवें, उन्हींके गलेमें गला मिलाकर गावें। उन्हींकी तरह श्यामसुन्दर मुरलीमनोहर पीताम्बरधारी चिल्लाएँ। जब देखा, कि बस! अब हद हो गयी, तो ओढ़नी जो थी शरीरपर—उसको हटाया! और वह तो पीताम्बरधारी!

स्मयमानमुखाम्बुजः। अरे, रोज-रोज तुम लोग हमको कितना छकाती थी। एक दिन मैंने जरा सा छका दिया, तो तुम्हारी यह दशा? गोपियों! देखो! कभी मान नहीं करना। कभी रूठना नहीं। कभी डांटना नहीं। आज तुम्हारी सब पोल-पट्टी खुल गयी। इतना तो रोती हो! अच्छा, अब जो जो तुमको चाहिए, सब लो!

: २४ :

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥ २ ॥

स्त्रियोंके बीचमें भगवान् प्रकट हो गये। यहाँसे कथा प्रारम्भ होती है। एक बार इधर दृष्टि डालें, जब गोपियोंके मनमें मद और मानका उदय हुआ। वे कृष्णकी ओर देखना बन्द करके अपनी ओर जब देखने लग गयीं—हम इतनी सुन्दरी, हम इतनी मधुर, हम इतनी गुणवती! तो चाहे संसारको देखो, चाहे अपनी ओर देखो—भगवान्‌को देखना तो बन्द ही हो गया। और जब भक्तने सामने रहने पर भी भगवान्‌की ओर देखना बन्द कर दिया, तो भगवान् क्या करे? भगवान्‌का देखना तो बन्द हो नहीं सकता। उनको चाहे कोई देखे, चाहे कोई नहीं देखे। वह तो देखते ही रहेंगे।

नहिद्रष्टुर्दृष्टेविपरिलोपो विद्यते अविनाशित्वात्।

परमात्मा तो द्रष्टा है और उसकी दृष्टिका कभी लोप नहीं होता। वह अविनाशी, उसकी नजर अविनाशी। दुनिया उसको न देखे वह तो देखता है। दुनिया उसको अपनी गोदमें न बिठावे, वह तो सारी दुनियाको अपनी गोदमें रखता है। लोग अपनी सांस उसको भले न लगने दें, लेकिन उसकी सांस तो सबको छूती है, गुदगुदाती है। यही ईश्वरका स्वरूप है।

तो देखा उन्होंने। गोपियोंको भगवान्‌का दीखना बन्द हो गया, परन्तु भगवान्‌को गोपियाँ दीखती रहीं; यह स्थिति हुई। गोपियाँ व्याकुल हुईं, उन्होंने ढूँढना प्रारम्भ किया। ढूँढनेमें अपनी ओर देखना तो नहीं है परन्तु अपना बल-पौरुष बहुत बड़ा है। जबतक पाँव चले, तबतक चलीं, जबतक जबान बोले, तबतक बोलीं, जबतक दूसरोंसे पूछ सकीं, तबतक पूछा। जबतक उनका अभिनय कर सकीं, तबतक अभिनय किया। जब व्याकुलता बढ़ी, तब अपने हृदयका सारा भाव उँडेल दिया। मान भी छूट गया, मद भी छूट गया। अन्तमें अपनेको भी भूल गयीं, बोलीं—हमें

दु:ख है तो यह, कि श्रीकृष्णके चरणारविन्द धरती पर पड़ते हैं। उन्हें काँटे न गड़े, कुश न गड़ें। हमारे हृदय पर रखनेकी जो चीज है, वह धरती पर जाती है। कंकड़ पत्थरमें जाती है। देखो, अब अपनेको भूल गयीं। और **रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शन लालसाः**। यह श्रीकृष्ण-दर्शनकी मूर्तिमती लालसा है। **रुरुदुः**—सिर्फ रोने लगीं। माने अपना बल, अपना पौरुष, अपनी शक्ति, अपना साधन हार मानकर बैठ गया। यही भगवान्‌के प्रकट होनेका अवसर है।

ऐसा कहते हैं कि यह जीव और ईश्वर—दोनों सखा हैं। और ये आँख-मिचौनीका खेल खेलते हैं। आँख-मिचौनी तो आपने सुना ही होगा। एक आँख बन्द करता है, दूसरे छिप जाते हैं। तो फिर वह ढूँढ़ता है, कि कहाँ कौन छिपा है। न ढूँढ पावे, तो फिर आँख बन्द होवे, और ढूढ़ ले तो जो ढूँढ़ लिए जाते हैं, उनकी आँख बन्द करते हैं, और वह छिपता है। तो प्रलय काल और सृष्टिकाल—ये दो समय हैं। प्रलयकालमें सब जीव जो हैं, वे माया अविद्या अज्ञान तमिस्राच्छन्न होकर छिप जाते हैं, और सृष्टिके प्रारम्भमें ईश्वर एक एकको ढूँढ़-ढूँढ़ निकालता है। जब सृष्टिका खेल होने लगता है, तब ईश्वर छिप जाता है और कहता है—अब तुम लोग ढूँढ़ो। तुम्हारे ढूँढनेकी बारी है।

ऐसा यह बगीचा है, **आराममस्य पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन्**। लोग उसके बगीचेको देखते हैं, परन्तु बगीचेके मालिकको नहीं देखते। यह सृष्टि बगीचा है। इसमें कहीं संगीतकी आवाज आ रही है—शब्द है, कहीं शीतल मन्द सुगन्ध वायु चल रही है, कहीं सुन्दर-सुन्दर फूल खिल रहे हैं, कहीं मधु क्षरण हो रहा है, रसीली चीज मिलती है। जब जीव ईश्वरको ढूँढ़नेके लिए निकला, तो यह बगीचा उसके सामने आया। अब कोई गन्ध सूँघनेमें लगा, कोई रस पीनेमें लगा, कोई रूप देखनेमें लगा, कोई शीतल वायुका आनन्द लेनेमें लगा। भूल गये वे—कि हम आँख-मिचौनीके खेलमें हैं, और ईश्वरको ढूँढ़ रहे हैं। किसी-किसीको

खटका—कि अरे, हम ढूँढ़नेके लिए आये हैं। तो उन्होंने कहा—होम करो, व्रत करो, तीर्थ करो। अपने बल-पौरुषको भूल जाओ। कर्मसे ढूँढ़ो। किसी-किसीने कहा, कि हम आँख बन्द करके बैठ जायेंगे और अन्दर ही में ढूँढ़ेंगे। तो जोगी हो जाये। कोई महाराज, बोले—कि हम इतना प्रेम करेंगे, इतनी सेवा करेंगे, यह देखो, हम तुम्हारे लिए फूलोंकी सेज बनाते हैं, पत्तोंका पंखा बनाते हैं। यह फलोंका भोग तैयार करते हैं। तुम्हारी भक्ति करेंगे, पूजा करेंगे। आओ न हमारी पूजा स्वीकार करनेके लिए। वे समझते हैं—बड़ा लालची है। अगर हम बढ़िया-बढ़िया आम तराश करके रखेंगे उसके खानेके लिए, तो उसकी जीभ पर पानी आवेगा। जहाँ पर छिपा है, वहाँसे निकलकर आ जावेगा। पर वह तो बड़ा पक्का। निकले ही नहीं। बोले—ये लोग देखो, युक्ति निकालते हैं कि हम अक्लसे ईश्वरको पा लें। वेदान्तियोंने कहा—पा लिया! पा लिया! बड़े जोरसे चिल्लाये वे—**शिवोऽहं शिवोऽहं सोऽहं**। अब बात तो झूठी। मिला नहीं था वह, पाया नहीं था। लेकिन वह इतना भोला-भाला। जब देखा—कि ये लोग इस बातपर जिद कर ही बैठे हैं। तो कहा—कि लोग तो यही कहेंगे कि पहले तो पकड़े गये, फिर छिप गये। तो उनसे आकर मिल गये। धोखा-धड़ीमें ही मिले। उनकी जो वृत्ति है, विद्यावृत्ति, ब्रह्माकारवृत्ति—**तत्त्वमसि**, महावाक्यजन्य वृत्ति—वह सच्ची नहीं है, बिलकुल धोखा है। लेकिन धोखेको मिटानेके लिए धोखा ही तो! भगवान्‌के छिपनेका भी धोखा है, और उनके पानेका भी धोखा है।

खोया कहे सो बावरा, पाया कहे सो कूर।
पाया खोया कछु नहीं, ज्यों का त्यों भरपूर॥
न कछु हुआ न है कछु न कछु होवनहार।
अनुभव का दीदार है अपना रूप अपार॥

न कुछ खोया, न कुछ पाया। जैसे झूठमूठ खोया था, वैसे झूठमूठ पा लिया। चलो, काम बना।

पर महाराज, जो प्रेमी थे, वे पहले ढूँढ़ने लगे—कि नहीं। जो खेल हम खेल रहे हैं, वह पूरा हो। और नहीं मिला तो चिल्लाने लगे। चिल्लानेसे नहीं मिला तो उसकी नकल करने लगे। नकल करनेसे भी नहीं मिला तो रोने लगे, गाने लगे। जब उनकी सब अक्ल खतम हो गयी, सब युक्ति समाप्त हो गयी, सब बल समाप्त हो गया, और जब **रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसा!** गिर पड़े, तो कृष्णने कहा—अब नहीं उठावेंगे, तो यह खेल नहीं रहेगा। यह सच्चा हो जायेगा। छिपे हैं खेलमें। अगर खेल-खेलमें अपना कोई साथी कभी तकलीफमें पड़ जाये, उसको कोई रोग आ जाये, बेहोशी आ जाये—तो जो खेलमें छिपा हुआ है, उसको फिर खेलका पालन नहीं करना चाहिए। उसको तो प्रकट होकर अपने साथीकी पहले रक्षा करनी चाहिए, उसको बचाना चाहिए। वह बचा रहेगा तो हजार खेल खेलेंगे। इसीको श्रीबल्लभाचार्यजी महाराज कहते हैं—निस्साधन हो जाना। जीव जब निस्साधन हो जाता है, तब भगवान् मिलते हैं। श्रीरामानुजाचार्यजी महाराज इसको प्रपत्ति बोलते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु इसको व्याकुलताकी पराकाष्ठा कहते हैं। जब आदमीका अपना बल समाप्त हो जाता है, तब प्रभुका बल काम करने लगता है।

अब थोड़ा इधर-उधरकी बात कहें। एक बारकी बात है। हमारी कोई सोलह-सत्रह बरसकी उम्र थी। उन दिनों मनमें यह था—कि भगवानके दर्शन हों। किसीके पास जाते और वह कहता कि वेदान्त पढ़ो, तो ऐसा बोलते उससे, कि—

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा।
तब सुनिहूँ निरगुन उपदेसा॥

एक महात्माने कहा—पहले गायत्रीका अनुष्ठान करो, चौबीस बार। इसमें मनुष्यके निश्चयकी पूरी परीक्षा हो जाती है, प्रेमकी परीक्षा हो जाती है। अपने बलका वह कितना प्रयोग करना चाहता है—इसका पता लग जाता है। अच्छा भाई! अनुष्ठान किया। फिर बोले—कि अब

श्रीकृष्ण मंत्रका जप करो। सिरपर हाथ-वाथ रखा, विधि-विधान हुआ, दीक्षा हुई। जितना उन्होंने अनुष्ठान बताया श्रीकृष्ण मंत्रके जपका, उतना किया। अरे बाबा! भगवानके दर्शनकी तो क्या बात; सपना भी नहीं आया। बड़ा दुःख हुआ। उनसे बोले। बोले—भाई! ऐसे काम नहीं बनता। **कलौ संख्या चतुर्गुणा।** कलियुगमें जितनी अनुष्ठानकी संख्या है, उससे चौगुनी करो। इसके लिए इतना होम करो, इतना तर्पण करो, इतना ब्राह्मण-भोजन कराओ। अनुष्ठान होवे। होम न कर सको तो होमकी जो वस्तु है, वह ब्राह्मणको दे दो। वह भी हुआ। कुछ नहीं; ठन-ठन पाल! तो मनमें आया—कि अभी हम घर-गृहस्थीमें रहते हैं। दुनियाका जंजाल बहुत है।

देखो, कालेजकी पढ़ाईकी बात नहीं कर रहा हूँ। मैंने किसी यूनिवर्सिटीमें, किसी कालेजमें डिग्री नहीं प्राप्त की है। कोई डिग्री हमारे पास नहीं, न व्याकरणाचार्यकी, न वेदान्ताचार्यकी, न न्यायाचार्यकी, न शास्त्री, न आचार्य। एक बार उन्हीं दिनोंमें ऋषिकेश गया था। जगह ही न मिले ऋषिकेशमें कहीं ठहरनेकी। मैंने पंजाब-सिन्ध क्षेत्रके संचालकसे कहा—बाबा, एकाध आलमारी-वालमारी दे दो। उसमें अपना कम्बल रख दें। गंगा किनारे भजन करेंगे। बोले—कि नहीं देंगे। तो मैंने बड़े जोरसे कहा—श्रीकृष्ण! श्रीकृष्ण! श्रीकृष्ण! अरे, वहाँ जो आदमी था न काम करनेवाला, उसने कहा—कि भाई! यह तो कोई भक्त लगता है। तो दे दिया। हमको जगह मिल गयी। चमत्कार हो गया। उस समय हमारा परिचित वहाँ कोई नहीं था। बादमें परिचय हुआ। एक भक्त द्वारपालजी थे—ऐसा ही कुछ उनका नाम था। बिलकुल पिछले हिस्सेमें रहते थे। वे फिर हमसे बहुत प्रेम करने लगे। मैं झूँसीमें जब अनुष्ठानमें था—वहाँ प्रभुदत्त ब्रह्मचारीजीका बड़ा भारी अनुष्ठान हुआ था, तो वहाँ आकर मिले थे।

तो आपको सुनाता हूँ—घरसे भागा। घर-गृहस्थीमें काम नहीं

बनता। एक तो लोटा, पीतलका था अपने पास और पाँच-सात आने पैसे थे। मुगलसरायतक पैदल गया—नौ कोस। एक पैसेका चना खरीदकर लोटेमें डाल दिया और उसमें पानी भी भर लिया। उसको हाथमें लिए-ही-लिए चला, कि जब चने फूल जायेंगे, तब खायेंगे। तो शिवपुरके आगे कोई समझो पन्द्रह कोसके करीब चला। यह ख्याल था कि अब गंगाजीकी तरफ भाग जायेंगे। जंगलमें जायेंगे, यह करेंगे, यह करेंगे। एक बात बताते हैं आपसे, उसमें जो तत्त्वकी है। किस्सा बतानेमें हमारा मतलब बिलकुल नहीं है। लेकिन यह अपना ही है, इसलिए आप लोग सुनेंगे तो आपके ऊपर इसका प्रभाव पड़ना चाहिए। तो जब कुएँपर जल पीने गया, तो सड़क वहाँ पाससे गुजरती थी। वहाँसे एक इक्का निकला—बनारसी इक्का। उसपर जो बैठे हुए थे, वे पदमें हमारे चाचा लगते थे। जब उन्होंने देखा—कि न हमारे पाँवमें जूता है, न सिरपर टोपी है और मैं नंगे पाँव वहाँ कुएँपर बैठा हूँ, तो इक्का रोककर आये और वह डाँट लगाई! इक्केपर बैठाया और लौटाकर ले आये बनारस। जूता खरीदा, कपड़े पहनाये और बोले—चलो घर। दूसरे दिन घर आ गया। अब उसके बाद जब बन्द कमरेमें बैठा, तो वह रोना आया। फिर वैसा रोना कभी नहीं आया; स्मरण करने योग्य है। जपसे काम नहीं बना, गुरुसे काम नहीं बना, भागनेसे काम नहीं बना, अनुष्ठानसे काम नहीं बना। अब तो मैं जानता हूँ कि सब ठीक था, पर उस समय ऐसा ख्याल होता था कि इस शरीरसे ईश्वरकी प्राप्ति होना सम्भव नहीं है। ऐसी व्याकुलता चित्तमें हुई। झरझर आँसू गिर रहे थे। यही ख्याल आ रहा था कि इस शरीरसे ईश्वरकी प्राप्ति नहीं हो सकती। हमारे साधनमें, हमारे भजनमें अठारह-अठारह घण्टे जपमें, ध्यानमें रोज लगाते थे। नहीं हुआ, तो अब ईश्वरकी प्राप्ति होनेवाली नहीं है। जब बिलकुल निराशा चित्तमें आयी, तो ऐसा चमत्कार आया अपने सामने। जैसे सम्पूर्ण जीवन अमृतसे तर हो गया हो। हम यह आपको नहीं सुनावेंगे कि क्या हुआ, लेकिन यह बताते हैं,

कि यदि यह कहो—कि आज ही हम निराश हो जाते हैं कि हमारे किए कुछ नहीं होगा और.हमको ईश्वर अभी प्राप्त हो जाये, तो यह तो ईश्वर प्राप्त करनेका तरीका नहीं है।

तब दे साधन छोरि लेइ जब पहले साधि।

जब पहले साधन करते--करते इधर साधन समाप्त हो जाये, उधर शक्ति समाप्त हो जाये, जब आदमी सचमुच निस्साधन होकर गिरता है—तो ईश्वर अपनी गोदमें उठा लेता है। जब जीवका अहं शांत होता है, तब ईश्वरका अहं प्रकट होता है। इसको योगी लोग समाधि भले कहें, भक्त लोग प्रपत्ति कहें, शरणागति कहें, व्याकुलता कहें, निस्साधना कहें, अन्तःकरण की शुद्धि इसको कहें, लेकिन ईश्वरके प्रकट होनेका स्थान बिलकुल वही है, जहाँ अपना बल पौरुष समाप्त हो जाता है।

अब देखो। अब श्रीकृष्णके और अपने बीचमें क्या अड़ रहा है। गोपियोंका बल, गोपियोंकी युक्ति समाप्त हो गयी। **बुद्धिर्विकुण्ठिता नाथ समाप्ता मम युक्तयः**। हमारी बुद्धि कुण्ठित हो गयी, हमारी युक्तियाँ समाप्त हो गयीं।

नान्यत् किञ्चिद् विजानामि त्वमेव शरणं मम। मैं कुछ नहीं जानता। तुम मेरे आश्रय हो, तुम मेरे शरण हो।

आविर्भूत—आविर्भाव हुआ। आविर्भूतका अर्थ है—कि जो वसुदेवके घरमें चतुर्भुज प्रकटे थे न, जो यसोदा मैयाकी गोदमें नन्हा-सा बालक प्रकटा था, ग्वालवालोंके साथ जो खेलनेवाला था—वह सब भाव हट गया और गोपियोंके साथ रस-क्रीड़ा करनेके लिए जिस किशोर भावकी, जिस किशोर वपुकी जरूरत थी—वह प्रकट हुआ।

अब उसकी विशेषता बताते हैं। **स्मयमान मुखाम्बुजः** —यह रूपकी विशेषता है, **पीताम्बरधरः** —यह भावकी विशेषता है और **स्रग्वी**—यह देहकी विशेषता है और **साक्षान्मन्मथमन्मथः** —यह स्वरूपकी विशेषता है।

स्मयमान मुखाम्बुजः। श्रीकृष्ण जब प्रकट हुए तो मुस्कुराते हुए प्रकट हुए। मुस्कुराते हुए प्रकट होने का अर्थ क्या है? यह जो अन्तर्धान होना था, विरह था, यह एक बहुत हलकी चीज थी—यह बतानेके लिए मुस्कुराते हुए आये। मुस्कुरानेका अर्थ है—यह तो खेल था और तुम खेल-खेलमें रो पड़ी गोपियों? माने अन्तर्धान होना तो एक लीलामात्र है। जब ब्रह्मदृष्टिसे उसका नाम लेते हैं, तब प्रतीति बोलते हैं। जहाँ कर्त्तापनका भाव न हो, जहाँ भोक्तापनका भाव न हो, जहाँ बंधन न हो, वासना न हो; प्रतीति मात्र हो। ब्रह्मदृष्टिसे इसको प्रतीति मात्र कहेंगे, और परमेश्वरकी दृष्टिसे इसको लीला कहेंगे, क्योंकि यहाँ भी कर्त्तापन नहीं है, यहाँ भी भोक्तापन नहीं है, यहाँ भी सत्यत्व की भ्रान्ति नहीं है, यहाँ भी बन्धन नहीं है। इसीलिए परमेश्वरकी दृष्टिसे यह लीला है। और हम लोगोंके लिए यह क्या है? कि हम लोगोंके लिए यह है भगवान्‌की करुणा, भगवान्‌का अनुग्रह। आप देखो! अगर ब्रह्म हमारे ऊपर कृपा करना चाहे, तो कैसे करेगा? जरा विचारो। हम बिलकुल ब्रह्मकी रग-रग जानकर यह बोल रहे हैं। हम कभी दवा बता दें, हमारी बताई हुई दवा झूठी हो सकती है; हम डाक्टर नहीं हैं। हम कोई ज्योतिष बतावें, तो झूठा हो जावेगा, किसीको बेटा-बेटी दें, तो वह गलत हो सकता है। लेकिन हम ब्रह्मके बारेमें जो कहेंगे, उसमें गलत होनेकी कोई गुंजाइश नहीं है। हम ब्रह्मकी नस-नस, रग-रग पहचानते हैं। ब्रह्म अगर किसीके ऊपर अनुग्रह करना चाहे, करुणा करना चाहे; चाहे भी—तो क्या बड़ा बनकर आवेगा उसके पास? ब्रह्म जितना बड़ा है, उससे बड़ा बननेकी गुंजाइश ब्रह्ममें नहीं है। वह स्वरूपसे, स्वभावसे जितना बड़ा है, अब वह चाहे कि उससे ज्यादा बड़ा, उससे ज्यादा सत् होकर, उससे ज्यादा चित् होकर, उससे बड़ा आनन्द होकर, उससे ज्यादा अद्वैत होकर हम किसीके ऊपर अनुग्रह करें, तो वह कर सकता है? नहीं कर सकता। तब वह अनुग्रह कैसे करेगा? देखो! बड़ा आदमी जो है, वह बड़ा होकर

अनुग्रह नहीं करेगा। जब छोटा बनकर आवेगा, तब अनुग्रह करेगा। मिनिस्टर-मिनिस्टर की हैसियतसे नहीं, जब मित्रकी हैसियतसे हमारे घरमें आवेगा, तब उसका प्रेम होगा। वह छत्र-चंवर लगाकर आवेगा, तब नहीं; जब भाई-भाई बनकर आवेगा, तब उसकी प्रीति होगी।

तो हम जीवोंकी दृष्टिसे, संसारियोंकी दृष्टिसे, साधकोंकी दृष्टिसे करुणा-वरुणालय जो प्रभु है, परमेश्वर है, उसका यही अनुग्रह है—कि वह हमारे बीचमें प्रकट होता है। निर्गुण होनेपर भी सगुण होकर आता है, निराकार होनेपर भी साकार होकर आता है, बिना माँ-बापके होकर भी माँ-बाप वाला बनता है, अभोक्ता होकर भी भोक्ता बनकर आता है। यही उसकी करुणा है, यही उसकी कृपा है, यही उसकी लीला है, यही उसका उद्धारका साधन है। नहीं तो ब्रह्म अविद्याकी निवृत्ति करे? विद्या-वृत्तिमें आरूढ़ होकर अविद्याका निवर्तक होना—यह ब्रह्मका छोटा होना है। यह न ब्रह्मका स्वरूप है, न ब्रह्मका बड़प्पन है। परन्तु वृत्त्यारूढ़ होकर चेतन ही अविद्याको निवृत्त करता है। इसीको ब्रह्मका अवतीर्ण रूप बोलते हैं। इसीका नाम कृष्ण है, जो वृत्त्यारूढ़ हो जाये, गोप्यारूढ़ हो जाये। गोप्यारूढ़ होगा तो दुःखका निवर्तक होगा और वृत्त्यारूड़ होगा तो अज्ञानका निवर्तक होगा। यह परमात्मा एकमेव हमसे होता है। वह प्रकट हुआ। इसीको भगवानका अवतीर्ण रूप कहते हैं।

तो **स्मयमान मुखाम्बुजः**। हंसता हुआ आया। यह जो लीला थी, यह तो खेल था। यह तो प्रतीति थी। यह तो एक झूठी बात थी—कि मैं तुम्हारे सामनेसे अन्तर्धान हो गया था, कहीं चला गया था। मैं तो यहीं था, बिलकुल यही था। तुम्हारे सामने ही था।

मुस्कुराते हुए आये। मुखाम्बुज खिला हुआ था। जैसा गोपियोंको दुःख है, वैसा दुःख वे नहीं प्रकट करते। अच्छा, मान लो। श्रीकृष्ण जरा रोते हुए आते, उदास; तो गोपियोंकी क्या दशा होती? गोपियोंकी छाती फट जाती है। गोपियाँ कहतीं—हाय, हाय! हमारी वजहसे श्रीकृष्णको

इतना दुःख पहुँचा? यह तो गोपियोंको दुःख न हो, पश्चाताप न हो, उनका दिल न फटे, सो मुस्कुराते हुए आये।

अब देखो! असलमें बात क्या थी? आप देखो, **निज जन स्मयध्वंसनस्मित** श्रीकृष्णकी मुस्कुराहट कैसी है? कि अपने भक्तोंके स्मयको, अभिमानको मिटानेवाली है। एक बार मुस्कुराकर किसीकी ओर देख लें, तो उसका अभिमान तुरंत गल जाये। मानिनियोंके मानको हरण करनेवाली उनकी मुसकान है।

तो हुआ क्या? देखो, उलट गयी बात। **स्मयमानः मुखाम्बुजः स्मयमाने मुखाम्बुजे यस्य स स्मयमान मुखाम्बुजः**। जब जो गोपियोंको पहले स्मय था, मान था, वह गोपियोंमें-से निकलकर कृष्णमें चला गया। बड़े महाराज, गम्भीरतासे चलते हुए, मुस्कुराते हुए, और जो पानकी बीड़ी दी थी श्रीमतीजी ने उसको खाते हुए, और माला जो गलेमें पहनायी थी, उसको दिखाते हुए **स्त्रग्वी**—क्या मस्तानी चालसे चले आ रहे हैं। कि देखो जी, तुम्हारा दिया हुआ पान अभी तक मुखमें है, इसकी गंध पहचान लो। और तुमने जो माला पहनायी थी, वह कुम्हलायी हुई नहीं है। अगर बीचमें किसीको हृदयसे लगाया होता तो यह माला अब तक कुम्हला गयी होती। नहीं, वही तुम्हारी प्रेमसे पहनायी हुई माला गलेमें पड़ी है। वही तुम्हारा दिया हुआ पान मुँहमें पड़ा है। और बिलकुल खिला हुआ है मुखमण्डल - **स्मयमान मुखाम्बुजः**। अगर कोई छल होता, कपट होता, कोई द्वेष होता, कोई तुमको सताना होता तो यह मुसकान भला हमारे मुखपर खेलती? यह तो बिलकुल लीला है।

पीताम्बरधरः। आये तो कैसे आये? वैसे हमारे वैयाकरण बोलते हैं, कि अगर बहुब्रीहिसे काम चल जाये, तो ज्यादा शब्दावली नहीं जोड़नी चाहिए। तो **पीतं अम्बरं यस्य सः पीताम्बरः**। पीताम्बर माने भगवान्। जिसका पीला हो कपड़ा, उसका नाम है पीताम्बर। भगवान्का यह एक नाम है। तो संस्कृतमें पीताम्बरधारी बोलनेकी

जरूरत नहीं है। संस्कृतमें पीताम्बरः कहनेसे काम चलता है। तो बोले—नहीं। यह तो पीताम्बर धारण किये हुए हैं। जब गोपियोंके बीचमें आये, तो सोचा थोड़ा हंसाना चाहिए। तो पीताम्बर अपने सिर पर लेकर घूँघटकी तरह थोड़ा काढ़ लिया। गोपियोंने कहा—अरे देखो। पीताम्बरका घूँघट काढ़े आ रहे हैं। फिर जब बीचमें आये, तो सरक गया। यह भी एक फैशन है—कि मालूम पड़े, अनजानमें ही घूँघट सिरसे गिर गया। तो भगवान् कृष्ण जैसे जरा घूँघट खींचकर आते हों। गोपियोंके बीचमें आये तो अपने आप ही धीरेसे सरक गया—**पीताम्बरधरः**। अरे, ये लोग समझते हैं कि हमारा जो बाल आ गया है आँखोंके ऊपर; तो देखनेवाला समझेगा कि असावधानीसे अपने आप आ गया है। उसको क्या मालूम—कि यह फैशनसे आगे किया गया है। इनका कपड़ा गिरता है, तो समझते हैं—कि लोग यही समझेंगे कि भोलेपनमें, असावधानीसे, अनजानमें गिर गया है। अरे, वह फैशनसे गिराया जाता है। फैशन शास्त्रमें यह बात लिखी है।

तो पीताम्बरधरः का अर्थ है—कृष्णने सिरपर पहले पीताम्बरका घूँघट काढ़ लिया। गोपियोंके बीचमें आये, तो धीरे-धीरे वह खिसक गया। जैसे कोई अपराधी हो, कर्जदार हो और अपने मालिकके पास माफी मांगनेके लिए आये, कर्ज चुकानेके लिए जाये तो अपना अंगोछा गलेमें डालकर, उसके हाथमें पकड़कर जाता है; कि गोपियों! हमने अन्तर्धान होकर तुम्हारा अपराध किया। तुमको बड़ा दुःख पहुँचा। देखो, हम तुमसे क्षमा माँगनेके लिए आते हैं। अब तुम जो कहो, सो करें। हम तो बिलकुल तुम्हारे हैं। **पीताम्बरधरः**।

एक बात इसमें रहस्यकी है, पर कह देते हैं। यह पीता शब्द राधारानीका नाम है। पीता शब्दके दो अर्थ हैं; एक तो जिनके शरीरका रंग पीला हो, पीता माने पीतवर्णा, स्वर्णवर्णा। सुनहला उनके शरीरका रंग है, इसलिए उनका नाम पीता है और दूसरा श्रीकृष्णके द्वारा पीत होनेके

कारण—पीत माने पीला नहीं, पिया हुआ होनेके कारण उनका नाम पीता है। तो पीताम्बरधर:का अर्थ है—कि जब दोनों अकेलेमें चले गये थे, तो कपड़ोंमें कुछ हेर-फेर हो गयी थी, बदल गये थे। पीताके वस्त्रको धारणकर रखा है। पर यह बात तो ज्यादा गुप्त है, इसको नहीं प्रकट करते हैं। इसमें एक और प्रकट करने योग्य बात है। वह क्या है? कि श्रीकृष्ण और राधारानीका ऐसा प्रेम-सम्बन्ध है कि जब राधारानी रूठती हैं और कृष्ण मनाते हैं, तो जब राधारानी मान जाती हैं, तब कृष्ण रूठ जाते हैं। जब कृष्ण रूठते हैं तो राधारानी मनाती हैं। और वे जब मान जाते हैं, तब यह रूठ जाती हैं। परस्पर मान इसको बोलते हैं। इस तरह, मान-मनौवलमें सारी रात बीत जाये। तो जब श्रीकृष्णके प्रकट होनेका समय आया, तो उनके मनमें पहले यह कल्पना हुई, कि मैं इतनी देर अन्तर्धान रह चुका हूँ, और अब प्रकट हो रहा हूँ—तो राधारानी होंगी नाराज। तो कहीं हमको देखते ही वह भाग गयीं, अन्तर्धान हो गयीं, तो फिर रास-लीला नहीं होगी। फिर तो जैसे इन लोगोंने रातभर हमें ढूँढा, वैसे हम उनको रातभर ढूँढेंगे। और ढूँढने-ढूँढनेमें ही रास-लीला नहीं होगी। तो क्या करना? कि जब प्रकट हुए तो पीता जो राधारानी हैं, उनका अम्बर माने उनकी साड़ी पकड़ ली—कि भागने न पावें। पीताका जो अम्बर है, उसको पकड़ लिया। इसलिए **पीताम्बरधरः।**

स्रग्वी—माला है गले में। यह माला वियोगकालमें ही गलेमें रहती है, संयोगकालमें नहीं रहती। प्रेमका जो रस है, भक्तिका जो रस है, वह विलक्षण है। **हारो नारोपितः कण्ठे मया विश्लेषधीरो न।** मैंने गलेमें हार नहीं पहना। क्यों? कि हमारे तुम्हारे बीचमें अगर हार आ जायेगा, तो वह हृदयके मिलनमें व्यवधान बन जायेगा। एक तीसरी चीज आ जायेगी बीचमें। कितने हीरेके हार, कितने मोतीके हार और कितने फूलोंके हार तोड़कर फेंक दिये। तो स्रग्वीका अर्थ क्या है? केवल यह दिखानेके लिए—कि यह जो तुम्हारे हाथोंसे बनी हुई माला है, तो वियोगकालमें

ऐसा मालूम पड़ता था, कि तुमने दोनों हाथ अपने गलेमें डाल रखे हैं। यह माला नहीं है, यह तुम्हारे हाथ हैं।

साक्षान्मन्मथमन्मथः। भगवान् श्रीकृष्णने अपना स्वरूप प्रकट किया। तो **स्त्रग्वी** वेश है, **पीताम्बरधरः** भाव है और **स्मयमानमुखाम्बुजः** रूप है। और **साक्षान्मन्मथमन्मथः** स्वरूप है। कि यह स्वरूप क्या है? बोले—यह भगवान् साक्षात् हैं। यह साक्षात् क्या होता है? उपनिषद्वालोंसे पूछो न! उन्हें जब परमात्माका वर्णन करना होता है, तो कहते हैं—आँखकी आँख। है कि नहीं? **चक्षुषः चक्षु**—आँखकी आँख। और? **मनसो मनः**—मनका मन। **प्राणस्य प्राणः**। **वाचो ह वाचम्** —वाणीके, वचनके वचन हैं। मनके मन हैं, प्राणके प्राण हैं। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी लिखा है—

प्राण प्राण के, जीवन जी के। सुख के सुख श्रीराम॥

भक्त लोग जब वर्णन करते हैं, तो वे **चक्षुषश्चक्षुः** नहीं बोलते हैं। वे **मन्मथस्य मन्मथः** बोलते हैं। वे मन्मथके भी मन्मथ हैं। मन्मथ उसको कहते हैं, जो मनको मथ डाले; कि यह मन्मथके मनको भी मथ डालते हैं। यह मद्से भी बनता है और मनसे भी बनता है। मद्मथःसे भी मन्मथः बनता है; हम-को मथ डाले—यह भी उसका अर्थ होता है, मदको मथ डाले—ऐसा भी इसका अर्थ होता है। मनको मथ डाले, सो भी मन्मथः। तो मन्मथके मन्मथ हैं— इसका अर्थ हुआ क्या? कि लोकमें जो काम है न! एक व्यक्ति-काम होता है, एक समष्टि-काम होता है। उसका दर्शन समझानेकी जरूरत नहीं। बिना कामके ईश्वर सृष्टि नहीं कर सकता। **सोऽकामयत एकोऽहं बहुस्याम्**। **अकामयत**। श्रुति कहती है—**कामस्तदग्रे समवर्तत**। पहले काम ही था। विवाहमें मंत्र पढ़ते हैं। **कोऽदात् कस्मैऽदात् कामोदात कामायातत्ते**, हम पहले ब्याह करवाते थे, तो हमको बहुत से मन्त्र याद हैं। **सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वम्**—मैं सामवेदका संगीत हूँ और तुम ऋग्वेदकी ऋचा हो। मैं द्यौ हूँ और तुम पृथ्वी हो;

लड़का बोलता है लड़कीसे। आजकल पण्डित लोग आपसमें ही ब्याह कर लेते हैं। लड़के-लड़कीको थोड़े मालूम पड़ता है कि ये क्या बोल रहे हैं। लड़की पक्षका पंड़ित एक मन्त्र बोल गया, लड़का पक्षका पंडित एक मन्त्र बोल गया। दोनोंका आपसमें ब्याह हो गया, और लड़की लड़के को पता ही नहीं। देखो, क्या बढ़िया मंत्र है। मैं सामवेदका संगीत हूँ, तुम ऋग्वेदकी ऋचा हो। मानें मैं संगीत हूँ, तुम कविता हो। दोनोंका मेल कैसा बढ़िया होगा। काव्य भी सुन्दर हो और संगीत भी हो उसमें। मैं आकाश हूँ और तुम पृथ्वी हो। पृथ्वी तो हमेशा आकाशमें ही रहेगी। ये विवाहके मन्त्र हैं। **मम व्रते ते हृदयं दधामि। मम चित्तं अनुचित्तं तेऽस्तु।** अपने व्रतमें मैं तुम्हारे हृदयको स्थापित करता हूँ। तुम्हारा चित्त मेरे चित्तके पीछे चले। मनसे मन मिले, वाणीसे वाणी मिले। और ईश्वर तुम्हें मेरे साथ नियुक्त करे—**प्रजापतित्वा नियुनक्तु मह्यं।** उसमें यह भी है—**कामोदात कामायादात कामायैतत्ते। कामै तत् ते।** तो यह काम जो है, एक तो मनुष्यके मनमें होता है और एक ईश्वरके मनमें होता है, जिसमें यह सृष्टि होती है। जीववाला काम नहीं, यह ईश्वरवाला काम है। **कामस्य कामः। मन्मथ मन्मथः** —का अर्थ है कि सम्पूर्ण सृष्टिको रसीली बनानेवाला जो काम है, उस कामके भी तुम काम हो। **वासुदेवादि चतुर्व्यूहके** अन्तर्गत जो काम है, उसके भी काम तुम हो। साक्षात् जो मन्मथ है, तुम्हारा स्मर, तुम्हारा स्वरूपभूत जो मन्मथ है, उसके भी मनको तुम मथन करनेवाले हो, तो औरोंकी तो बात ही क्या!

तं विलोक्यागतं प्रेष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशोऽबलाः।
उत्तस्थुर्युगपत् सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम्॥ ३॥

तो भगवान् प्रकट हुए। तो प्रकट होकर गोपियोंके साथ बातचीत करते हैं, उनके साथ लीला-विलास करते हैं।

❋

अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज द्वारा विरचित एवं सम्प्रति उपलब्ध साहित्य

श्रीमद्भागवत

भागवत दर्शन (दो भागोंमें)	600.00
मुक्ति स्कन्ध (भागवत-एकादश स्कन्ध)	270.00
भागवत - दशम स्कन्ध	150.00
रास पंचाध्यायी	150.00
श्रीकृष्णलीला रहस्य	45.00
भागवतामृत	70.00
भागवत सर्वस्व	25.00
भागवत व्यंजन	50.00
गोपीगीत	100.00
वेणुगीत	30.00
युगलगीत	50.00
गोपियोंके पाँच प्रेमगीत	20.00
उद्धवगीत	25.00
कपिलोपदेश	60.00
हंसगीता (हंसोपाख्यान)	15.00
सद्गुरुसे क्या सीखें?	15.00
उनकी कृपा	20.00
ऊखल बन्धन लीला	50.00
सत्संग महिमा	20.00
प्रह्लाद चरित	60.00
उद्धव व्रजगमन	180.00
भागवत विमर्श	50.00
मानव जीवन और भागवत धर्म	100.00
प्रणयगीत	50.00
गर्भ स्तुति	60.00

पुस्तक प्राप्ति स्थान

- **प्रधान कार्यालय : सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट,** विपुल 28/16 बी. जी. खेरमार्ग मालाबार हिल, मुम्बई-400006, फोन : (022) 23682055 मो. : 09619858361
- **शाखा कार्यालय : सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट, श्रीअखण्डानन्द पुस्तकालय,** आनन्द कुटीर, मोतीझील, वृन्दावन-281124 फोन : (0565) 2913043, 2540487, मो. : 09837219460

गोपीगीत
प्रवचन

कहते हैं–समस्त पुराणोंका हृदय श्रीमद्भागवत महापुराण है, और श्रीमद्भागवतका हृदय दशम स्कन्ध, दशम स्कन्धका हृदय गोपियोंके पाँच प्रेमगीत और उन गीतोंका भी हृदय गोपीगीत और गोपीगीतकी स्वाँस हैं गोपियाँ, गोपियोंके प्राण श्रीकृष्ण! और श्रीकृष्णकी प्राण प्रेम-रस छलकाती-ढुलकाती गोपियाँ!

आइये! परम पूज्य महाराजश्री स्वामीश्री अखण्डानन्द सरस्वतीजीके मुखारविन्दसे निःसृत गोपीगीतके प्रत्येक श्लोक व श्लोकके प्रत्येक शब्दके अर्थ-भाव-रसका–अपूर्व-अद्भुत-अनुभव प्राप्त कर प्रेमी-प्रेम-प्रियतम, भक्त-भक्ति-भगवान्को आत्मसात करें।

आनन्दकानन प्रेस
डेढ़ीनीम, वाराणसी • फोन : 2392337